बैचलर ऑफ आर्ट्स (संस्कृत)

Bachelor of Arts (Sanskrit)

Value Addition Course (VAC- 01)

वैदिक अध्ययन - Vedic Studies

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी-263139

Toll Free : 1800 180 4025
Operator : 05946-286000
Admissions : 05946-286002
Book Distribution Unit : 05946-286001
Exam Section : 05946-286022
Fax : 05946-264232
Website : http://uou.ac.in

पाठ्यक्रम निर्माण समिति **VAC- 01**

कुलपति (अध्यक्ष)
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
प्रोफेसर ब्रजेश कुमार पाण्डेय,
संस्कृत एवं प्राच्य विद्या अध्ययन केंद्र,
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
प्रोफेसर गिरीश चन्द्र पन्त,
संस्कृत विभागाध्यक्ष, जामिया मिल्लिया
इस्लामिया विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
प्रोफेसर जया तिवारी,
संस्कृत विभागाध्यक्षा, कुमाऊँ विश्वविद्यालय,
नैनीताल

प्रोफेसर रेनू प्रकाश- (संयोजक)
निदेशक, मानविकी विद्याशाखा
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
डॉ0 देवेश कुमार मिश्र,
एसो0 प्रोफे0, इन्दिरा गान्धी राष्ट्रीय मुक्त
विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।
डॉ0 नीरज कुमार जोशी,
असि0 प्रोफे0-ए.सी.,संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

मुख्य सम्पादक
डॉ0 देवेश कुमार मिश्र
एसो0 प्रोफे0, इन्दिरा गान्धी राष्ट्रीय मुक्त
विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

पाठ्यक्रम समन्वयक एवं सह सम्पादन
डॉ0 नीरज कुमार जोशी
असि0 प्रोफे0 ए.सी.,संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन	खण्ड	इकाई संख्या
डॉ0 नीरज कुमार जोशी	प्रथम	(इकाई 1 एवं 3)
असि0 प्रोफे0 ए.सी.,संस्कृत विभाग	द्वितीय	(इकाई 2 एवं 3)
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	तृतीय	(इकाई 3 एवं 4)
	चतुर्थ	(इकाई 1,2 एवं 4)
डॉ0 योगेन्द्र कुमार	प्रथम	(इकाई 2)
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग	द्वितीय	(इकाई 1)
नेशनल पीजी कॉलेज बड़हलगंज, गोरखपुर		
डॉ0 प्रभाकर पुरोहित	चतुर्थ	(इकाई 3)
असि0 प्रोफे0 ए.सी.,ज्योतिष विभाग,		
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी		
डॉ0 ऋतु जोशी पाठक	तृतीय	(इकाई 1 एवं 2)

प्रकाशक: (उ0 मु0 वि0, हल्द्वानी) -263139
कॉपीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
पुस्तक का शीर्षक- वैदिक अध्ययन (Vedic Studies)

प्रकाशन वर्ष : 2024

ISBN No.

मुद्रक:

नोट:- इस पुस्तक में लिखित इकाइयों से सम्बन्धित किसी भी प्रकार की आपत्ति के निस्तारण का उत्तरदायित्व इकाई लेखक का होगा। इस सामाग्री का उपयोग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित प्रशासनिक अनुमति के बिना अन्यत्र कहीं नहीं किया जा सकता।

अनुक्रम

खण्ड- एक (Section-A) वेद-वेदाङ्ग एवं संहिता	**पृष्ठ संख्या 01-05**
इकाई-1 वेद शब्द का अर्थ, स्वरूप एवं महत्त्व	06-14
इकाई-2 वेदाङ्ग परिचय एवं वर्ण्य विषय	15-26
इकाई-3 संहिता एवं ब्राह्मण ग्रन्थों का स्वरूप एवं प्रतिपाद्य विषय	27-58
खण्ड- दो (Section-B) आरण्यक एवं उपनिषद्	**पृष्ठ संख्या 59**
इकाई-1 आरण्यक का अर्थ, परिचय एवं वर्ण्य विषय	60-72
इकाई-2 उपनषिद् का अर्थ, परिचय एवं प्रतिपाद्य विषय	73-88
इकाई-3 प्रमुख उपनिषदों का सामान्य परिचय	89-106
खण्ड- तीन (Section-C) वैदिक सूक्त एवं निरुक्त	**पृष्ठ संख्या 107**
इकाई-1 सूर्यसूक्त एवं शिवसंकल्पसुक्त मूलपाठ अर्थ एवं व्याख्या	108-119
इकाई-2 इन्द्र सूक्त मूलपाठ अर्थ एवं व्याख्या	120-129
इकाई-3 उषस सूक्त एवं नासदीय सूक्त मूलपाठ अर्थ एवं व्याख्या	130-152
इकाई-4 निरुक्त परिचय, महत्त्व एवं प्रतिपाद्य	153-164
खण्ड- चार (Section-D) सृष्टि की वैदिक अवधारणा	**पृष्ठ संख्या 165**
इकाई-1 सृष्टि की वैदिक परिकल्पना एवं अवधारणा	166-190
इकाई-2 वैदिक वाङ्मय में ब्रह्माण्ड की अवधारणा	191-202
इकाई-3 वैदिक सृष्टि के प्राचीन एवं आधुनिक सिद्धान्त	203-217
इकाई-4 सृष्टि संरचना एवं स्वरूप	218-238

खण्ड- एक (Section-A)
वेद-वेदाङ्ग एवं संहिता

इकाई-1 वेद शब्द का अर्थ, स्वरूप एवं महत्त्व

इकाई की रुपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 वेद का परिचय तथा महत्त्व
    1.3.1वेद का अर्थ
    1.3.2 वेद का वाचक शब्द
    1.3.3 वेदकाल निर्णय
    1.3.4 वैदिक संहिता का परिचय
    1.3.5 वैदिक साहित्य का सामान्य परिचय
    1.3.6 वेद का महत्त्व
1.4 सारांश
1.5 पारिभाषिक शब्दावली
1.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रिय शिक्षार्थियों!

बी0ए0 (VAC- 01) वैदिक अध्ययन (Vedic Studies) नामक पाठ्यक्रम के खण्ड प्रथम से सम्बन्धित यह प्रथम इकाई है। इस खण्ड में वेद शब्द का अर्थ, स्वरूप एवं महत्त्व का वर्णन किया गया हैं। प्रस्तुत खण्ड में वेद का परिचय एवं विर्ण्य विषय प्रस्तुत किया गया है। अतः इस इकाई में आप वेद का अर्थ एवं महत्त्व, वैदिक काल निर्णय, वैदिक संहितादि का अध्ययन करेंगे।

प्रत्येक राष्ट्र की अपनी संस्कृति होती है। संस्कृति ही उस समाज का प्रतिनिधित्व करती है। हमारे राष्ट्र की अपनी संस्कृति है जिसे भारतीय-संस्कृति नाम से अभिहित किया जाता है। हमारी संस्कृति जिस भाषा में निबद्ध है वह भाषा संस्कृत भाषा है। विश्व की समस्त भाषाओं में प्राचीनतम तथा अन्य भाषाओं की जननी होने का श्रेय इसी संस्कृत भाषा को है। देववाणी, गीर्वाणवाणी, भारती, सरस्वतीवाणी आदि इसी के पर्यायवाची है। भारतीयसंस्कृति का निखरा रुप संस्कृत भाषा में निबद्ध साहित्य में दृष्टिगोचर होता है। मानव जीवन के चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से सम्बद्ध सभी विषयों का साङ्गोपाङ्ग वर्णन इसी भाषा में निबद्ध है। लौकिक सुख और आध्यात्मिक उत्कर्ष के लिए अपेक्षित सभी विषयों का सूक्ष्म एवं व्यापक विवेचन संस्कृत-वाङ्मय में ही समाहित है। इन विषयों के व्यापक वर्णन एवं चिन्तन ने विश्वमनीषा को अपनी ओर विशेषरुप से आकृष्ट किया है। संस्कृत-वाङ्मय (साहित्य) का व्यापक विषय जनसाधारण के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो, इस उद्देश्य से विभिन्न भागों में संस्कृत-वाङ्मय के विषय को वर्गीकृत किया गया है यथा- वेद एवं वैदिक संहिताएं, ब्राह्मण ग्रन्थ आरण्यक, उपनिषद्, वेदाङ्ग स्मृतियॉं, पुराण, दर्शन, आर्षकाव्य, काव्य, गद्य, रुपक, आधुनिक-संस्कृत-साहित्य, काव्यशास्त्र, तन्त्रागम, नास्तिक दर्शन, धर्मशास्त्र व्याकरण, कोश-खण्ड, ज्योतिष-खण्ड, आयुर्वेद-खण्ड, राजनीतिशास्त्र, सङ्गीतशास्त्र आदि। वेद-वेदाङ्ग एवं संहिता के प्रथम खण्ड वेद से परिचय प्राप्त हो उसके साहित्य की सामान्य जानकारी हो, इस उद्देश्य से वेद स्वरुप पर प्रकाश डाला जा रहा है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

- संस्कृत वाङ्मय की जानकारी प्राप्त करने में समर्थ हो सकेंगे ।
- वेद के सामान्य अर्थ की जानकारी प्राप्त कर लेंगे।
- वैदिक संहिता एवं वैदिक साहित्य से परिचित हो जायेंगे।
- वेदांगों की संख्या एवं परिचय की जानकारी प्राप्त सकेंगे ।
- वेदाङ्गों के महत्त्व से परिचित हो जायेंगे।

- वैदिक साहित्य में प्रयुक्त शब्दावली की जानकारी प्राप्त कर लेंगें।
- वेदांग में निबद्ध विचारों से अवगत हो सकेंगे ।

1.3 वेद का परिचय एवं महत्त्व

भारतीय संस्कृति के इतिहास में वेदों का स्थान सर्वोपरि है। आर्यों के आचार-विचार, रहन-सहन तथा धर्म कर्म को भली-भॉति समझने के लिए वेदों का ज्ञान विशेष आवश्यक है। जिसके अन्तर्गत वेद का अर्थ, वेद के वाचक शब्द, वैदिक संहिता का एवं वैदिक साहित्य का वर्गीकरण है।

1.3.1 वेद का अर्थ

विद् (ज्ञानार्थक) धातु से भाव, कर्म और करण अर्थ में घ´ प्रत्यय के योग से ''वेद'' शब्द की निष्पत्ति हुई है। जिसका अर्थ है ज्ञान, ज्ञान का विषय और ज्ञान का साधन। विश्व का प्राचीनतम एवं सर्वप्रथम वाङ्मय जो भारत में प्रणीत हुआ ''वेद'' नाम से ही जाना जाता है।

वेदभाष्यकार सायणाचार्य के अनुसार **'इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेदः,** अर्थात् अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति तथा अनिष्ट के परिहार के लिए अलौकिक उपायों को बताने वाला ग्रन्थ वह वेद है। आचार्य विष्णुमित्र ने ''वेद'' शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार दी है **'विद्यन्ते ज्ञायन्ते लभ्यन्ते वा एभिर्धर्मादि पुरुषार्थाः इति वेदाः'** अर्थात् धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष ये चार पुरुषार्थ जिसके द्वारा जाने जाय या प्राप्त किये जाय ऐसा ग्रन्थ वेद है अलौकिक विषयों यथा स्वर्ग, ब्रह्म, धर्म आदि के ज्ञान में वेद ही प्रमाण है। तैत्तिरीय संहिता भाष्य-भूमिका में सायणाचार्य ने कहा है कि-

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते
एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता।

अर्थात् प्रत्यक्ष और अनुमान से जिस विषय का ज्ञान नही होता है परोक्ष वह विषय वेद द्वारा ही बोधगम्य होता है।

1.3.2 वेद के वाचक शब्द

भारतीय परम्परा में ''वेद'' शब्द के पर्याय रुप में अनेक शब्दों का प्रयोग मिलता है यथा-

१. श्रुति- वेद का गुरुपरम्परा से सुनकर ही अध्ययन किया जाता था, इसलिए उसे 'श्रुति' कहते हैं-

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयः- (मनु स्मृति २.१०) वेद का अनुश्रव नाम भी श्रुतिमूलक ही है।

२. आम्नाय - वेद का यथावत् अभ्यास करने के कारण वेद के लिए आम्नाय शब्द प्रयुक्त है, त्रयी का अर्थ है तीन का समूह ऋक्, यजुष् और साम तीन प्रकार के मन्त्रों का समूह वेद है इसलिए वेद को त्रयी भी कहा जाता है।

छन्दस्- वेद (ऋक् -यजुष् और सामरुपात्मक) रचनाए नियन्त्रित अर्थ की प्रधानता के कारण छन्दस् कही गयी।

स्वाध्याय- अध्ययन का एकमात्र विषय वेद ही है इसलिए वेद को ' स्वाध्याय' भी कहा गया।
आगम- महाभाष्यकार पतंजलि ने मन्त्रब्राह्मणात्मक षडङ्गसहित कहकर वेद के लिए आगम शब्द प्रयुक्त किया है।
निगम- यास्काचार्य ने उन मन्त्रों को 'निगम' कहा है जो मन्त्र वेदों से निरुक्त में उद्धृत किये गये हैं इस प्रकार इन नामों का प्रयोग वेद के लिए आज भी होता है।

1.3.3 वेद का काल निर्णय:-

वेदों के रचना-काल की पूर्व सीमा का कोई स्पष्ट ज्ञान नहीं है। वेदों केकाल की अन्तिम सीमा की दृष्टि से बुद्ध का काल माना जा सकता है। वेद के रचनाकाल के विषय में प्रचलित प्रमुख मत निम्न हैं-

- बुद्ध को आधार मानकर प्रो0 मैक्समूलर ने वेद के रचना काल को छन्दोकाल, मन्त्रकाल, ब्राह्मणकाल एवं सूत्रकाल चार भागों में विभाजित किया है। इन सबका रचनाकाल-१२०० ई0 पू0 से लेकर ४०० ई0 पू0 के बीच माना है।
- लोकमान्यतिलक ने ज्योतिष के आधार पर वेद का रचना काल ६००० से ४००० ई0 पू0 माना है।
- शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित ने शतपथ बाह्मण के अनुसार वेदों का रचनाकाल ३५०० ई0 पू0 माना है।
- याकोबी ने ज्योतिषशास्त्र के अनुसार वेद का रचनाकाल ४५०० वर्ष ई0 पू0 माना है।
- डॉ0 अविनाश चन्द्रदास ने भूगर्मशास्त्र और भूगोलगत साक्ष्यों के आधार पर ई0 से २५००० वर्ष पूर्व माना जाता है।
- महर्षिदयानन्द सरस्वती ने सृष्टि के आरम्भ के साथ वेदों का भी आविर्भाव माना है।
- विण्टर नित्स ने वैदिक काल २५०० ई0 से ५०० ई0 पू0 तक माना है।
- डॉ0 भण्डारकर ने वैदिक रचनाकाल ६००० ई0 पू0 माना है।
- अमलनरेकर ने ऋग्वेद का रचनाकाल ६६,००० से ७५००० वर्ष पूर्व माना है।

1.3.4 वैदिक-संहिता का संक्षिप्त परिचय

वेद के मूलमन्त्रों का समूह संहिता है। वेद की चार संहिताएं ऋग्वेद संहिता, यजुर्वेद संहिता, सामवेद संहिता एवं अर्थवेद संहिताएं हैं। ऋग्वेद संहिता में देवताओं की स्तुति-परक मन्त्रों का संग्रह है, जो पद्यात्मक एवं छन्दोबद्ध है। यजुर्वेद-संहिता यज्ञक्रिया की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इसमेंऋचाओं के साथ-साथ गद्य भी हैं, सामवेद संहिता साम या गान का सङ्कलन है। इसमें ऋग्वेद के मन्त्रों का समावेश है जिनका गान सोमयज्ञ के समय अभिप्रेत था। अथर्ववेद संहिता कोअथर्वन् और अङ्गिरस वेद भी कहा जाता है। इसमें २० काण्ड हैं। बहुत से मन्त्र ऋग्वेद

संहिता से लिये गये हैं। इसमें रोग दूर करने, पापशुद्धि, शत्रुविनाश तथा मङ्गलकामना व्यक्त करने वाले मन्त्र हैं।

1.3.5 वैदिक साहित्य का संक्षिप्त परिचय

वैदिक-युग के वाङ्मय को वैदिक-साहित्य भी कहा जाता है। श्री वाचस्पति गैरोला ने मूलसंहिताओं को वेद और उनसे सम्बन्धित ब्राह्मण आरण्यक तथा उपनिषद् ग्रन्थों को "वैदिक साहित्य'' के रुप में स्वीकार किया है। श्री वी. वरदाचार्य ने वेदों और उनसे सम्बद्ध सम्पूर्ण साहित्य की गणना "वैदिक-साहित्य'' मेंही की है।

प्रो0 मैक्समूलर, प्रो0 गौरीशंकर उपाध्याय, श्री सी0 वी0 वैद्य आदि विद्वानों ने वैदिक साहित्य को भिन्न-भिन्न प्रकार से वर्गीकृत किया है। निष्कर्षतः सम्पूर्ण वैदिक साहित्य को छःभागोंमेंवर्गीकृत किया जा सकता है-

१. संहिताएं
२. ब्राह्मण ग्रन्थ
३. आरण्यक ग्रन्थ
४. उपनिषद् ग्रन्थ
५. वेदाङ्ग
६. अनुक्रमणी-साहित्य

१**. संहिताएं**- ऋग्वेद संहिता, यजुर्वेद- संहिता, सामवेद संहिता एवं अथर्ववेद संहिता।

२.**ब्राह्मण ग्रन्थ**- ब्राह्मण-ग्रन्थों का सम्बन्ध ब्रह्म से है, इसी कारण इन्हें ब्राह्मण कहा जाता है। ये ग्रन्थ गद्य में लिखे गये हैं तथा इसमें याज्ञिक कर्मकाण्ड के माध्यम से वेदमन्त्रों की व्याख्या की गई है। प्रत्येक वैदिक-संहिता के अपने ब्राह्मण ग्रन्थ हैं इनकी संख्या आठ है- ऐतरेय, कौषीतकि(शांखायन), शतपथ, तैत्तिरीय, ताण्ड्य,(पच्चविंश) षड्विंश, जैमिनीय एवं गोपथ ब्राह्मण) जिनमें शुक्ल यजुर्वेदीय-'शतपथ-'ब्राह्मण' का महत्त्व सबसे अधिक हैं।

३**. आरण्यक ग्रन्थ**- इनमेंयज्ञों का वर्णन है, जिनका विधि-विधान बहुत सरल है। वानप्रस्थी और मुनि लोग भी सरलता से उन यज्ञों को सम्पादित कर सकते थे। इनमें यज्ञ आदि विधान के साथ ब्रह्म आदि तत्त्वों का विवेचन भी हुआ है, उपलब्धआरण्यक ग्रन्थों की संख्या भी आठ है, यथा- ऐतरेयारण्यक, शाङ्खायन, तैत्तिरीय, मैत्रायणी, माध्यन्दिन बृहदारण्यक, काण्वबृहदारण्य, जैमिनीयोपनिषद्-आरण्यक (तवल्कार आरण्यक) छान्दोग्य आरण्यक।

४.**उपनिषद्** - उपनिषद् शब्द उप् और नि उपसर्ग पूर्वक सद्धातु से निष्पन्न हुआ है सद् धातु के तीन

अर्थ है विशरण अर्थात् नाश होना, गति अर्थात् प्राप्त करना, अवसादन अर्थात् शिथिल होना, जिसका अभिप्राय यह है कि उपनिषद् के अध्ययन से अविद्या का नाश, ब्रह्म की प्राप्ति और सांसारिक दुःख शिथिल होते हैं अतः उपनिषद् का मुख्य अभिप्राय ब्रह्मविद्या प्राप्ति है। उप(निकट) और नि(नीचे) उपसर्ग पूर्वक सद् (बैठना) धातु से क्विप् प्रत्यय से निष्पन्न उपनिषद् का अर्थ है -

गुरु के समीप बैठकर रहस्यज्ञान (ब्रह्मज्ञान) को प्राप्त करना है। 'मुक्तिकोपनिषद्' के अनुसार उपनिषदों की संख्या १०८ है, आचार्य शंकर ने जिन १० उपनिषदों पर अपना भाष्य लिखा है वे ही १० उपनिषद् प्राचीनतम एवं प्रामाणिक हैं- यथा

ईश-केन-कठ-प्रश्न-मुण्डक-माण्डूक्य-तित्तिर:
ऐतरेयं च छान्दोग्यं च बृहदारण्यकं दश।।

श्वेताश्वतर उपनिषद् को मिलाकर उपनिषद् की संख्या ११ मानी गई है।

५. वेदाङ्ग- वेद का मूलपाठ अत्यधिक पवित्र है, उसमें परिवर्तन न हो, उच्चारण शुद्ध बना रहे और वेद मन्त्रों के अर्थ का ज्ञान हो जाय इसके लिए वेदाङ्ग साहित्य का आविर्भाव हुआ है। वेदाङ्ग में प्रायः सूत्र-शैली को अपनाया गया है। इन्हें 'सूत्रसाहित्य' भी कहा गया है। इनकी संख्या छः है। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष्।

६. अनुक्रमणी साहित्य- वेदों के शुद्ध स्वरुप की रक्षा के लिए ही अनुक्रमणी साहित्य का प्रादुर्भाव हुआ है। अनुक्रमणीयों में संहिता-विशेष से सम्बन्धित ऋषि, देवता और छन्द आदि की सूचियाँ प्रस्तुत की गयी हैं। सभी वेदों की अनुक्रमणियाँ उपलब्ध हैं। अनुक्रमणी (सूची) बनाने वालों में आचार्य शौनक और आचार्य कात्यायन प्रमुख हैं। अनुक्रमणी ग्रन्थ अनुष्टुप् छन्द में रचे गये हैं। कतिपय अनुक्रमणी ग्रन्थोंका नामोल्लेख इस प्रकार है-

आर्षानुक्रमणी छन्दोऽनुक्रमणी, देवतानुक्रमणी, अनुवाकानुक्रमणी,सूक्तानुक्रमणी, ऋग्विधान, पादविधान, बृहद्देवता आदि। अनुक्रमणी ग्रन्थों में बृहद्देवता का महत्त्वपूर्ण स्थान हैं।

1.3.6 वेद का महत्त्व

सम्पूर्ण वेद वाङ्मय महत्त्वपूर्ण है प्राचीनकाल से लेकर आज तक वेद वाङ्मय सम्पूर्ण-विश्व को प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रुप से विविध उपदेश देता रहा हैं। वेद आगम प्रमाण हैं समस्त ज्ञान के स्रोत हैं। वेद त्रयी विद्या है जो धर्म और अधर्म के बीच भेद का निरुपण करती है। शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि धन से परिपूर्ण भूमि दान से जितना फल मिलता है उतना ही फल तीनोवेदोंके अध्ययन से मिलता है, वह तो उससे भी बढ़कर अक्षय्य लोक की प्राप्ति कराता है, इसलिए प्रतिदिन स्वाध्याय (वेद का अध्ययन) करना चाहिए-

यावन्तं ह वै इमां पृथिवीं वित्तेन पूर्णां ददल्लोकं जयति, त्रिभिस्तावन्तं जयति। भूयांसं च अक्षय्यं च य एवं विद्वान् अहरहः स्वाध्यायमधीते। तस्मात्स्वाध्यायोऽध्येतव्यः।

(शतपथब्राह्मण ११/५/६/१)

वेद भारतीय-साहित्य के आधार हैं। आर्यों के आचार- व्यवहार का साक्षात्कार वेदोंमेंही प्राप्त होता है। आर्यजाति की प्राचीनतम संस्कृति वेदों में मिलती है। विश्व इतिहास की दृष्टि से भी वेदों का महत्त्व है। वेदों का भाषा शास्त्रीय महत्त्व भी है। प्राचीन इतिहास अपने सभी रुपों में वेदों में उपलब्ध है।निष्कर्षतः धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक आर्थिक, भाषाशास्त्रीय, इतिहास, संस्कृति कला आदि सभी तत्त्वों का समावेश वेदों में निहित है। इसलिए वेद का महत्त्व शाश्वत है।

शिक्षा साहित्य-

वैदिक-मन्त्रों के उच्चारण विधि के निर्देशक ग्रन्थ ' शिक्षा' के नाम से प्रसिद्ध हैं। सामान्यतः शिक्षायें प्राचीन ऋषियों के नाम से सम्बद्ध हैं यथा १-व्यासशिक्षा, २. भरद्वाज शिक्षा, ३ पाणिनीय शिक्षा ये प्रमुख शिक्षा ग्रन्थ हैं ।इसके अतिरिक्त याज्ञवल्क्य शिक्षा, वासिष्ठी शिक्षा, कात्यायनी शिक्षा, पाराशरी शिक्षा, माण्डव्य शिक्षा, अमोघानन्दिनी शिक्षा, लोमशी शिक्षा, गौतमी शिक्षा माध्यन्दिनी शिक्षा, केशवी शिक्षा, माण्डूकी शिक्षा, क्रमसन्धान शिक्षा, गलदृकशिक्षा, मनःस्वार शिक्षा का उल्लेख 'शिक्षा संग्रह' नामक ग्रन्थ में उपलब्ध हैं।

वेद का महत्त्व–

वैदिक मन्त्रों के सही उच्चारण के लिए स्वरज्ञान की नितान्त आवश्यकता है। स्वर तीन प्रकार के हैं- उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। वेद में स्वरों की प्रमुखता का प्रधान कारण है अर्थनियामकता, अर्थात् शब्द के एक होने पर भी स्वर भेद से उसमें अर्थ भेद हो जाता है। स्वरों के उच्चारण में एक छोटी सी त्रुटि हो जाने से अर्थ का अनर्थ हो जाया करता है। यज्ञ का विधिवत् सम्पादन स्वरों के यथार्थ उच्चारण से ही अभीष्ट फलदायक हो सकता है जो मन्त्र स्वर या वर्ण से हीन होता है वह मिथ्या प्रयुक्त होने के कारण अभीष्ट अर्थ का प्रतिपादन नहीं करता। वह वाग्वज्र बनकर यजमान का ही नाशक होता है- यथा स्वर के अपराध (त्रुटिपूर्ण उच्चारण से) से 'इन्द्रशत्रु' शब्द यजमान का विनाशक बना।

दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधादिति।।

अतः शुद्ध मन्त्रोच्चारण के लिए शिक्षा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। (महाभाष्य /प्रथम आह्निक)

बोध प्रश्न-

1. वेद का अर्थ क्या है ?
2. वैदिक-संहिताएं कितनी हैं ?
3. वैदिक साहित्य को कितने भागों में वर्गीकृत किया गया है ?
4. उपनिषद् का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ क्या है ?
5. वेदाङ्ग किसे कहते हैं ?

1.4 सारांश:-

वेद भारतीय ज्ञान विज्ञान, धर्म संस्कृति, साहित्य दर्शन और नैतिक शिक्षा के मूल हैं। ये समग्र साहित्य में प्राचीनतम हैं। वेद में ही भारतीय सामाजिक संरचना की आधारशिला प्रतिष्ठित है। वेद-विषयक सामग्री का विश्व की जनता लाभ उठाये इसीलिए वेद के अंग-वेदाङ्गों की आवश्यकता वेदार्थ बोध के लिए उपयोगी मानी गई है, क्यांकि वेदाङ्ग में वे सहायक-तत्त्व विद्यमान हैं, जिनसे वेदों को समझने और उनके कर्मकाण्ड के सम्पादन में सहायता मिलती है।

वेदमन्त्रों के सम्यक् उच्चारण, वेदार्थ के समुचित परिज्ञान, वेद स्वरुप की अवगति, यज्ञों के विधिपूर्वक अनुष्ठान के निमित्त सम्प्रति छः वेदाङ्गों की उपादेयता है।

1.5 पारिभाषिक शब्दावली

1- वेदभाष्यकार - वेदमन्त्रों पर विस्तृत टीका के साथ व्याख्या लिखने वाले।

2- अनुक्रमणी साहित्य - सूची (लिस्ट) जिसमें वेदों के ऋषियों, छन्दों, देवताओं, सूक्तों, अनुवाकों तथा पद की सूची ,गणना सहित दी गयी है।

3- छन्दोबद्ध- छन्द से युक्त।

4- साङ्गोपाङ्ग - अङ्ग और उपाङ्ग सहित।

5- वैदिक संहिता- वेद के मन्त्रों का संग्रह (समूह) मूलपाठ।

6- प्राचीनतम- सबसे पुरानी प्राचीनतमप् (प्रत्यय)।

7- संस्कृतवाङ्मय - संस्कृत भाषा मेंनिबद्ध साहित्य।

1.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. वेद का अर्थ ज्ञान है ऐसा ज्ञान जिससे इष्टप्राप्ति और अनिष्ट निवारण हो।

2. वैदिक-संहिताएं चार है- ऋक्, यजुष्, साम, अथर्व।

3. वैदिक-साहित्य छः वर्गों में विभक्त हैं।

4. उप (समीप), नि (निष्ठापूर्वक) उपसर्ग सद् धातु (बैठने अर्थ में) से क्विप् प्रत्यय के योग से बना है जिसका अर्थ ब्रह्म ज्ञान के लिए गुरु के समीप निष्ठापूर्वक बैठना है।

5. वेद के अध्ययन में सहायक ग्रन्थों को वेदाङ्ग कहा गया है।

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहासवेदखण्ड-पद्मभूषण आचार्य श्री बलदेव उपाध्याय उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ।

2.संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहासवेदाङ्गखण्ड-पद्मभूषण आचार्य श्री बलदेव उपाध्याय उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ।

3.वैदिक साहित्य का इतिहास-डॉ0 कर्ण सिंह, साहित्य-भण्डार, शिक्षा साहित्य प्रकाशन, सुभाष बाजार मेरठ।

4.वैदिक साहित्य और संस्कृति का स्वरुप -डॉ0 ओम प्रकाश पाण्डेविश्व प्रकाशन, नई दिल्ली

1.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री:-

1.संस्कृत साहित्य का इतिहास - डॉ0 उमा शंकर मिश्र।

2.संस्कृत साहित्य का इतिहास - पं0 आचार्य बलदेव उपाध्याय।

3.वैदिक साहित्य का इतिहास - श्री गजाननशास्त्री मुसलगॉवकर,पं. राजेश्वर (राजू) केशवशास्त्री, मुसलगॉव चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी।

4.प्राचीन भारतीय साहित्य, पृ0 175

5.संस्कृत साहित्य का इतिहास (मैकडानल)
6.वैदिक साहित्य का इतिहास, प्रोफेसर पारसनाथ द्विवेदी

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न:-

1.वैदिक साहित्य का परिचय लिखिए।
2. वेद का काल निर्धारण कीजिए।
3. वेद का परिचय एवं महत्त्व पर प्रकाश डालिए।

इकाई-2 वेदाङ्ग परिचय एवं वर्ण्य विषय

इकाई की रुपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 वेदाङ्ग का परिचय एवं वर्ण्य विषय
- 2.3.1 शिक्षा
- 2.3.2 कल्प
- 2.3.3 व्याकरण
- 2.3.4 निरुक्त
- 2.3.5 ज्योतिष
- 2.3.6 छन्द

2.4 वेदाङ्गों की मौलिकता एवं प्रवचनकर्ता
2.5 सारांश
2.6 पारिभाषिक शब्दावली
2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

बी0 ए0 (VAC-01) प्रथम खण्ड से सम्बन्धित यह दूसरी इकाई है। इस खण्ड में वेद-वेदांग से सम्बन्धित वर्णन किये गये हैं। प्रस्तुत खण्ड में वेदांगों का परिचय एवं विर्ण्य विषय प्रस्तुत किया गया है। अतः इस इकाई में आप शिक्षा ,कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्द और ज्योतिष नामक छः वेदांगों का अध्ययन करेंगें।

भारतीय साहित्य और संस्कृति का उद्गम स्थान वेद हैं। धर्म, दर्शन, ज्ञान-विज्ञान आदि सभी वेदों से ही निकले हुए जाते हैं। अपरा विद्या में गणित और वेदों के अलावा वेदों के अंगभूत छः वेदांग, वेद माने गये है। वेद की सहायक विद्याओं को वेदांग कहते हैं। उनमें प्रथम शिक्षा है। जो ज्ञान वेदों का ज्ञान कराने में सक्षम है। इसी प्रकार यज्ञीय कार्यों के लिए कल्प, शब्दादि के स्वरूप ज्ञान हेतु व्याकरण, पदों के निर्वचन के लिए निरुक्त, छन्दों के ज्ञान के लिए छन्द तथा याज्ञानुष्ठान् के लिए आवश्यक नक्षत्र, तिथि, मासादि, का सम्यक् ज्ञान करने के लिए ज्योतिष् नामक वेदांग की आवश्यकता होती है।

अतः इस इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप वेद के अंग भूत छः वेदांगों का परिचय प्राप्त कर उनके प्रतिपाद्य को समझते हुए वेदांगों का महत्त्व बता सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप—

- शिक्षा नामक वेदांग का कार्य एवं महत्त्व को जान सकेंगे।
- यज्ञीय कार्यों के लिए कल्प का क्या उपयोग है, यह समझ सकेंगे।
- शब्दों की निर्मिति और उनके स्वरूप ज्ञान में व्याकरण के महत्त्व को रेखांकित कर सकेंगे।
- शब्दों के निर्वचन में निरुक्त की भूमिका को जान सकेंगे।
- छन्द ज्ञान के लिए छन्दों की शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है,इससे अवगत हो सकेंगे।
- यज्ञानुष्ठान् के लिए आवश्यक नक्षत्र, तिथि, मासादि, का सम्यक् ज्ञान करने के लिए ज्योतिष् नामक वेदांग की आवश्यकता को बतलाने में सक्षम हो सकेंगे।

2.3 वेदाङ्ग का परिचय एवं वर्ण्य विषय

वेद के अंग वेदांग हैं। अङ्ग उन्हें कहते हैं जो वस्तु के स्वरुप को जानने में सहायक होते हैं- '**अङ्यन्ते ज्ञायन्ते अमीभिरिति अङ्गानि'।** भाषा और भाव दोनों दृष्टियों से वेद दुर्बोध हैं अतः वेद के यथार्थ ज्ञान के लिए जो उपयोगी शास्त्र हैं उन्हें 'वेदाङ्ग' नाम से अभिहित किया जाता है। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष् एवं छन्द ये छः वेदाध्ययन के उपयोगी शास्त्र हैं इसलिए इन्हें वेदाङ्ग कहा गया है।

2.3.1 शिक्षा

षड्विध वेदाङ्गों में शिक्षा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। पुरुष के अङ्गों से तुलना करते हुए शिक्षा वेदाङ्ग को वेदरुपी पुरुष की घ्राणेन्द्रिय (नासिका) कहा गया है 'शिक्षा' घ्राणं तु वेदस्य' (पाणिनीय शिक्षा)। वेदोंके भाष्यकार आचार्य सायण ने अपने ग्रन्थ 'ऋग्वेद भाष्यभूमिका' में शिक्षा का अर्थ स्पष्ट किया है- स्वरवर्णाद्युच्चारणप्रकारो यत्र शिक्ष्यते उपदिश्यते सा शिक्षा' अर्थात् जो विद्या स्वर, वर्ण आदि उच्चारण के प्रकार का उपदेश दे वह शिक्षा नाम का वेदाङ्ग है। तैत्तिरीयोपनिषद् में शिक्षा को और भी अधिक स्पष्ट किया है 'शिक्षा' व्याख्यास्यामः - वर्णः, स्वरः मात्रा, बलम् साम, सन्तानः, इत्युक्तः शिक्षाध्यायः (१/१) इससे स्पष्ट होता है कि शिक्षा' वेदाङ्ग उच्चारण सम्बन्धी इन छः विषयों-वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम, सन्तान का बोध कराती है।

वेदाङ्गों के तीन मुख्य उद्देश्य- वेदों का अर्थबोध, उनका सही उच्चारण एवं वेदों का याज्ञिक-प्रयोग है। वेदमन्त्रों के शुद्धोच्चारण के लिए शिक्षा नामक वेदाङ्ग की भूमिका है। शिक्षा का सम्बन्ध वर्णोच्चारण से है। वेद के सबसे छोटे एवं प्रारम्भिक अवयव वर्ण ही है। इस हेतु शुद्ध वर्णोच्चारण की दृष्टि से 'शिक्षा' वेदाङ्गों में प्रथम मानी गई है। 'शिक्षा' को व्याकरण का भी पूर्वावश्यक तत्त्व माना है। इस बात को महाभाष्यकार पतंजलि ने स्वीकार किया है- व्याकरणं नामेयमुत्तराविद्या। सोऽसौ छन्दश्शास्त्रेष्वभिविनीत उपलब्ध्याऽवगन्तुमुत्सहते। (१/२/३२)

शिक्षा का लक्षण स्पष्ट करते हुए ऋग्वेद भाष्य भूमिका में कहा गया है- कि जिस शास्त्र में वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम, तथा सन्तान इन छः विषयों का उपदेश हो उसे ''शिक्षा'' कहते हैं- वर्णस्वराद्युच्चारणप्रकारो यत्रोपदिश्यते सा शिक्षा। उक्त छः विषयों का उल्लेख तैत्तिरीयोपनिषद् की शिक्षावल्ली में भी किया गया है। उनका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है-

(१) वर्ण-

स्वर और व्यंजन के रुप में दो प्रकार के वर्ण हैं। इनकी संख्या ६३ तथा प्लुत ऌ को मिलाने से ६४ है इन वर्णों का पॉच प्रकार से विभाजन है- स्वर, काल, स्थान, आभ्यन्तर प्रयत्न और बाह्य प्रयत्न।

स्वर-

स्वर का तात्पर्य स्वराघात है। स्वर तीन हैं- उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। स्वरभेद से अर्थभेद होता है।

मात्रा- उच्चारण में लगने वाले काल को मात्रा कहते हैं। ये तीन हैं- ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत। इनका प्रयोग स्वरों में होता है। व्यंजनों की अर्धमात्रा मानी जाती है।

बल-

वर्णो के उच्चारण स्थान तथा उच्चारण में वागवयवों (वाणी के यन्त्र) के द्वारा लगने वाले प्रयत्न को बल कहते हैं, वर्णो के उच्चारण स्थान आठ हैं- कण्ठ, उरस्, तालु, मूर्धा, दन्त, ओष्ठ, नासिका और जिह्वामूल। प्रयत्न दो हैं

१-आभ्यान्तर- (ये पॉच है स्पृष्ट, ईषस्पृष्ट, ईषद्विवृत, विवृत एवं संवृत)
२-बाह्य (ये ११ हैं-विवार, संवार, श्वास, नाद, घोष, अघोष, अल्पप्राण, उदात्त, अनुदात्त और स्वरित)

साम-

निर्दोष गुण युक्त उच्चारण को साम कहते हैं। उच्चारण में छः दोष होते हैं-यथा गीतयुक्त पढ़ना, शीघ्रता से पढ़ना, सिर हिलाकर पढ़ना, शुद्धि अशुद्धि के विचार से रहित पढ़ना, अर्थ न जानना, अल्पकण्ठ से पढ़ना इसके अतिरिक्त १८ अन्य दोषों का वर्णन पाणिनीय शिक्षा में हुआ है। उच्चारण के गुण भी छः हैं- मधुरता से पढ़ना, अर्थ स्पष्ट करके पढ़ना, पदच्छेद, सुस्वर, धैर्य एवं लयसमर्थ युक्त पढ़ना।

सन्तान –

सन्धि या संहिता के नियमों के साथ वर्णोच्चारण करना सन्तान कहलाता है। वेदमन्त्रों का मूलपाठ संहिता पाठ है, संहिता पदों की निकटता (सामीप्य) को कहते हैं- 'परः सन्निकर्षः संहिता'। प्रातिशाख्यों में कालव्यवधान से रहित पदों के मेल को संहिता कहते हैं। संहिता पाठ में पदज्ञान रखना अनिवार्य है तभी पदच्छेद या सन्धि विच्छेद पूर्वक पाठ हो सकेगा तथा अर्थ ज्ञान भी हो सकेगा।

2.3.2 कल्प

वेदाङ्ग साहित्य में कल्प का दूसरा स्थान है। वेदरुपी पुरुष का हाथ कल्प है -**हस्तौ कल्पौऽथ पठ्यते** (पाणिनीय शिक्षा) वेद विहित कर्मों को क्रमपूर्वक व्यवस्थित करने वाला शास्त्र कल्पशास्त्र' है- **कल्पो वेदाविहितानां कर्मणामानुपूर्वेण कल्पनाशास्त्रम्** (विष्णुमित्र ऋग्वेद प्रातिशाख्य वर्गद्वय वृति पृ0 १3) यागविधान के नियमों को संक्षिप्त तथा व्यवस्थित रुप में व्यवहारिक उपयोग के लिए कल्पसूत्रों का निर्माण वेद की प्रत्येक शाखा के लिए किया गया है।
कल्पसूत्र के भेद-कल्पसूत्रों के चार प्रकार हैं-

१.श्रौतसूत्र-

इनमें ब्राह्मणग्रन्थों में वर्णित और अग्नि में सम्पद्यमान यज्ञादि अनुष्ठानों का वर्णन है। आश्वलायन, शांखायन, आपस्तम्ब, बोधायन, हिरण्यकेशी, भारद्वाज, वाराह ,खादिर, बैतान आदि अनेक श्रौतसूत्र हैं।

२.गृह्यसूत्र-

इनमें गृह्याग्नि में होने वाले यज्ञों का, उपनयनादि संस्कारों का विस्तार से वर्णन है। इन सूत्रों में पंचमहायज्ञों का विवरण और उनकी विधि विस्तार से दी हुई है। आश्वालायन, शांखायन आपस्तम्ब आदि १२ गृह्य सूत्र उपलब्ध हैं।

३.धर्मसूत्र-

इनमें चतुर्वर्णो और चारों आश्रमों के कर्तव्यों विशेषतःराजा के कर्तव्यों का विशिष्ट प्रतिपादन है, वसिष्ठ धर्मसूत्र, आपस्तम्ब, बौधायन, हिरण्यकेशी और गौतम ये धर्मसूत्र उपलब्ध हैं।

४.शुल्बसूत्र-

इसमें वेदि(यज्ञकुण्ड) के निर्माण की रीति का विशेष रुप से प्रतिपादन है तथा आर्यों के प्राचीन ज्यामितिविषयक कल्पनाओं तथा गणनाओं के प्रतिपादक होने से इसका वैज्ञानिक महत्त्व भी है। शुल्ब का अर्थ है "नापने की रस्सी'। शुल्बसूत्रों को भारतीय गणितशास्त्र के प्राचीनतम अवशेष माना जाता है। बोधायन, आपस्तम्ब मानव, मैत्रायणीय, वाराह, बाधूल, कात्यायन आदि प्रमुख शुल्बसूत्र हैं।

इन सूत्रों के अतिरिक्त श्राद्धकल्पसूत्र, पितृकल्पसूत्र नाम से दो उपसूत्र भी मिलते हैं, एक अन्य सूत्र प्रायश्चितसूत्र नाम से भी मिलता हैं।

कल्पवेदाङ्ग का महत्त्व-

बाह्मणों के याज्ञिक विधानों को अति संक्षिप्त रुप में प्रस्तुत करने के कारण कल्पशास्त्र के स्थान में कल्पसूत्र प्रयोग किया जाता है। सूत्रात्मक रुप होने के कारण इसका महत्त्व अधिक है। इन्हें आसानी से स्मरण किया जा सकता है तथा इनके माध्यम से याज्ञिक विधानों को सम्पन्न कराया जा सकता है।

2.3.3 व्याकरण

वेदाङ्ग में व्याकरण का तीसरा स्थान है। इसे वेदपुरुष का मुख कहा जाता है- मुखं व्याकरणं स्मृतम् (पाणिनीय शिक्षा) प्रधानं च षट्सु-अङ्गेषु व्याकरणम् कहकर महाभाष्यकार पतंजलि ने वेद के छः अंगो में इसे प्रधान कहा है। व्याकरण के द्वारा वेद और लोक में प्रयुक्त शब्दों की मीमांसा की जाती है-व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते शब्दा अनेन, इति व्याकरणम्। व्याकरणशास्त्र का सर्वप्रथम संकेत ऋग्वेद में उपलब्ध होता है, प्रातिशाख्य-ग्रन्थों में वैदिक व्याकरण का सर्वप्रथम विवेचन मिलता है, तत्पश्चात् लौकिक (संस्कृत) व्याकरण का प्रादुर्भाव माना गया है। आचार्य-पाणिनि रचित अष्टाध्यायी संस्कृत व्याकरण का प्रमुख ग्रन्थ है। इसी व्याकरण ग्रन्थ में आचार्य कात्यायनी ने वार्तिक तथा आचार्य पतंजलि ने महाभाष्य' लिखा है। ये तीनों ही व्याकरणशास्त्र के मुनित्रय कहे जाते हैं। व्याकरण का प्रयोजन-आचार्य पतञ्जलि ने व्याकरण वेदाङ्ग के पाँच प्रमुख प्रयोजनों का उल्लेख किया है-रक्षा, ऊह, आगम, लघु तथा असन्देह-रक्षोहागमलघ्वसन्देहाः प्रयोजनम् (महाभाष्य/प्रथम पस्पशाह्निक) महाभाष्यकार ने १३ अन्य भी प्रयोजन बताये हैं जिनका प्रतीक रुप में निर्देशन किया है- **तेऽसुराः। यदधीतम्। यस्तु प्रयुङ्क्ते। अविद्वांसः। विभक्ति कुर्वन्तिः। यो वा इमाम्। चत्वारि। उत त्वः। सक्तुमिव। सारस्वतीम्। दशम्यां पुत्रस्य। सुदेवो असि वरुण इत्यादि (महाभाष्य/प्रथम पस्पशाह्निक)**

मुनित्रय की रचना के बाद आचार्य भर्तृहरि का 'वाक्यपदीय' व्याकरण का उत्कृष्ब् ग्रन्थ है। अष्टाध्यायी के सूत्रों को प्रक्रियानुसार एक नवीन क्रम में निबद्ध करने वाले व्याकरणचार्य श्री रामचन्द्र हैं, 'प्रक्रिया कौमुदी' इनकी रचना है। इसी क्रम का निर्वाह करने वाले वैयाकरणाचार्य भट्टोजिदीक्षित का नाम व्याकरण के इतिहास में नवयुग प्रवर्तक के रुप में है। 'सिद्धान्त-कौमुदी' , 'शब्द कौस्तुभ' तथा 'प्रौढ़मनोरमा' इनके तीन ग्रन्थ अत्यन्त प्रसिद्व हैं। आचार्य नागेशभट्ट की परिभाषेन्दुशेखर, शब्देन्दुशेखर तथा लघुमंजूषा तीन व्याकरण की रचनाएं हैं जो व्याकरण की महनीय निधि हैं। निष्कर्षतः वेदार्थज्ञान के लिए व्याकरण वेदाङ्ग की आवश्यकता है।

2.3.4 निरुक्त

निरुक्त श्रोत्रमुच्यते (पाणिनीय शिक्षा) निरुक्त में वैदिक शब्दसमाम्नाय की व्याख्या की गई है जो निघण्टु के पॉच अध्यायों में संकलित है। निघण्टु वैदिक शब्दकोश है जिसमें १३४१ शब्द परिगणित हैं इसके प्रथम तीन अध्याय नैघण्टुक काण्ड कहे जाते हैं। चतुर्थ अध्याय को नैगम काण्ड और अन्तिम अध्याय दैवतकाण्ड कहा गया है। आचार्य यास्क द्वारा रचित निरुक्त में निघण्टुगत २३० शब्दों का निर्वचन है। निरुक्त में निर्वचन करने के लिए वर्णागम, वर्ण-विपर्यय वर्ण-विकार, वर्णनाश और धातुओं का अनेक अर्थो में प्रयोग ये पाँच नियम है निरुक्त में मूलतः १२ अध्याय हैं। इसके अतिरिक्त दो अध्याय परिशिष्ट रुप में हैं। कुल मिलाकर १४ अध्यायों का विभाजन पादों में हैं। निरुक्त पर दुर्गाचार्य, स्कन्द महेश्वर और वररुचि की टीकाए उपलब्ध हैं।

निरुक्त का लक्षण-

आचार्य सायण ने निरुक्त का लक्षण किया है- 'अर्थावबोधे निरपेक्षतया पदजातं यत्रोक्तं तन्निरुक्तम् अर्थात् अर्थज्ञान के विषय में जहॉ स्वतन्त्ररुप में पदसमूह का कथन किया गया है वह 'निरुक्त' कहलाता है।

महत्त्व-

आचार्य यास्क ने निरुक्त और व्याकरण शास्त्र के सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए निरुक्त को व्याकरण का पूरक स्वीकार किया है तथा निरुक्त ज्ञान के लिए व्याकरण का ज्ञान भी आवश्यक माना है।आचार्य दुगाचार्य के अनुसार व्याकरण और कल्प आदि वेदाङ्गों के लिए अर्थ को जानना आवश्यक है। निरुक्त के द्वारा वैदिक-शब्दों के अर्थ का ज्ञान होता है। बिना अर्थ ज्ञान के दोनों ही वेदाङ्ग व्याकरण और कल्प व्यर्थ हैं। अतः वेदाङ्गों में निरुक्त का विशिष्ट महत्त्व है।

2.3.5 ज्योतिष

ज्योतिषामयनं चक्षुः (पाणिनीय शिक्षा) अर्थात् वेदपुरुष का चक्षु ज्योतिष् वेदाङ्ग को कहा गया है। वैदिक-यज्ञों में तिथि, नक्षत्र, पक्ष, मास, ऋतु तथा सम्वत्सर का सूक्ष्म विधान होता है। कौन से यज्ञ किस तिथि, नक्षत्र, पक्ष आदि शुभमुहूर्त्त में हो उसकी गणना के लिए 'ज्योतिष् वेदाङ्ग' का अतीव महत्त्व है। काल के किसी भी खण्ड को जानने के लिए ज्येातिष् ज्ञान आवश्यक है। 'वेदाङ्ग ज्योतिष्' के अनुसार 'यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञम्' अर्थात् जो व्यक्ति

ज्योतिष् को जानता है, वही यज्ञ को भी जानता है।'ज्योतिष् वेदाङ्ग' गणना पर आधारित है इसलिए ज्योतिष् में गणित को मूर्धन्य (श्रेष्ठ) स्थान दिया जाता है। 'ज्योतिष्वेदाङ्ग' का उपलब्ध और प्रतिनिधि ग्रन्थ 'वेदाङ्ग ज्योतिष्' है इसके दो पाठ (संस्करण) उपलब्ध हैं एक पाठ का सम्बन्ध ऋग्वेद से है इसमें ३६ श्लोक हैं। दूसरे पाठ का सम्बन्ध यजुर्वेद से है इसमें ४३ श्लोक हैं। इसके रचयिता लगध हैं। ईस्वीपूर्व १४०० वर्ष की यह रचना प्राचीन एवं दुर्बोध है। डॉ थीबों, शंकर बालाकृष्ण दीक्षित, लोकमान्य तिलक और सुधाकर द्विवेदी आदि विद्वानों ने इस पर भाष्य लिखे हैं। वेदाङ्ग ज्योतिष्' में गणना का आधार २७ नक्षत्र हैं। इसमें राशियों का कहीं उल्लेख नहीं है। यही ज्योतिष् का आधारभूत ग्रन्थ है।

2.3.6 छन्द

छन्द नामक वेदाङ्ग वेदपुरुष के पैर हैं 'छन्द:पादौ तु वेदस्य' (पाणिनीय शिक्षा) छन्द वेद को गति प्रदान करते हैं। आचार्ययास्क के अनुसार छद् धातु से निष्पन्न छन्द शब्द आच्छादनार्थक है- छन्दांसि छादनात् (निरुक्त ७.१९) अर्थात् वेद को छादन करने (ढकने) के कारण इन्हें छन्दस् कहा जाता है। सर्वानुक्रमणीकार कात्यायन ने 'यदक्षरपरिणामं तच्छन्दः' अर्थात् अक्षरों के परिणाम को छन्द कहा है। इससे स्पष्ट होता है कि वैदिक छन्दोमें अक्षरों की गणना होती है, मात्राओं की नहीं। गुरु लघु का नियम इनमें नहीं होता है। इसमें चरणों की संख्या कम से कम एक तथाअधिक से अधिक पॉच होती है। लौकिक छन्दों मेंसदैव चार चरण ही होते हैं। वैदिक छन्दों की मुख्य संख्या ७ (सात) है। वैदिक छन्दों मेंक अक्षर से लेकर १०४ अक्षरों तक के छन्दों का विधान आचार्यों ने किया है।

महत्त्व-

छन्दों का विवरण मन्त्र संहिताओं में उपलब्ध होता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी विनियोग-विधान के विषय में, द्रव्य, देवता और यजमान के प्रयोजनानुरुप विविध छन्दों का विधान है। यथा ब्रह्मवर्चस् के लिए गायत्री छन्द, आयुष्य के लिए उष्णिक् छन्द, स्वर्ग प्राप्ति के लिए अनुष्टुप् छन्द, श्री प्राप्ति के लिए बृहती छन्द, यज्ञ के लिए पङ्क्ति छन्द, शक्ति सामर्थ्य के लिए त्रिष्टुप् छन्द तथा पशु प्राप्ति के लिए जगती छन्द का विधान किया गया है। छन्दोविषयक प्राचीन विवरण शांखायन श्रौतसूत्र, ऋक्प्रातिशाख्य, सामवेदीय, निदानसूत्र, पिंगलप्रणीत छन्दःसूत्र तथा कात्यायन एवं अन्य आचार्यों के द्वारा प्रणीत छन्दोऽनुक्रमणियों में उपलब्ध हैं। पिङ्गलाचार्य के छन्दःसूत्र में छन्द की सर्वाधिक सामग्री उपलब्ध है। वैदिक छन्दों के साथ ही इसमें लौकिक छन्दों का भी विवेचन है। 'छन्दःसूत्रों के आठ अध्यायों में से प्रथम चार अध्यायों में वैदिक छन्दों के लक्षण दिये गये हैं। छन्दःसूत्र पर हलायुधभटटकृत 'मृतसंजीवनी' व्याख्या उपलब्ध है। प्रमुख वैदिक-छन्द ७ (सात) हैं।

१- गायत्री-तीन चरण ८ गुणा ३ =२४ अक्षर ,

२- उष्णिक् तीन चरण८,८,१२,२८ अक्षर

३-अनुष्टुप्-चार चरण, ८ गुणा ४ =३२ अक्षर,

४-बृहती चार चरण८,८,१२,८ ,३६ अक्षर,
५-पंक्ति -पॉच चरण, ८ गुणा ५ =४० अक्षर,
६-त्रिष्टुप् चार चरण,११ गुणा ४=४४ अक्षर,
७-जगती चार चरण, १२ गुणा ४ =४८ अक्षर
ऋग्वेद में सर्वाधिक त्रिष्टुप् छन्द प्रयुक्त हैं जिनकी संख्या ४२५३ फिर गायत्री छन्द की संख्या २४६७, तत्पश्चात् जगती छन्द की संख्या १३५८ है।

वैदिक छन्द में एक या दो अक्षरों की अधिकता अथवा न्यूनता से छन्द में अन्तर नहीं आता। एक अक्षर कम होने से निचृत् एक अधिक होने पर भुरिक्, दो कम होने पर विराट्, दो से अधिक होने पर स्वराट्, विशेषण लगाया जाता है यथा 'गायत्री छन्द' में एक अक्षर कम होने पर 'निचृत् गायत्री' एक अक्षर अधिक होने पर ' भुरिक् गायत्री' छन्द ही रहता है। इसी तरह अन्य छन्दों की स्थिति भी समझी जाती है। सात मुख्य छन्दों के अतिरिक्त सात अतिछन्द भी हैं। जिनमें चार-चार अक्षरों की संख्या बढती रहती है उसी के आधार पर छन्द अनेक हो जाते हैं। यथा जगती में ४८ अक्षर होते हैं। चार अक्षर अधिक होने पर अति जगती, ४ और अधिक होने पर शक्वरी इसी तरह ४-४ अक्षरों की अधिकता से अतिशक्वरी, अष्टि, अत्यष्टि, धृति अतिधृति छन्द बने हैं जिनमें चार-चार की संख्या अधिक है। इसी प्रकार चार-चार अक्षरों की संख्या बढ़ने से कृति, प्रकृति, आकृति, विकृति, संकृति, अभिकृति तथा उत्कृति छन्द कहे गये हैं। अन्तिम छन्द उत्कृति में १०४ अक्षर होते हैं।

निष्कर्षतः छन्द को जाने बिना मन्त्र का शुद्ध पाठ नहीं हो सकता है तथा स्तुतिप्रधान संहिताओं के द्वारा देवताओं को प्रसन्न करने की दृष्टि से भी छन्द का महत्त्व है।

2.4 वेदाङ्गों की मौलिकता एवं प्रवचनकर्ता

वेदाङ्गों की आधारभूत सामग्री का पहला स्रोत मन्त्र संहिताऐं हैं जिनमें श्रौतयागों के नाम, वैदिक शब्दों के निर्वचन, भाषा के स्वरुप की संरचना, व्याकरण की मूल अवधारणा, विभिन्न नक्षत्रों और छन्दों के नाम उपलब्ध होते हैं। दूसरा स्रोत ब्राह्मण-साहित्य है जिसमें श्रौतयागों से सम्बद्ध विधि वाक्य आनुष्ठानिक सूक्ष्म विवरण के साथ उपलब्ध हैं। निर्वचनों का विशाल भण्डार ब्राह्मण-साहित्य है। छन्दों की सामग्री तथा किस छन्द का प्रयोग करने से कौन सी कामना पूरी होती है इसका उल्लेख ब्राह्मण-साहित्य में उपलब्ध है। गोपथ ब्राह्मण के पूर्वभाग में धातु, प्रातिपदिक, नाम, आख्यात, लिंग, वचन, विभक्ति, प्रत्यय, स्वर, उपसर्ग, निपात, विकार, विकारी, मात्राअक्षर, पद, संयोग, प्रयत्न, शिक्षा, वर्ण, कृदन्त, अव्यय आदि व्याकरण के पारिभाषिक शब्द ब्राह्मण ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं। तैत्तिरीयोपनिषद् में वेदाङ्ग विषयक सामग्री उपलब्ध है। छान्दोग्योपनिषद् में व्याकरण के पारिभाषिक शब्दों का उल्लेख है। महाभारत, बृहन्नारदीय पुराण में वेदाङ्गविषयक सामग्री मिलती है। सूत्र-साहित्य में वेदाङ्ग विषयक समस्त सामग्री को एक साथ संकलित करने हेतु सूत्रग्रन्थों के रुप में बृहद्वाङ्मय का प्रणयन हुआ है।

बोध प्रश्न-1

१. वेद का अर्थ क्या है?
२. वैदिक-संहिताएं कितनी हैं?
३. वैदिक साहित्य को कितने भागों में वर्गीकृत किया गया है?
४. उपनिषद् का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ क्या है?
५. वेदाङ्ग किसे कहते हैं?
६. शिक्षा की परिभाषा बताइए?
७. वेदरुपी पुरुष के हाथ, पैर, मुख,नेत्र, नासिका की संज्ञा किसे दी गयी है?
८. वैदिक छन्द कितने हैं?
९. वेदाड.ग का क्या महत्त्व है?
१०. कल्प की संख्या कितनी हैं?
११.ज्योतिष के मुख्य ग्रन्थ का नाम लिखिये

बोध प्रश्न-2

निम्नलिखित में सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिये -

1. वेदांग कितने है -

क. तीन ख. चार ग. पॉच घ. छः

2. वेद का पैर किसे कहा जाता है -

क. कल्प ख. शिक्षा ग. ज्योतिश घ. छन्द

3. निम्नलिखित में वेद का मुख है -

क. व्याकरण ख. ज्योतिष ग. निरुक्त घ. कोई नहीं

4. वेद का नेत्र कहे जाने वाला वेदांग कौन है -

क. व्याकरण ख. ज्योतिष ग. निरुक्त घ. कल्प

5. सन्तान का अर्थ है -

क. संहिता ख. पुत्र ग. लोक घ. कोई नहीं

6. ऋक्प्रतिशाख्य में कितने अध्याय है -

क. 3 ख. 4 ग. 5 घ. 6

7. व्याकरण के अध्ययन के कितने प्रयोजन है -

क. 3 ख. 4 ग. 5 घ. 6

2.5 सारांश:-

वेद भारतीय ज्ञान विज्ञान, धर्म संस्कृति, साहित्य दर्शन और नैतिक शिक्षा के मूल हैं। ये समग्र साहित्य में प्राचीनतम हैं। वेद में ही भारतीय सामाजिक संरचना की आधारशिला प्रतिष्ठित है। वेद-विषयक सामग्री का विश्व की जनता लाभ उठाये इसीलिए वेद के अङ्ग-वेदाङ्गों की

आवश्यकता वेदार्थ बोध के लिए उपयोगी मानी गई है, क्यांकि वेदाङ्ग में वे सहायक-तत्त्व विद्यमान हैं, जिनसे वेदों को समझने और उनके कर्मकाण्ड के सम्पादन में सहायता मिलती है। वेदमन्त्रों के सम्यक् उच्चारण, वेदार्थ के समुचित परिज्ञान, वेद स्वरुप की अवगति, यज्ञों के विधिपूर्वक अनुष्ठान के निमित्त सम्प्रति छः वेदाङ्गों की उपादेयता है।

शिक्षा वेदाङ्ग मन्त्रों के साधु उच्चारण की शिक्षा देता है, तो कल्प विधियों का विधान बतलाता है-कल्प्यते समर्थ्यते यागप्रयोगोऽत्र। व्याकरण और निरुक्त वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति बतलाते हैं, तथा वेदार्थ पर प्रकाश डालते हैं, ज्योतिष् कर्मानुष्ठान का कालज्ञापक है। विभिन्न यज्ञों में भिन्न भिन्न छन्दोमय मन्त्रों का विनियोग होता है जिसे छन्द वेदाङ्ग से जाना जा सकता है। अतः वेदाङ्ग का महत्त्व वेदाध्येताओं के लिए आवश्यक है क्यांकि वेदार्थ को जानने वाला ब्रह्मलोक की महिमा को प्राप्त करता है यथा- पाणिनीय-शिक्षा में वेदाङ्ग की महत्ता प्रतिपादित है- **'तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते'।**

2.6 पारिभाषिक शब्दावली:-

१- प्राचीनतम	-	सबसे पुरानी प्राचीनतमप् (प्रत्यय)।
२- संस्कृतवाङ्मय	-	संस्कृत भाषा मेंनिबद्ध साहित्य।
३- साङ्गोपाङ्ग	-	अङ्ग और उपाङ्ग सहित।
४- वैदिक संहिता	-	वेद के मन्त्रों का संग्रह (समूह) मूलपाठ।
५- वेदभाष्यकार	-	वेदमन्त्रों पर विस्तृत टीका के साथ व्याख्या लिखने वाले।
६- छन्दोबद्ध	-	छन्द से युक्त।
७- सम्प्रति	-	वर्तमान में।
८- ऐतरेयारण्यक	-	ऐतरेय आरण्यक।
९- जैमिनीयोपनिषद्	-	जैमिनीय उपनिषद्।
१०-तैत्तिरीयोपनिषद्	-	तैत्तिरीय उपनिषद्।
११-प्रयोजनानुरूप	-	प्रयोजन के अनुरूप।
१२-आनुष्ठानिक	-	यज्ञादि अनुष्ठान से सम्बन्धित।
१३-पारिभाषिक	-	परिभाषा सम्बन्धित।

2.7 बोध प्रश्न के उत्तर:-

बोधप्रश्नोत्तर-1

१. वेद का अर्थ ज्ञान है ऐसा ज्ञान जिससे इष्टप्राप्ति और अनिष्ट निवारण हो।

२. वैदिक-संहिताएं चार है- ऋक्, यजुष्, साम, अथर्व।

३. वैदिक-साहित्य छः वर्गों में विभक्त हैं।

४. उप (समीप), नि (निष्ठापूर्वक) उपसर्ग सद् धातु (बैठने अर्थ में) से क्विप् प्रत्यय के योग से बना है जिसका अर्थ ब्रह्म ज्ञान के लिए गुरु के समीप निष्ठापूर्वक बैठना है।

५. वेद के अध्ययन में सहायक ग्रन्थों को वेदाङ्ग कहा गया है।

६. शिक्षा जिसमें स्वर, वर्ण, मात्रा, बल, (प्रयत्न) साम और सन्तान का वर्णन किया गया हो वह शिक्षा है।

७ . वेदरूपी पुरुष के छः अंग -

पाद -छन्द

हस्त - कल्प

घ्राण - शिक्षा

श्रोत्र - निरुक्त

चक्षु - ज्योतिष्

मुख - व्याकरण

वैदिक छन्द- ७ (सात)

गायत्री - २४ अक्षर,

उष्णिक् - २८ अक्षर

अनुष्टुप् - ३२ अक्षर

बृहती - ३६ अक्षर

पंक्ति - ४० अक्षर

त्रिष्टुप् - ४४ अक्षर

जगती - ४८ अक्षर

९. वेदमन्त्रों के अध्ययन के लिए।

१०. कल्प- ४ हैं।

११. 'वेदाङ् ज्योतिष' है।

बोधप्रश्नोत्तर-2

1.घ 2.घ 3.क 4.ख 5.ख 6 क 7. ग

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहासवेदखण्ड-पद्मभूषण आचार्य श्री बलदेव उपाध्याय उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ।

2.संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहासवेदाङ्गखण्ड-पद्मभूषण आचार्य श्री बलदेव उपाध्याय उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ।

3.वैदिक साहित्य का इतिहास-डॉ0 कर्ण सिंह, साहित्य-भण्डार, शिक्षा साहित्य प्रकाशन, सुभाष बाजार मेरठ।

4.प्राचीन भारतीय साहित्य, पृ0 175

5.संस्कृत साहित्य का इतिहास (मैकडानल)

6.वैदिक साहित्य का इतिहास , प्रोफेसर पारसनाथ द्विवेदी

2.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री:-

1.संस्कृत साहित्य का इतिहास - डॉ0 उमा शंकर मिश्र।
2.संस्कृत साहित्य का इतिहास - पं0 आचार्य बलदेव उपाध्याय।
3.वैदिक साहित्य का इतिहास - श्री गजाननशास्त्री मुसलगॉवकर,पं. राजेश्वर (राजू) केशवशास्त्री, मुसलगॉव चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी।
4.वैदिक साहित्य और संस्कृति का स्वरुप -डॉ0 ओम प्रकाश पाण्डेविश्व प्रकाशन, नई दिल्ली
5.महाभाष्य प्रथम पस्पशाह्निक-महर्षि पतञ्जलि, विद्या निधि हिन्दी व्याख्या विद्या निधि शोध संस्थान, कुरुक्षेत्र।

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न:-

1.वैदिक साहित्य का परिचय लिखिए।
2. वेदांगों का वर्णन कीजिए।
3.शिक्षा नामक वेदांग का परिचय दीजिए।
4.वेदांगों के वर्ण्य विषय पर प्रकाश डालिए।
5.छन्द नामक वेदांग का परिचय दीजिए।

इकाई-3 संहिता एवं ब्राह्मण ग्रन्थों का स्वरूप एवं प्रतिपाद्य विषय

इकाई की रुपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 संहिता स्वरूप एवं प्रतिपाद्य विषय
    3.3.1 ऋक् संहिता
    3.3.2 यजुः संहिता
    3.3.3 साम संहिता
    3.3.4 अथर्व संहिता
3.4 ब्राह्मण ग्रन्थों का स्वरूप एवं प्रतिपाद्य विषय
3.5 वेद के प्रमुख भाष्यकार
3.6 वैदिक एवं लौकिक साहित्य में भेद
3.7 सारांश
3.8 पारिभाषिक शब्दावली
3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.11 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.12 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रिय शिक्षार्थियों!

बी0 ए0 (VAC-01) वैदिक अध्ययन (Vedic Studies) नामक पाठ्यक्रम के खण्ड प्रथम से सम्बन्धित यह तृतीय इकाई है। इस खण्ड में संहिता एवं ब्राह्मण ग्रन्थों का स्वरूप एवं उनके प्रतिपाद्य विषय का वर्णन किया गया हैं। प्रस्तुत खण्ड में ऋक् संहिता, यजुः संहिता, साम संहिता, अथर्व संहिताओं का स्वरूप एवं प्रतिपाद्य विषय तथा ब्राह्मण ग्रन्थों का स्वरूप एवं प्रतिपाद्य विषय साथ ही वेद के प्रमुख भाष्यकारों, वैदिक एवं लौकिक साहित्य के भेद प्रभेद का अध्ययन करेंगें।

भारतीय संस्कृत के इतिहास में ही नहीं, आपितु विश्व साहित्य के इतिहास में भी वेदों का स्थान नितान्त गौरवपूर्ण है। भारतीय संस्कृति में श्रुति की दृढ़ आधारषिला के ऊपर भारतीय धर्म तथा सभ्यता का भव्य विशाल प्रासाद प्रतिष्ठित है। अपने प्रतिभाचक्षु के सहारे साक्षात्कृत - धर्मा ऋषियों के द्वारा अनूभूत आध्यात्मशास्त्र के तत्वों की विशाल विमल शब्दराशि का नाम ही 'वेद' है। वेद का 'वेदत्व' इसी में है कि प्रत्यक्ष या अनुमान के द्वारा दुर्बोध तथा अज्ञेय उपाय का ज्ञान वह स्वयं कराता है इसीलिए हम ईश्वर विरोध को सध्न कर सकते हैं परन्तु वेद विरोध हमारे भारतीयों के लिए असह्य हैं। वेद के माहात्म्य को स्वीकार करते हुवे शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि-धन से परिपूर्ण पृथिवी के दान करने से जितना फल होता है, वेदों के अध्ययन से भी उतना ही फल मिलता है उतना ही नहीं प्रत्युत उससे भी बढ़कर अविनाश-शाली अक्षम्य लोक को मनुष्य प्राप्त करता है।

वेद वस्तुतः एक ही है परन्तु वस्तु एवं स्वरूप भेद के कारण से चार रूप में माने जाते हैं। इन वेदों में सन्निहित मन्त्रों का समूह ही संहिता है तथा इनके मन्त्रों पर जिन महर्षियों ने अपने मत प्रस्तुत किए हैं उन्हें भाष्यकार के रूप में जाना जाता है। इस इकाई में आप वेद-संहिता उनके भाश्यकार तथा वैदिक एवं लौकिक संस्कृत में अन्तर क्या है ? इन विशयों का विस्तृत रूप से अध्ययन कर सकेगें।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप—

- वैदिक संहिता के विषय में ज्ञान प्राप्त कर सकेगें।
- वैदिक भाष्यकारों से परिचित हो सकेगें।
- वैदिक तथा लौकिक साहित्य में अन्तर स्थापित कर सकेगें।
- वेद विषयक अनेक प्रश्नों के उत्तर सरलता पूर्वक दे सकेगें।
- 'वेद' शब्द के व्यापक अर्थ का ज्ञान प्राप्त कर सकेगें।

3.3 संहिता स्वरूप एवं प्रतिपाद्य विषय

भारतीय विचारकों के अनुसार नित्य अपौरूषेय मंत्र ब्राह्मणात्मक शब्द राशि कों वेद कहा जाता है मिमांसा दर्शन के आचार्य वेद का लक्षण करते है कि - **अपौरूषेयं वाक्यं वेद:**आचार्य सायण ने इष्ट प्राप्ति और अनिष्टपरिहार के लिए अलौकिक परिहार बतलाने वाले ग्रंथ को वेद शब्द से सन्निहित किया है। उनके अनुसार- **'इष्ट प्राप्ति अनिष्ट परिहारयो: अलौलिक उपायं यो ग्रंथों वेदयति स: वेद'।।** महर्षि कात्यायन और आपस्तम्ब ने अपने यज्ञ-परिभाषा में वेद का दोश रहित लक्षण करते हुए लिखा है कि - **मन्त्रब्राम्हणयोर्वेदनामधेयम्'** आचार्य सायण ने वेद की वेदता को सिद्ध करते हुए यह बतालाया है कि प्रत्यक्ष और अनुमान के द्वारा जिस उपाय का बोध नहीं होता उस अलौलिक उपाय को बतलाने वाला वेद कहा जाता है। उन्होंने अपने भाष्य भूमिका में उदृत किया है कि-

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एनं विन्दति वेदने तस्माद् वेदस्य वेदता।

आपस्तम्ब के द्वारा बताये गये वेदलक्षण में प्रयुक्त मंत्र शब्द की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि मननात् मंत्राः अर्थात् जिनके द्वारा यज्ञ यागो का अनुष्ठान निष्पन्न होता है तथा जिनमें उल्लिखित देवाताओं का स्तुति विधान किया जाता है। उन्हें मन्त्र कहते है। ब्राम्हण का अभिप्राय ग्रंथ विशेश है। 'ब्रम्हन् के विविध अर्थों में से एक अर्थ है- यज्ञ वृहवर्धने धातु से निष्पन्न इस शब्द का अर्थ है 'वर्धन विस्तार, 'वितान' या यज्ञ। अतः यज्ञ कि विविध क्रियाओं को बतलाने वाले ग्रंथों की सामान्य संज्ञा ब्राह्मण है। वेद तो वस्तुतः एक ही है परन्तु स्वरूप भेद के कारण जैमिनीय सूत्र के अनुसार तीन भेद बताए गये है- ऋक्, यजुः और साम।

(1) ऋक्-तेषामृग् यत्रार्थ वशेन पादव्यवस्था ।। सम-जौ० सू-2।1।35

(2) गीतिषु समाख्या- जै०सू०- 2।1।36

(3) यजु: शेश शब्द: जै०सू० 2।1।37

श्रीमद्भागवत ने वेदों की सृष्टि के प्रकरण में एक पद्य वेद चतुष्टय के वर्ण्य विषयक को निर्निष्ट किया है-

ऋक यजु: सामार्थवाख्यान वेदान पूर्वादिभिर्मुखै:।
शस्त्र मिज्यां स्तुतिस्तोमं प्रायाश्चितं त्यधात्क्रमात्।।

अर्थात् ऋक् का अर्थ विषय है शस्त्र। जो मंत्र होता द्वारा उच्चरित होता है तथा जिसका गान नहीं किया जाता हैं वह शस्त्र कहलाता है। यजुष का विषय है इज्या अर्थात् यज्ञकर्म। यजुर्वेद से यज्ञ के शरीर की निष्पत्ति होती है। साम का विषय है-स्तुतिस्तोम- स्तुति के लिए प्रयुज्यमान ऋक समुदाय। अथर्व का प्रतिपाद्य विषय है प्रायश्चित। श्रीधर स्वामी का कहना है कि प्रायश्चित का लक्ष्य ब्राह्मकर्म हैं अन्य ऋात्विजों के कर्म में त्रुटि दिखलाना एवं प्रायश्चित का उपदेश करना ये दोनों ब्रह्मा के कर्म है।

ऋग्वेद का अथर्ववेद का रचना का संबंध याज्ञिक अनुष्ठानों के साथ साक्षात् रूप से भले ही न हो परन्तु अन्य दो संहिताओं सामसंहिता तथा यजुः संहिता का निर्माण यज्ञ-याग के विधानों को लक्ष्य में रखकर किया गया था। यज्ञ कर्म में उपयुक्त चार ऋत्विजों की आवश्यकता होती है।

(1) हौत्र कर्म के सम्पादन का श्रेय होता नामक ऋत्विज्ञ को है, जो ऋग्वेद की ऋचाओं का पाठ कर उपयुक्त देवताओं केा यज्ञ में आह्वान करने का कार्य करता है।

(2) औद्गात्रकर्म का संपादन 'उद्गाता नामक ऋत्विज का विशिष्ट कार्य है जो तत्तत् देवताओं की स्तुति में साम का गायन करता है जिसका परिभाषिक नाम 'स्तोत्र' है उद्गाता का संबंध सामवेद से है।

(3) अध्वर्यु ही यज्ञ के मुख्य कर्मों का निष्पादक प्रधान ऋत्विज होता है। उसी के विशिष्ट कर्म के लिए ही यजुर्वेद की संहिताएं भिन्न-भिन्न शाखाएं में संकलित की गई है।

(4) ब्रह्मा नाम ऋत्विज्ञ का कार्य यज्ञ के बाहरी विध्नों से रक्षा स्वरों के सम्भाव्य त्रुटियों का मार्जन तथा यज्ञीय अनुष्ठानों में उत्पन्न होने वाले नाना प्रकार के दोषों के दूरीकरण के लिए प्रायश्चित का विधान करना है इसीलिए ब्रह्मा यज्ञ का अध्यक्ष है।

इस प्रकार इन चारों ऋत्विजों के विशिष्ट कर्मों के लिए आवश्यक मंत्रों का संकल्पन चार 'वैदिक संहिता' के रूप में किया गया है। ऋग्वेद के एक मंत्र में इस सिद्धांत की सूचना सम्यक रूप में उपस्थित की गई हैः।

ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान्
गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु।
ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां
यज्ञस्य मात्रां वि मिमीत उ त्वः॥

यज्ञ अनुष्ठानों का ध्यान में रखकर भिन्न-भिन्न ऋत्विजों के उपयोग के लिये इन मंत्र संहिताओं का संकलन किया है। अर्थात् मन्त्रों के समूह को संहिता कहते है। ये मंत्र संहिताएं चार हैः। (1) ऋक् संहिता (2) यजु संहिता (3) सामसंहिता (4) अथर्व संहिता

3.3.1 ऋक् संहिता

वेद चतुष्टय में ऋग्वेद का गौरव सबसे अधिक माना जाता है। पाश्चात् दृष्टि से ऋग्वेद भाषा तथा भाव के विचार से अन्य वेदों से नितान्त प्राचीन है। अतएव विशेष उपयोगी माना जाता है। भारतीय दृष्टि से भी ऋग्वेद का अक्यर्हित्वपूजनीयता-सर्वत्र स्वीकार की गयी है। तैतिरीय संहिता के अनुसार साम तथा यजु के द्वारा जो विधान किया जाता है। वह शिथिल होता है। परन्तु ऋक द्वारा विहित अनुष्ठान हि दृष्ट होता है। ऋग्वेद के दो प्रकार के विभाग उपलब्ध होते है।

(1) अष्टक क्रमः- समग्र ग्रंथ आठ अकों में विभक्त किया गया है। प्रत्येक अश्टक में 8 अध्याय होते है। इस प्रकार पूरा ऋग्वेद 64 अध्यायों का ग्रन्थ है। प्रत्येक अध्याय के अवान्तर विभाग का नाम वर्ग है जो अध्ययन के सौकर्य के लिये किया गया है। औसतन प्रत्येक वर्ग में पांच मंत्र है समस्त वर्गों की संख्या 2006 है।

(2) मंडल क्रम:- ऋग्वेद 10 मंडलों में विभक्त है। इसी कारण ऋग्वेद दशतयी के नाम से निरूक्तादि ग्रंथों में प्रसिद्ध है। प्रत्येक मंडल में अनेक अनुवाक, अनुवाक के भीतर सूक्त के अंतर्गत मंत्र या ऋचाएं है। ऋग्वेद के दसों मंडलानुसार क्रमषः व्यवस्था यों है- 91+43+62+58+87+75+104+104+92+114+191। इन सूक्तों के अतिरिक्त 11 बालख्ल्य के नाम से विख्यात है। ऋग्वेद के समस्त सूक्तों की ऋचाओं की संख्या हैः 105801/4 अर्थात् प्रत्येक सूक्त 10 मन्त्रों का औसत है। ऋचाओं के शब्दों की संख्या 1 लाख 53 हजार, 8 सौ 26 तथा शब्दों के अक्षरों की संख्या चार लाख बत्तीस हजार है। अर्थात् मोटे तौर पर प्रत्येक मंत्र में पन्द्रह शब्द है और प्रत्येक शब्द में तीन अक्षर पाये जाते हैं। यह गणना सर्वानुक्रमणी के आधार पर है। पाश्चात्य विद्वानों का कहना है कि ऋग्वेद के मंडलों में प्राचीन तथा आर्वाचीन मंत्रों का समुदाय संग्रहित किया गया है द्वितीय मंडल से लेकर सप्तम मंडल तक का भाग ऋग्वेद का केंद्रीय अतएव अत्यंत प्राचीन अंश हैं। इसमें प्रत्येक मंडल का संबंध किसी विषिश्ट ऋशि या उनके वंशजों के साथ निष्चत रूप से उपलब्ध होता है। वंश विषेश के संबंध के कारण इन मंडलों के अंग्रेजी में 'फेमिली बुक' कहने की चाल है।

ऋग्वेद शाखाएँ- महाभाष्य के अनुसार ऋग्वेद की समस्त शाखाएं 21 है। जिनमें चरणव्यु के कथनानुसार मुख्य ये 5 शाखाएं है।

(1) शाकल शाखा:- ऋग्वेद में आजकल प्रचलित संहिता शाखा-शाकल की है। शाकल शाखा अनुसार ऋग्वेद का अंतिम मंत्र है:- **समानीव आकूतिः** (10।191।14) । इसमें 1017 सूक्त है।

(2) बाष्कल शाखा:- बाश्कल शाखानुसार ऋग्वेद का अंतिम ऋचा ''तच्छयोश वृर्णामहे'' है। यह ऋचा ऋक्परिशिष्ट के अंतिम सूक्त का अंतिम मंत्र है। बाश्कल शाखा में 1025 सूक्त है। इन अधिक आठ सूक्तों में एक सज्ञान सूक्त है जो इस संहिता में अन्त में है।

(3) आश्वलायन:- आश्वलायनों की संहिता तथा ब्राह्मणों का अस्तित्व इस समय नहीं है परन्तु कबीन्द्राचार्य (16 शताब्दी) की सूची में इन ग्रंथों का नामोल्लेख स्पष्टतः पाया जाता है। आज इसके अलावा गृह्य एवं श्रोत सूत्र ही उपलब्ध है।

(4) शांखायन:- इसकी संहिता तो नहीं परन्तु ब्राह्मण सम्मति है शांखायन और कौषीतकि शाखा एक है परन्तु वस्तुतः दोनों भिन्न प्रतीत होते है। दोनों संहिताओं में मंत्र वहीं है उनमें न्यानाधिकता नहीं है। केवल मंत्र क्रम में भेद है।

(5) माण्डूकायन:- इस शाखा की भी बहुत कुछ पुस्तकें पहिले उपलब्ध होती थी आजकल कुछ भी उपलब्ध नहीं है।

3.3.2 यजुः संहिता

'अनियताक्षरावसानों यजुः' आर्थात अक्षरों की संख्या जिनमें नियत न हो वही यजुः गत्यात्माको यजुः तथा शेषे यजुःशब्दः का तात्पर्य यही है कि ऋक तथा साम से भिन्न गत्यात्मक मंत्रों को अभिधान ही यजु है। यजुर्वेद के दो सम्प्रदाय है। (1) ब्रह्म सम्प्रदाय (2) आदित्य सम्प्रदाय शतपथ ब्राम्हण के अनुसार आदित्य यजुः शुक्ल-यजुष के नाम से प्रसिद्ध है तथा

याज्ञवल्क्य के द्वारा आख्यात है तथा ब्रह्म सम्प्रदाय का प्रतिनिधि कृष्ण यजुर्वेद है। यजुर्वेद के कृष्णत्व और शुक्लत्व उसके स्वरूप के आधार पर है। शुक्ल यजुर्वेद में दर्पणौर्यमासदि अनुष्ठानों के लिए आवश्यक केवल मंत्रों का संकलन है। उधर कृष्ण यजुर्वेद में मंत्रों के साथ तन्नियोजित ब्राह्मणों का मिश्रण है।

कृष्ण यजुर्वेदः— चरणव्यूह के अनुसार कृष्णयजुर्वेद की 85 शाखाएं है जिनमें आज केवल 4 शाखाएं तथा तत्सबंधी पुस्तकें उपलब्ध होती है। (1) तैत्तीरीय (2) मैत्रायणी (3) कठ (4) कपिष्ठलकल

तैत्तीरीय शाखा:- तैत्तीरीय शाखाः का प्रसार देश दक्षिण भारत है। कुछ महाराष्ट प्रान्त तथा समग्र आन्ध्र-द्रविड़ देश इसी शाखा का अनुयायी है। समग्र वैदिक ग्रंथों-संहिता, ब्राह्मण, सूत्र आदि की उपलब्धि से इसका वैषिष्टय स्वीकार किया जा सकता है। अर्थात् इस शाखा ने अपनी संहिता ब्राह्मण आरण्यक, उपनिषद् श्रौतासूत्र तथा गुह्यसूत्र को बड़ी तत्परता से अक्षुण्य बनाये रखा है। पुरी संहिता में काण्ड, तदन्तर्गत पदप्रपाठक तथा 631 अनुवादक है।

मैत्रायणीय शाखा:- कृष्ण यजुर्वेद की यह शाखा यजुर्वेदीय संहिताओं के समान यहां भी मंत्र तथा ब्राह्मणों का समिश्रण है। इस संहिता में चार काण्ड है। समग्र संहिता में शपथ मंत्र है जिनमें 2144 ऋचायें ऋग्वेद से उधृत है जो ऋग्वेद के भिन्न भिन्न मंडलों में पाये जाते है।

कपिष्ठल कठ शाखा:- चरणव्युह के अनुसार चरक शाखा के अंतर्गत कठाः प्राच्यकठाः तथा कपिष्ठलकठाः का उल्लेख मिलता है। जिससे इनके शाखा संबंध का पुरा परिचय मिलता है।

इस संहिता की कए अधुरी प्रति संपूर्णानन्द संस्कृत विष्वविद्यालय के 'सरस्वती भवन' में उपलब्ध हैं। यही से इसकी प्रतिलिपि यूरोप के वैदिक विद्वानों के अनुसाशीलन के लिए भेजी गयी थी। ऋग्वेद के समान ही यह अष्टक तथा अध्यायों में विभक्त है। इसमे निम्नलिखित अष्टक तथा तदनन्तर अध्याय उपलब्ध है।

प्रथम अष्टक -पूर्ण, आठों अध्याय के साथ

द्वितीय अष्टक -त्रुटित-9 से लेकर 24 अध्याय तक

तृतीय अष्टक -त्रुटित विल्कुल त्रुटित

चतुर्थ अध्याय-32 वें अध्याय को छोड़कर समस्त अध्याय उपलब्ध है।

पंचम अध्याय- आदिम अध्याय को छोड़कर सातों अध्याय उपलब्ध

पष्ठ अध्याय -43 अनुपलब्ध, अन्य सभी उपलब्ध

कठ शाखा:- कठशाखा में पंच खण्ड है जो क्रमशः इठिमिका, माध्यमि, ओरिमिका याऋजानुवाक्या तथा अश्वमेधाद्यनुवचन के नाम से प्रसिद्ध है। इन खण्डों के टुकड़ों का नाम 'स्थानक' है। इस शाखा में स्थानक की संख्या-40, अनुवाचनों की- 13, अनुवाकों की 843, मंत्रों 3091 तथा मंत्र ब्राह्मणों की सम्मिलित संख्या 18 हजार है।

शुक्ल यजुर्वेद

काण्व संहिता:- काण्व संहिता का प्रचार आज कल महाराष्ट प्रांत में है और माध्यन्दिन शाखा उत्तर भारत में परन्तु प्राचीन काल में काण्व शाखा का अपना प्रदेश उत्तरभारत ही था। क्योंकि एक मंत्र में कुरू तथा पंचाल देशीय राजा का निर्देश संहिता में मिलता है। महाभारत के आदिपर्व के अनुसार शकुन्तला को पौष्य पुत्री के नाम से विख्यात एक नदी है अतः काण्वों को प्राचीन संबंध उत्तर प्रदेश से होने में कोई विपचत्ति नहीं दृष्टिगत होती है। काण्व संहिता का एक सुंदर संस्करण मद्रास के अंतर्गत किसी 'आनन्दवन नगर' तथा औघ से प्रकाशित हुआ है। जिसमें अध्यायों की संख्या 40, अनुवादकों की 328 तथा मंत्रों की 2086 है। अर्थात माध्यदिन संहिता के मंत्रो (1974) से यहां 111 मंत्रों अधिक है काण्व शाखा का संबंध पांचराम आगम के साथ विषेश्ज्ञ रूप से पांचरात्र संहिताओं में सर्वत्र माना गया है।

3.3.3 सामसंहिता

वैदिक संहिताओं में साम का महत्व नितान्त गौरवमय माना जाता है। वृहद्देवता का कहना है कि जो पुरूश साम को जानता है वहीं वेद के रहस्य को जनता है:- **सामानि यो वेति स वेदतत्वम्।** गीता में श्री कृष्ण ने सामवेद को अपना स्वरूप बताया है**। वेदानां सामवेदोऽस्मि''** सामवेद के दो प्रधान भाग होते है- आर्चिक तथा गान। आर्चिक का शब्दिक अर्थ है ऋक-समूह। जिसके दो भाग है पूर्वार्चिक तथा अर्वार्चिक प्रर्वाचिक में 6 प्रपाठ या अध्याय हैं। प्रत्येक प्रपाठ के दो अर्ध या खण्ड है और प्रत्येक खण्ड एक दशति और हर एक दशति में ऋचाएं है। पूर्वाचिक मे कुल मंत्र 650 है। अर्वार्चिक में 9 प्रपाठ है। पहले प्रपाठ के दो-दो भाग में जो प्रपाठकार्ध कहे जाते है, परन्तु इनमें से अंतिम चार प्रपठकों में तीन-तीन अर्ध हैं यह राणायनीय शाखानुसार है। अर्वार्चिक में समग्र मंत्रों की संख्या 1225 है।

सामवेद की शाखाएँ-

पुराणोपलब्ध साम प्रचार के आधार पर सामवेद की सहस्त्र शाखाएं बतायी जाती है जिसकी पुष्टि पतञ्जलि ने 'सहस्त्रवमर्त्मा सामवेद वाक्य कह कर की है। आजकल प्रपंच हृदय,दिव्यावदान, चरणव्यूह तथा जैमिनी गृह्यसूत्र के पर्यालोचन से 13 शाखांए, जिनका वर्णन सामतर्पण के अवसर पर प्राप्त होता है इस प्रकार है। 'राणायन -सात्यमुगि -व्यास -र्भागुरी - औलुण्डि -भानु-मानोपमन्वय -काराटि -मशक-गार्ग्य-बार्षगण्यकौथुमि- शालिहोत्र, जैमिनि - त्रयोदषैते ये सामगाचार्याः स्वाति कुर्वन्तु तर्पिताः।' इन तेरह आचार्यों में से केवल तीन ही आचार्यों की शाखाएं मिलती है।

(1) कौथुमीय

(2) राणायनीय

(3) जैमिनीय

(1) कौथुमीय शाखा:- इसकी संहिता सर्वाधिक लोकप्रिय है, इसी की ताण्ड्य नामक शाखा भी मिलती है। जिसका किसी समय विषेश प्रभाव तथा प्रसार था। सुप्रसिद्ध छान्दोग्य उपनिषद् इसी शाखा से संबंधित है।

(2) राणायनीय शाखा: - इसकी संहिता कौथुमों से भिन्न नहीं है। दोनो मंत्र गणना की दृष्टि से एक ही है। केवल उच्चारणय में पार्थक्य है कौथुमीय लोग जहां: हाबु तथा 'रायी' उच्चारण करते है। राणायनीयों की एक अवांनतर शाखा सात्यमुाग्रि है जिसकी उच्चारण त्रुटि आलोचनीय है। ये गण एकार ओकार का ह्रस्व उच्चारण करते थे।

(3) जैमिनीय शाखा: - इस शाखा के समग्र अंश संहिता ब्राम्हण श्रौत तथा गृह्यसूत्र के उपलब्ध है। इसके मंत्रों की संख्या 1686 है अर्थात् कौथुमीय शाखा 182 मंत्र कम है। दोनों में पाठभेद भी नाना प्रकार के हैं। उत्तरार्चिक में ऐसे अनेक नवीन मंत्र है जो कौथुमीय संहिता में उपलब्ध नहीं होते, परन्तु जैमिनीयों के समागम कौथुनों से लगभग एक हजार अधिक हैं। कौथुमगान 2722 है परन्तु इनके स्थान पर जैमिनीयों के गान 3681 हैं।

3.3.4 अथर्व संहिता

वेदों में अन्यतम् अर्थववेद एक भूयसी विशिष्टता से संवालित है। ऋग्वेद आदि द्वारा स्वर्गलोक की प्राप्ति आदि परलोक सम्बधी विषयों का प्रतिपादन है परन्तु अथर्ववेद ऐहिक फल देने वाला भी है। इस जीवन को सुखमय तथा दुःखरहित बनाने के लिए जिन साधनों की आवश्यकता होती है। उनकी सिद्धी के लिए नाना अनुष्ठानों का विधान इस वेद में किया गया है। इसमें 20 काण्ड, 731 सूक्त तथा 5987 मंत्र है। अथर्ववेद के स्वरूप की मिमासा से पता चलता है कि यह दो धाराओं के मिश्रण का परिणत फल है इनमे से एक अथर्वधारा और दूसरी अश्रिधारा अथर्व धारा दृष्ट मन्त्र शांति पुष्टि कर्म से संबंध है। इसका संकेत भागवत में अथर्वणेऽदात् शाति यया यज्ञो वितन्यते के रूप में उपलब्ध होता है। अश्रिधारा अभिचारिक कर्म से संबंध रखती है। और यह इस वेद के जन सामान्य में प्रिय होने का संकेत है।

अथर्वसंहिता की शाखाएं- पतंजलि ने पस्पशाह्निक में नवधाऽऽथर्वणों वेदः लिखकर इस वेद की 9 शाखाओं को उल्लेख किया है जो इस प्रकार है (1) पिप्पलाद (2) स्तौद (3) मौढ (4) शौनकीय (5) जाजल (6) जलद (7) ब्रह्मवद (8) देवदर्श (9) चारण वैध इन शाखाओं मे पिप्पलाद तथा षौनक के अनुसार कतिपय ग्रंथ उपलब्ध होते हैं। अन्य शाखाओं का नाम मात्र शेष है।

(1) पिप्पलाद शाखा:- प्रपचंहृदय का कथन है कि पिप्पलाद शाखा की मंत्र संहिता 20 काण्ड वाली है। तथा इसके ब्राह्मण में आठ अध्याय विद्यमान है। पिप्पलाद शाखा की एक मात्र प्रति शारदा लिपि में कश्मीर में उपलब्ध हुई जिसे कश्मीर-नरेश ने जर्मन विद्वान डा. राथ को 1885 में उपहार में भेज दी। उसी की प्रति 1901 में अमेरिकी से फोटो मात्र तीन बड़ी-बडी जिल्दों में छपा था।

(2) मौढ शाखा:- महाभाष्य तथा शावर भाष्य में इसका उल्लेख मिलता है। अथर्व परिषिष्ट ने मौढ तथा जलद शाखा वाले पुरोहित के रखने से राश्ट्र ने नाश की आशंका प्रकट की है, जिससे इन शाखाओं के कम से कम अस्तित्व या प्रचलन का पता चलता है।

पुरोधा जलदो यस्यमौदो वा स्यात् कदाचन।

अब्दाद दशभ्यो मासेभ्यो राश्ट्रभ्रशंस गच्छति।।

शौनक शाखा: आजकज प्रचलित संहिता तथा गोपथ- ब्राह्मण इसी शाखा के है। तौद, जाजल, ब्रह्मवद, देवदर्श, नाम मात्र प्रसिद्ध है। अथर्ववेद की अंतिम शाखा चारण वैद्यों के विषय में कौशिक सूत्र की व्याख्या तथा अथर्व परिषिष्टि से कुछ पता चलता है। वायुपुराण से ज्ञात होता है कि इस शाखा की संहिता में छः हजार छब्बीस मंत्र थे परन्तु यह संहिता अभी तक उपलब्ध नहीं हुई है।

अथर्ववेद की त्रिविध परम्परा—

अथर्ववेद को छोड़कर अन्य तीन वेदों की केवल एक ही संहिता पायी जाती है। जो मुद्रित और प्रकाशित है। परन्तु अथर्व वेद की तीन संहिताओं का पता चलता है। अथर्ववेदीय कौशिक सूत्र केदारिल भाष्य में इन त्रिविध संहिताओं के नाम तथा स्वरूप का परिचय दिया गया है। इन संहिताओं के नाम है। (1) आर्षी संहिता (2) आचार्य संहिता (3) विधि प्रयोग संहिता।

इन संहिताओं में ऋषियों के द्वारा परमपरागत प्राप्त मंत्रों के संकलन होने से इसे ऋषि संहिता कहा जाता है। अथर्ववेद का आजकल जो विभाजन काण्ड, सूक्त तथा मंत्र रूप में प्रकाशित हुआ है इसी जिसका विवरण दारिल भाष्य में इस प्रकार पाया जाता है। 'येन उपनीय शिष्यं पाठयति सा आचार्य संहिता'। अर्थात् उपनयन संस्कार करने के पश्चात् गुरू जिस प्रकार से शिष्य को वेद का अध्यापन करता है वही आचार्य संहिता है। विधि प्रयोग संहिता वह जिस के मंत्रों के किसी विशिष्ट विधि के अनुष्ठान के लिए किये जाते है। इस अनुष्ठान के अवसर पर एक ही मंत्र के विभिन्न पदों के विभक्त करके नये-नये मंत्र किए जाते है। यथा-

ऋतुभ्यष्टवाऽऽर्तवेभ्यो, मादभ्यों संवत्सरेभ्यः।
धात्रे विधायै समृधे भूतस्य पतये यजे।।

अब इस मंत्र को विभक्त करके आठ मंत्र अनुष्ठान के लिए तैयार किए जाते है। जैसे-

(1) ऋतुभ्य त्वा यजे स्वाहा।

(2) आर्तवेभ्य वेभ्यः त्वा यजे स्वाहा।

(3) मादभ्यः त्वा यजे स्वाहा।

(4) संवत्सरेभ्य त्वा यजे स्वाहा।

विधि प्रयोग का यह पहिला प्रकार है इसी भाती से इसके चार प्रकार और होते है। इनमें शब्दों को जोड़कर आवर्तन द्विगुणित कर क्रम परिवर्तन कर तथा संपूर्ण मंत्र के अर्थ भाग को पूर्ण मानकर प्रयोग किया जाता है।

3.4 ब्राह्मण ग्रन्थों का स्वरूप एवं प्रतिपाद्य विषय

ब्राह्मण शब्द का अर्थ एवं व्युत्पत्ति—

ब्राह्मण शब्द "ग्रन्थ" का वाचक है और यह नपुंसकलिङ्ग में होता है---**"ब्राह्मणं ब्रह्मसंघाते वेदभागे नपुंसकम्।"** (मेदिनी कोश) । **"एतद् ब्राह्मणान्येव पञ्च हवींषि"** (तैत्तिरीय-संहिता-३.७.१.१) । ब्राह्मण शब्द में ब्रह्मन् मूल शब्द है, इससे अण् प्रत्यय करके

ब्राह्मण शब्द बनता है। शतपथ-ब्राह्मण (7.1.1.5) के अनुसार "ब्राह्मण" शब्द का अर्थ "मन्त्र" है:---**"ब्रह्म वै मन्त्रः"** अतः वेदमन्त्रों की व्याख्या और विनियोग प्रस्तुत करने वाले ग्रन्थ को "ब्राह्मण" कहते हैं। शतपथ-ब्राह्मण (3.1.4.15) के अनुसार ब्राह्मण शब्द का दूसरा अर्थ "यज्ञ" है:--"ब्रह्म यज्ञः"। अतः यज्ञों की व्याख्या और विवरण प्रस्तुत करने वाले ग्रन्थ को "ब्राह्मण" कहते हैं। ब्रह्मन् शब्द का एक अन्य अर्थ है-पवित्र ज्ञान या रहस्यात्मक विद्या। अतः जिन ग्रन्थों में वैदिक रहस्यों का उद्घाटन किया गया है, उन्हें "ब्राह्मण" कहते हैं। इन ग्रन्थों में यज्ञों का आध्यात्मिक, आधिदैविक और वैज्ञानिक स्वरूप प्रस्तुत किया गया है।

मीमांसा-दर्शन का कहना है कि मन्त्रभाग या संहिताग्रन्थों के अतिरिक्त वेद-भाग को "ब्राह्मण" कहते हैं-**"शेषे ब्राह्मणशब्दः।"** (मीमांसा-2.1.33) इसका अभिप्राय यह है कि संहिता भाग में पद्य, गद्य या गीति रूप में मन्त्र हैं, उनके अतिरिक्त व्याख्या-ग्रन्थों को "ब्राह्मण" कहते हैं। भट्ट भास्कर का कहना है कि कर्मकाण्ड और मन्त्रों के व्याख्यान ग्रन्थों को "ब्राह्मण" कहते हैं-- **"ब्राह्मणं नाम कर्मणस्तन्मन्त्राणां व्याख्यानग्रन्थः।" (तै.सं.भाष्य-1.5.1)** वाचस्पति मिश्र ने वर्ण्य-विषयों का निर्देश करते हुए कहा है कि "ब्राह्मण" उन ग्रन्थों को कहते हैं, जिनमें निर्वचन (निरुक्ति), मन्त्रों का विविध यज्ञों में विनियोग, प्रयोजन, प्रतिष्ठान (अर्थवाद) और विधि का वर्णन होता है:- **"नैरुक्त्यं यत्र मन्त्रस्य विनियोगः प्रयोजनम्। प्रतिष्ठानं विधिश्चैव ब्राह्मणं तदिहोच्यते।।"** ब्राह्मण ग्रन्थों में सर्वथा यज्ञों की वैज्ञानिक, अधिभौतिक तथा अध्यात्मिक मीमांसा प्रस्तुत की गयी है। यह ग्रंथ अधिकतर गद्य में लिखे हुए हैं। इनमें उत्तरकालीन समाज तथा संस्कृति के सम्बन्ध का ज्ञान प्राप्त होता है। प्रत्येक वेद (संहिता) के अपने-अपने ब्राह्मण होते हैं। वेदों का गद्य में व्याख्या वाला खण्ड ब्राह्मण कहलाता है। वरीयता के क्रम में ब्राह्मण, वैदिक वाङ्मय का दूसरा भाग है। इसमें गद्य रूप में देवताओं की तथा यज्ञ की व्याख्या की गयी है और मन्त्रों पर भाष्य भी दिया गया है। इनकी भाषा वैदिक संस्कृत है। चारों वेदों का एक या एक से अधिक ब्राह्मण हैं (हर वेद की अपनी अलग-अलग शाखा है)।

मन्त्र एवं ब्राह्मण— संहिताओं और ब्राह्मण-ग्रन्थों का स्वतन्त्र अस्तित्व है। संहिताओं में उपलब्ध मन्त्रभाग का कर्मकाण्ड में विनियोग होता है। ब्राह्मण-भाग मन्त्रों के विनियोग में विधि बताता है। एक मूल है तो दूसरा उसका व्याख्यान ग्रन्थ है। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। "वेद" शब्द मुख्य रूप से वैदिक-संहिताओं का ही वाचक है, ब्राह्मण-ग्रन्थों का नहीं। वैदिक-वाङ्मय या वैदिक-साहित्य में ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों का भी समावेश है। वेद शब्द का गौण अर्थ वैदिक-साहित्य लेने पर ब्राह्मण ग्रन्थों को भी वेद कहा जा सकता है। इसी गौण अर्थ को लेते हुए **"मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्"** (आपस्तम्ब श्रौतसूत्र-1.33) कहा गया है। यह उक्ति सम्प्रति बहुत प्रचलित हो गई है। यह एकांगी प्रयोग है । स्वामी दयानन्द सरस्वती इसे नहीं मानते । हमने इस पर एक बृहद् लेख कई भागों में प्रमाण सहित लिखा है । आप इसे इसी पेज पर पढ सकते हैं ।

ब्राह्मण-ग्रन्थों की भाषा-शैली— संहिता-ग्रन्थ की अपेक्षा ब्राह्मणों की भाषा प्रसादगुण बाहुल्य है। भाषा सरस, सरल और रोचक है। इनमें वर्ण्य विषय की दुरुहता दूर की गई है। इनमें लम्बे

समासों , क्लिष्ट पदों और अस्पष्टार्थक शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया है। शैली प्रवाहयुक्त और रोचक है। विविध आख्यानों के प्रसंग में शैली की रोचकता दर्शनीय है। ब्राह्मण वैदिक और लौकिक संस्कृत को जोडने की कडी है। यज्ञिय, दार्शनिक एवं गूढ प्रसंगों को भी सरस, सरल भाषा में प्रस्तुत किया गया है। आश्वलायन गृह्यसूत्र (3.3) में ऋषि और आचार्य में भेद किया गया है। ऋषि मन्त्रद्रष्टा को कहते हैं और आचार्य ब्राह्मण-ग्रन्थों के द्रष्टा या रचयिता को कहते हैं। अत एव आश्वलायन गृह्यसूत्र में ऋषि-तर्पण के साथ ही आचार्य-तर्पण का भी उल्लेख है।

ब्राह्मण-ग्रन्थों का प्रतिपाद्य विषय— ब्राह्मण-ग्रन्थों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय हैः-यज्ञ एवं यज्ञ का सर्वाङ्गीण विवेचन। यज्ञ-मीमांसा के दो भाग हैं-विधि और अर्थवाद।

(1) विधि का अभिप्राय है- यज्ञप्रक्रिया का विशद निरूपण। जैसे यज्ञ कब, कहाँ और कैसे किया जाए। यज्ञ में कितने ऋत्विज् होने चाहिएँ प्रत्येक के क्या कर्त्तव्य हैं। यज्ञ के लिए क्या-क्या सामान चाहिए, यज्ञशाला का निर्माण आदि। आपस्तम्ब श्रौतसूत्र का कहना है---**"कर्मचोदना ब्राह्मणानि।"** अर्थात् ब्राह्मण-ग्रन्थ विविध यज्ञरूप कर्मों में मनुष्यों को प्रेरित करते हैं।

(2.) अर्थवाद का अभिप्राय है- स्तुति या निन्दापरक विविध विषय। वाचस्पति मिश्र के अनुसार ब्राह्मण-ग्रन्थों के चार प्रयोजन हैं-

(1.) निर्वचनः- शब्दों की निरुक्ति बताना।

(2.) विनियोगः-किसी यज्ञ की किस विधि में किन मन्त्रों का पाठ किया जाना चाहिए, यह विनियोग के द्वारा ज्ञात होता है।

(3.) प्रतिष्ठानः-इसका अर्थ है अर्थवाद। यज्ञ की प्रत्येक विधि का क्या महत्त्व है, इसके करने से क्या लाभ है और न करने से क्या हानि है, इनको बताना।

(4.) विधिः-यज्ञ और उससे सम्बद्ध कार्यकलाप का विस्तृत विवरण बताना।

"नैरुक्त्यं यत्र मन्त्रस्य विनियोगः प्रयोजनम्। प्रतिष्ठानं विधिश्चैव ब्राह्मणं तदिहोच्यते।"

शबर स्वामी के अनुसार ब्राह्मणग्रन्थों के 10 प्रयोजन हैं-

"हेतुर्निर्वचनं निन्दा प्रशंसा संशयो विधिः। परक्रिया पुराकल्पो व्यवधान-कल्पना।
उपमानं दशैते तु विधयो ब्राह्मणस्य वै।।" (मीमांसा, शाबरभाष्य--2.28)

(1.) हेतुः-यज्ञ में कोई कार्य क्यों किया जाता है, इसका कारण बताना।

(2.) निर्वचनः-शब्दों की निरुक्ति बताना।

(3.) निन्दा-यज्ञ में निषिद्ध कर्मों की निन्दा करना। जैसे--यज्ञ में असत्य-भाषण निषिद्ध है। यदि कोई यज्ञशाला में असत्य बोलता हो, तो उसकी निन्दा करना।

(4.) प्रशंसा-यज्ञ में विहित कर्मों की प्रशंसा करना। जैसे--"यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म।" अर्थात् यज्ञ श्रेष्ठ कर्म है। इसलिए अवश्य करना चाहिए। इस प्रकार यज्ञ की प्रशंसा करना।

(5.) संशय-किसी यज्ञिय कर्म के विषय में कोई सन्देह उपस्थित हो तो उसका निवारण करना।

(6.) विधिः-यज्ञकर्म सम्पूर्ण विधि के अनुसार होना चाहिए। कौन-सा कार्य पहले किया जाए तथा कौन-सा कार्य पश्चात् किया जाए, इसका विवरण प्रस्तुत करना।

(7.) परक्रिया-इसका अर्थ है कि परार्थक क्रिया, परहित या परोपकार वाले कर्त्तव्य। धर्मार्थ कार्य कूप, तालाब आदि बनवाना।

(8.) पुराकल्पः-यज्ञ की विभिन्न विधियों के समर्थन में किसी प्राचीन आख्यान या ऐतिहासिक घटना का वर्णन करना।

(9.) व्यवधान-कल्पनाः-परिस्थिति के अनुसार यज्ञीय-कर्म की व्यवस्था करना।

(10.) उपमानः-कोई उपमा या उदाहरण देकर वर्ण्य विषय की पुष्टि करना।

ब्राह्मण-ग्रन्थों में विधि और अर्थवाद के अतिरिक्त "उपनिषद्" का भी प्रतिपादन किया गया है। ब्राह्मणों में यज्ञ आदि की आध्यात्मिक, दार्शनिक और वैज्ञानिक व्याख्याएँ भी प्रस्तुत की गई हैं। यज्ञ केवल कर्मकाण्ड नहीं है, अपितु सृष्टि-विद्या का भी प्रतीक है। इसके द्वारा सृष्टि के गूढ रहस्यों को स्पष्ट किया गया है। इसके अन्तर्गत हम ६ प्रकल्पों पर विचार करेंगे।

(1.) विधि (कर्मविधान)

विधि से अभिप्राय है कि यज्ञों के अङ्गों तथा उपाङ्गों के अनुष्ठान की प्रेरणा देना। सभी ब्राह्मणों में विधि-वाक्यों का उल्लेख विधिलिङ् अथवा लट् लकार की क्रिया के द्वारा हुआ है। जैसे---- यजेत, कुर्यात्, जुहोति इत्यादि। ताण्ड्य-ब्राह्मण (६.७) में अध्वर्यु, प्रस्तोता, उद्गाता, प्रतिहर्त्ता एवं ब्रह्मा इन पाँच ऋत्विजों के प्रसर्पण की विधि है कि वे एक-दूसरे की पीछे एक पङ्क्ति में मौन रहकर चलें। इसका अतिक्रमण नहीं होना चाहिए , अन्यथा अनिष्ट होगा।

वैदिक-यज्ञों का अनुष्ठान विधियों पर ही आश्रित है। अग्निहोत्र, दर्श-पौर्णमास, राजसूय आदि सभी यज्ञों में विधि-वाक्यों की आवश्यकता है। विभिन्न ब्राह्मणों के विधि-वाक्यों में कभी-कभी एक ही विषय पक परस्पर विरोध भी मिलता है, जो शाखा-भेद, देश-भेद या काल-भेद के कारण है।

(2.) विनियोगः-

विनियोग से अभिप्राय है कि वैदिक मन्त्रों का यज्ञ में उपयोग। इसे ही विनियोग कहते हैं। ब्राह्मण-ग्रन्थों में अपनी-अपनी शाखा की संहिताओं में संकलित मन्त्रों का क्रमशः विनियोग बताया गया है कि अमुक मन्त्र या मन्त्र-समूह का इस स्थान पर पाठ हो। कहीं-कहीं विनियोग मन्त्रार्थ के अनुकूल दिया गया है तो कहीं-कहीं मन्त्रार्थ और विनियोग के बीच कुछ अन्तराल प्रतीत होता है। ये विनियोग ऋषियों द्वारा ही निश्चित है। ब्राह्मण-ग्रन्थों ने मन्त्र के पदों से ही विनियोग की युक्तिमत्ता सिद्ध की है। किन्तु आजकल सामान्य जन भी इसका विनियोग करने लग गए हैं , जो अनर्थक है।

विनियोग पर क्या पौराणिक और आर्य समाजी सभी अपने-अपने मन से विनियोग करने लग गए है। जो उचित नहीं है। दोनों समुदायों में इस समय बहुत से गलत विनियोग किए जा रहे हैं। आप उदाहरण मन्त्र सहित यह लेख पढ सकते हैं-------

(3.) हेतु-

"हेतु" से अभिप्राय उन कारणों के निर्देश से है, जिसे कर्मकाण्ड की विशेष विधि के लिए उपयुक्त बतलाया गया है । ब्राह्मण-ग्रन्थों में यज्ञ के विधि-विधान के निमित्त उचित तथा योग्य कारण बताया गया है। एक उदाहरण देखिए---

अग्निष्टोम याग में उद्गाता "सदस्" नामक मण्डप में औदुम्बर वृक्ष की शाखा का उच्छ्रयण करता है । इस विधान का कारण है कि प्रजापति ने देवताओं के लिए ऊर्ज का विभाग किया----(ताण्ड्य-ब्राह्मण-६.४.१) उसी से उदुम्बर वृक्ष की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार उदुम्बर वृक्ष का देवता प्रजापति है। उद्गाता का भी सम्बन्ध प्रजापति से ही है। इसीलिए उद्गाता उदुम्बर की शाखा का उच्छ्रयण का कार्य अपने प्रथम कर्म से करता है। इसके अतिरिक्त इस अवसर पर प्रयुक्त होने वाले उच्छ्रयण मन्त्र की भी व्याख्या विस्तार से की गई है । इस प्रकार हेतुवचन प्रस्तुत करने से पाठकों को अनुष्ठानों के कारण का स्वयं परिचय मिलता है तथा समधिक श्रद्धा का उदय होता है।

(4.) अर्थवादः-

अर्थवाद से अभिप्राय है---स्तुति और निन्दा के वचन। यज्ञ के अनुष्ठानों की प्रशंसा या अविहित कर्मों की निन्दा करना साभिप्राय है। अग्निष्टोम की प्रशंसा में कहा गया है कि इसके अनुष्ठान से सभी कामनाओं की पूर्ति हो जाती है। इससे यजमान इन कार्यों में आकर्षित होते हैं। इसी प्रकार निषिद्ध-कर्मों की निन्दा भी की गई है। जिससे यजमान निषिद्ध-कर्म न करें। "अमेध्या वै माषाः"। (तै.सं. ५.१.८.१) इस वाक्य के कारण यज्ञ में उडद का प्रयोग कभी भूलकर भी न करें , क्योंकि इससे हानि होती है।

(5.) निरुक्ति (निर्वचन)

निर्वचन (व्युत्पत्ति) से अभिप्राय है कि किसी शब्द का विश्लेषण करके उसे सम्बद्ध क्रिया-पद से जोडना। निरुक्ति का आरम्भ तो वेदों से होता है , किन्तु ब्राह्मण-ग्रन्थों में निरुक्तियाँ भरी पडी हैं। आगे चलकर इस विषय पर ग्रन्थ ही लिख दिए गए, जैसे--निरुक्त। सम्प्रति उपलब्ध निरुक्त के कर्त्ता आचार्य यास्क बारम्बार ब्राह्मण-ग्रन्थों की निरुक्तियों को उद्धृत करके लिखते हैं--"इति ह विज्ञायते" । एक निरुक्ति आचार्य की देखिए-"आचार्यः कस्मात् ?"- आचारं ग्राहयति । आचिनोति अर्थान् , आचिनोति बुद्धिम् इति वा।" (निरुक्त---१.४) पृष्ठ---२६)

(6.) आख्यानः-

आख्यान से अभिप्राय कथा से है। कथा के माध्यम से यज्ञ में यजमान को श्रद्धा कराना मुख्य उद्देश्य है। इसके अन्तर्गत किसी यज्ञ के प्रचलन के क्या उद्देश्य हैं और किसी यज्ञ की क्या विधि है---इन्हें स्पष्ट करने के लिए आख्यानों का सहारा लिया जाता है। इसके अन्तर्गत दो प्रकल्प होते हैं-परक्रिया और पुराकल्प।

(१.) किसी एक व्यक्ति के विषय में मुख्यतः प्रधान श्रोत्रियों और याज्ञिकों द्वारा किए गए विशिष्ट यज्ञों का या राजाओं के दानादि का वर्णन करना "परक्रिया" है।

(२.) प्राचीन युगों के यज्ञों एवं दूसरी कथाओं का विवरण "पुराकल्प" है । पुराकल्प के प्रथम वाक्यों में प्रायः यह वाक्य कहा जाता है---**"इति ह आख्यायते ।"** ब्राह्मण-ग्रन्थों में छोटे-बडे

अनेक आख्यान भरे पडे हैं। देवताओं के द्वारा किए गए प्राचीन यज्ञों का वर्णन इनमें प्रधान हैं। ऐतरेय-ब्राह्मण का "शुनःशेप-आख्यान" लोकप्रसिद्ध है। यह अपेक्षाकृत बडा आख्यान है। अन्य आख्यान हैं---"पुरुरवा-उर्वशी", (शतपथ-ब्राह्मण---११.५.१), जलप्रलय का आख्यान (शतपथ-ब्राह्मण---१.८.१)। "वर्णोत्पत्ति-आख्यान" (ताण्ड्य-ब्राह्मण---६.१) वाक्-आख्यान" (ताण्ड्य-ब्राह्मण---६.५.१०--१२) "अग्निमन्थन-आख्थान" (शतपथ-ब्राह्मण--१.६.४.१५), देवासुर-संग्राम" (ऐतरेय-ब्राह्मण---१.४.२३.और ६.२.१) (शतपथ-ब्राह्मण---३.१.६.८) इत्यादि।

ब्राह्मण-ग्रन्थों का महत्त्व—

श्रोता या पाठक की दृष्टि से यह अरोचक ग्रन्थ है। इन्हें साहित्य की कोटि में नहीं रखा जा सकता। इसीलिए इसे वैदिक वाङ्मय का ग्रन्थ कहा जाता है। इतना होने पर भी इसमें बहुत सी सामग्री उपलब्ध है , जिसे हम यहाँ विभिन्न प्रकल्पों में दिखा रहे हैं---

(1.) यज्ञों का विवरण-

ब्राह्मण-ग्रन्थों में यज्ञों का बृहद् और सर्वाङ्गपूर्ण सामग्री उपलब्ध होती है। यहाँ यज्ञों का वैज्ञानिक स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। वैदिक यज्ञों को सूत्ररूप में बताया गया है किन्तु आगे चलकर कल्पसूत्रों में भी विस्तार से समझाया गया है। कल्पसूत्रों का आधार ब्राह्मण-ग्रन्थ ही है।

(2.) व्याकरण और निर्वचनः-

यद्यपि व्याकरण और निर्वचन का उद्गम स्थल वेद है। किन्तु ब्राह्मण-ग्रन्थों में यह बहुलता से उपलब्ध होता है। व्याकरण के तत्त्वों जैसे---काल, वचन आदि की विवेचना इन ग्रन्थों में उपलब्ध होती है। इन्द्र प्रथम वैयाकरण थे, जिन्होंने अव्याकृत वाणी को व्याकृत कर दिया था। इसका विवेचन तैत्तिरीय-ब्राह्मण में उपलब्ध होता है।

(3.) आख्यानों का स्रोतः-

आख्यानों से वैदिक-साहित्य, लौकिक-साहित्य और पुराण भरे पडे हैं। इन सबका आधार ब्राह्मण-ग्रन्थ ही है। ऋग्वेद से पुरुरवा-उर्वशी का आख्यान लेकर शतपथ-ब्राह्मण (११.५.१) में इसे रोचक बनाया गया है। ऐतरेय-ब्राह्मण में हरिश्चन्द्र का आख्यान आता है। इसका आधार भी ऋग्वेद ही है। इन आख्यानों को काल्पनिक रूप देकर पुराणों में फैलाया गया है। इनसे मतिभ्रम भी होता है और सामान्य पाठक इन्हें इतिहास मान लेते हैं, जो अनर्थक साबित होता है।

(4.) मीमांसा-दर्शन का आधारः-

वैदिक-कर्मकाण्ड की विवेचना मुख्यतः पूर्व-मीमांसा दर्शन करता है। इसे बहुत से लोग कर्ममीमांसा, धर्ममीमांसा या मीमांसा-दर्शन भी कहते हैं। इनका आधार ब्राह्मण-ग्रन्थ ही है। ब्राह्मण-ग्रन्थों में प्रतिपादित विधि-वाक्यों को मीमांसा में "शास्त्र" कहा जाता है , जिनसे लक्षित होने वाले कल्याणकारी कर्म "धर्म" की संज्ञा पाते हैं----"चोदनालक्षणो अर्थो धर्मः" (मीमांसा-सूत्र--१.१.२)।

(5.) वैदिक-भाषा के विकास का सोपानः-

वेदों से भाषा का प्रारम्भ होता है। ब्राह्मण-ग्रन्थों में इसका विस्तार होता है। विचार-विनिमय का आधार गद्य है, ब्राह्मणों में गद्य प्रधान है। वैदिक-युग की कैसी भाषा थी, कैसा व्यवहार होता था, आप ब्राह्मणों से ज्ञात कर सकते हैं। वे लम्बे समासों का प्रयोग नहीं करते थे। वाक्य छोटे-छोटे होते थे। भाषा-शास्त्र की दृष्टि से ब्राह्मण-ग्रन्थ बहुत उपयोगी है।

(6.) इतिहास और भूगोलः-

ब्राह्मण-ग्रन्थों में इतिहास और भूगोल से सम्बन्धित प्रचुर सामग्री मिलती है। जैसे कुरु-पाञ्चाल देश तथा सरस्वती नदी का तट ब्राह्मण-ग्रन्थों में निर्दिष्ट हैं। जहाँ सरस्वती नदी लुप्त हुई है, उसे "विनशन" कहते हैं। यमुना के प्रवाह का क्षेत्र "कारपचव" कहा जाता था। (ताण्ड्य-ब्राह्मण--२५.१०.२३) सरस्वती और दृषद्वती नदियों के मध्य भाग तथा उनके संगम की चर्चा भी हुई है। शतपथ-ब्राह्मण आदि ग्रन्थों में तात्कालिक धर्म एवं संस्कृति की बहुधा चर्चा है। राजनीति, समाज, नैतिकता, नारी की महिमा आदि ऐतिहासिक तथ्य इनके अनुशीलन से ज्ञात होते हैं। आज जो ब्राह्मण उपलब्ध हैं वे निम्नलिखित हैं-

ऋग्वेद :

ऐतरेयब्राह्मण-(शैशिरीयशाकलशाखा)

कौषीतकि-(या शांखायन) ब्राह्मण (बाष्कल शाखा)

यजुर्वेद

शुक्ल यजुर्वेद :

शतपथब्राह्मण-(माध्यन्दिनीय वाजसनेयि शाखा)

शतपथब्राह्मण-(काण्व वाजसनेयि शाखा)

कृष्णयजुर्वेद :

तैत्तिरीयब्राह्मण

मैत्रायणीब्राह्मण

कठब्राह्मण

कपिष्ठलब्राह्मण

सामवेद :

प्रौढ(पंचविंश) ब्राह्मण

षडविंश ब्राह्मण

आर्षेय ब्राह्मण

मन्त्र (या छान्दिग्य) ब्राह्मण

जैमिनीय (या तावलकर) ब्राह्मण

अथर्ववेद :

गोपथब्राह्मण (पिप्पलाद शाखा)

3.5 वेद के प्रमुख भाष्यकार

गुप्तकाल में वैदिक धर्म का महान् अभ्युदय हुआ। इतिहासवेत्ता पाठक भलीभांति जानते हैं कि गुप्त सम्राट 'परमभागवत' की उपाधि से अपने को विभूषित करना गौरवास्पद समझते थे। इन्होंने वैदिक धर्म का पुनरूद्धार संपन्न किया। सप्तमशतक में आचार्य कुमारिल ने मीमांसाशास्त्र की भूयसी प्रतिष्ठा की। इनके व्यापक प्रभाव से वेदाध्ययन की ओर पण्डितों की प्रवृति पुनः जागरित हुई। बौद्धकाल में वेदों की ओर जनता की दृष्टि कम थी, परन्तु कुमारिल ने बौद्धों की युक्तियों का सप्रमाण खण्डन कर वेद की प्रमाणिकता सिद्ध कर दी।

(1) ऋग्वेद – भाष्य

ऋग्वेद संहिता का सबसे पहला उपलब्ध भाष्य स्कन्दस्वामी का है। वैदिक साहित्य में यह भाष्य बड़े आदर सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। ग्रंथकार की प्राचीनता के साथ-साथ ग्रंथ के अंतरग गुणों ने उसे उच्च आसन पर बैठाया है। भाष्य के अंत में दिए गए कतिपय श्लोकों से इनके देशादि का पर्याप्त परिचय मिलता है। स्कन्दस्वामी गुजरात की प्रख्यात राजधानी वलभी के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम भर्तृध्रुव था। इसका पता निम्नलिखित श्लोक से, जो ऋग्वेद भाष्य के प्रथमाष्टक के अंत मे मिलता है-

वलभीविनिवास्येतामृगर्थागमसंहृतिम्।
भर्तृध्रुवसुतष्चक्रे स्कन्दस्वामी यथास्मृति।।

स्कन्दस्वामी—

आचार्य स्कन्दस्वामी के समय का भी निर्णय पर्याप्त रीति से किया गया। कलियुग के 3740 वर्श बीतने पर भाष्य बनाया गया। कलियुग का आरंभ वि. सं. पूर्व 3045 अर्थात ईसा पूर्व में माना जाता है, अतः हरिस्वामी के शतपथभाष्य का निर्माण काल (3740-3045) त्र वि॰ सं॰ 694 त्र 639 ई॰ में माना जा सकता है। इसके पहले स्कन्दस्वामी ने अपना ऋग्भाष्य बना डाला था, तथा हरिस्वामी को वेद पढाया था। अतः आचार्य स्कन्दस्वामी का काल वि.सं. 682 (625 ई॰) के आसपास अनुमानतः सिद्ध है। इस प्रकार स्कन्दस्वामी हर्ष तथा बाणभट्ट के समकालीन हैं।

स्कन्दस्वामी का ऋग्भाष्य अत्यन्त विषद है। इसमें प्रत्येक सूक्त के आरंभ में उस सूक्त के ऋषि तथा देवता का उल्लेख किया गया है, तथा इसके बोधक प्राचीन अनुक्रमणियों के श्लोक उद्धृत किए गए हैं। निघण्टु, निरुक्त आदि वैदिकार्योपयोगी ग्रन्थों से भी उपयुक्त प्रमाण स्थान-स्थान पर दिए है। भाष्य खूब सरल है तथा मिताक्षर है। व्याकरण-संबंधी तथ्यों का उल्लेख संक्षेप में ही किया गया है। सायणभाष्य कें प्रथमाष्टक की तरह व्याकरण का विस्तार से प्रदर्षन इसमें नहीं है। स्कन्दस्वामी के भाष्य का प्रभाव सायण के ऋग्वेद के केवल आधे भाग-चौथे अष्टकतक ही उपलब्ध हुआ है। शेश भाग की पूर्ति दो आचार्यो ने की है, जिनका वर्णन आगे किया जायेगा। अनन्तशयनग्रन्थावली में यह भाष्य प्रकाषित होने लगा है।

नारायण- ऋग्वेद के भाष्य में वेंकटाधव ने लिखा हैं।-

स्कन्दस्वामी नारायण उद्गीथ इति ते क्रमात्।

चक्रुः सहैकमृग्भाष्यं पदवाक्यार्थगोचरम्।।

अर्थात् स्कन्दस्वामी, नारायण तथा उद्गीथ ने क्रम से मिलकर एक ही ऋग्भाष्य बनाया। इससे यह स्पष्ट है कि नारायण ने ऋग्भाष्य की रचना में स्कन्दस्वामी की सहायता की थी। 'क्रमात्' शब्द से अनुमान होता है कि ऋग्वेद के मध्य भाग पर नारायण ने अपना भाष्य लिखा है। कुछ लोग सामभाष्यकार माधव के पिता नारायाण तथा इस नारायण केा एक ही व्यक्ति मानते है, परन्तु इसके लिए अभी कोई सबल प्रमाण नहीं मिला है। इसका भी समय विक्रम की सातवीं शताब्दी में अनुमानतः सिद्ध है।

उद्गीथ—

उद्गीथ के नाम का उल्लेख सायण तथा आत्मानन्द ने अपने भाष्य में किया है। इनका भाष्य स्कन्दस्वामी के भाष्य की शैली पर जान पड़ता है। इसका भी प्रभाव सायण के भाष्य पर पड़ा था। उद्गीथ सायण से पूर्ववर्ती भाष्यकार है, क्योंकि सायण ने ऋग्वेद के मंत्र के भाष्य में उद्गीथ की व्याख्या का उल्लेख किया है और यह व्याख्या उद्गीथ के भाष्य में उपलब्ध होती है। यह भाष्य ऋग्वेद के दशम मंडल के सूक्त 5 से लेकर सूक्त 86 के पांचवे मंत्र तक उपलब्ध होता है जिसमें आदि के अंश को डी. ए.वी. कालेज के शोध विभाग से प्रकाशित किया है (लाहौर, 1935), शेश अंश अभी तक मुद्रित नहीं है। उद्गीथ की विपुल सामग्री का उपयोग किया है। इसीलिए तिलक वैदिक संषोधन मंडल से प्रकाषित सायण भाष्य के त्रुटित अंश या संदिग्ध पाठ का शोधन उद्गीथ की सहायता से किया गया है। इस प्रकार इस भाष्य का महत्व सायणभाष्य के पाठ-षोधन के लिए भी कम नहीं है।

माधव भट्ट—

ऋग्वेद के माधव नामक चार भाष्यकारों का अब तक पता चला हैं। इसमें एक तो सामवेद- संहिता के भाष्यकार हैं। तीन माधव नामधारी भाष्यकार का संबंध ऋग्वेद के साथ है। इनमें से एक तो सायण-माधव ही है। य़द्यपि सायण ने ऋक्संहिता पर भाष्य लिखा तथापि माधव के द्वारा इस कार्य में प्रर्याप्त सहायता दिये जाने के कारण माधव भी भाष्यकार के रूप में किन्ही स्थानों में गृहीत किये गये हैं। अतएव एक माधव तो सायणाचार्य ही हुए। दूसरे माधव वेंकटमाधव है, जिनका निर्देश प्राचीन भाष्यों में मिलता है। एक अन्य माधव यह भी हैं। जिनकी प्रथम अष्टक की टीका अभी हाल में मद्रास विश्वविद्यालय से प्रकाशित हुई है। यह टीका बड़ी ही सारगर्भित है। अल्पाक्षर होने पर भी मंत्रों के अर्थ समझने में नितान्त महत्वपूर्ण है। कुछ विद्वान् इस माधवभट्ट और वेंकटमाधव को एक ही व्यक्ति मानते हैं, परन्तु दोनों व्यक्तियों के लिए भाष्यों की तुलना करने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि माधवभट्ट वेंकट माधव से नितान्त भिन्न है एवं उनसे प्राचीनतर है। इस सिद्धान्त पर पहुंचने के साधक अनेक प्रमाण है। पहली बात यह है कि सायण ने माधव के नाम से जिस अर्थ का उल्लेख किया है। वह नयी टीका में बिलकुल उपलब्ध होता है। जान पड़ता है कि यह ग्रंथ बहुत दिनों से लघु-प्रायस हो गया था। इसलिए देवराज यज्वा ने अपनी निघण्टु टीका में वेकटमाधव और माधवभट्ट के व्यक्तिगत को सम्मलित कर दिया है। वेंकटमाधव के नाम

से जितने उद्धरण उन्होनें दिये हैं वे सब के सब इस टीका में उपलब्ध हो सकते है, यदि वह पूरी उपलब्ध हो जाय। हमारे मित्र पं. सीताराम जोषी ने खोज निकाला है। कि देवराज के लगभग आधे निर्देश प्रकाशित टीका में ही उपलब्ध हो जाते है।

वेंकटमाधव—

माधव ने समग्र ऋक्संहिता पर अपना भाष्य लिखा है। कुछ लोगों का अनुमान है कि माधव ने ऋग्वेद पर दो भाष्य लिखे हैं। पहले भाष्य के प्रथम अध्याय के अंत में माधव ने अपना परिचय लिखा है, जिससे प्रतीत होता है। कि इनके पितामह का नाम माधव, पिता वेंकटचार्य, मातामह का भवगोल और माता का नाम सुंदरी था। इनका मातृगोत्र वशिष्ठ तथा अपना गोत्र कौषिश था। इनका एक अनुज भी था, जिसका नाम था संकर्षण। इनके वेंकट तथा गोविंद नामक दो पुत्र थे। ये दक्षिणापक्ष के चोल देश (आन्ध्र प्रान्त) के रहने वाले थे। माधव का भाष्य अत्यंत संक्षिप्त है। उन्होंने 'वर्जयन् शब्दविस्तारं शब्देः कति-पयैरिति'' लिखकर इस बात को स्वंय स्वीकार किया है। इसमें केवल मंत्रों के पदों की ही व्याख्या है। संक्षिप्त बनाने की भावना से प्रेरित होकर माधव ने मूल के पदों का भी निवेश अपने भाष्यों में बहुत कम किया है। केवल पर्यायवाची पदों को देकर ही माधव ने मंत्रार्थ को स्पश्ट करने का श्लाघनीय प्रयत्न किया है। इस भाष्य के पढ़ने से मंत्र का अर्थ बड़ी सुगमता से समझ में आ जाता है। स्कन्दस्वामी के भाष्य की अपेक्षा भी यह संक्षिप्त है, सायण के भाष्य से तो कहना ही क्या ? व्याकरणय संबंधी तथ्यों को निर्देश इसमें है ही नहीं। हाँ, प्रायः सर्वत्र ब्राम्हण-ग्रंथों के प्रमाण सुंदर रीति से दिए गए है, जिससे माधव की ब्राह्मण-ग्रंथों में विषेश व्युत्पित्ति प्रतीत होती है। माधव ने स्वयं ब्राह्मणों को वेदों गूढ़ अर्थों के समझने में नितान्त उपयोगी बतलाया है। उनका कहना है। जिसने केवल व्याकरण निरुक्त का अनुशीलन किया है। वह संहिता का केवल चतुर्थांश जानता ही है, परन्तु जिन्होंनें ब्राह्मण ग्रन्थों के अर्थ का विवेचन श्रमपूर्वक किया है, शब्द रीति के जाननेवाले वे ही विद्वान (जिसे माधवने 'वृद्ध' कहा है) वेद के समस्त अर्थ को यथार्थतः कह सकते है- **संहितायास्तुरीयांषं विजानन्त्यधुनातनाः।**

निरुक्त व्याकरणयोरासीत् येशां परिश्रमः।।

अथ ये ब्राम्हणार्थानां विवेक्तारः कृतश्रमाः।

शब्दीरीतिं विजानन्ति ते सर्वं कथयन्त्यपि।।

धानुष्कयज्वा—

घानुश्यज्वा नाम के किसी तीनों वेदों के भाष्यकार का नाम वेदाचार्य की सुदर्शनमीमांसा में कई बार आया है। इन स्थानों पर वे 'त्रिवेदी भाष्यकार' तथा 'त्रयीनिष्टवृद्ध' कहे गये है। अतः इनके वेदत्रयी के प्रमाणिक भाष्यकार होने में तनिक भी संदेह नहीं रहता। ये एक वैष्णव आचार्य थे। इन उल्लेखों के अतिरिक्त न तो इनके विषय में कुछ पता है और न उनके वेदभाष्य के विशय में। इनका समय विक्रम संवत् 1600 से पूर्व होना चाहिए।

आन्नदतीर्थ—

आनन्दतीर्थ का ही दूसरा नाम 'मध्व' है, जिन्होंने द्वैतवादी सुप्रसिद्ध माध्व वैष्णव सम्प्रदाय को चलाया। इनके लिखे अनेक ग्रंथ हैं, जिनमें ऋग्वेद के कतिपय मंत्रों की व्याख्या वाला देवभाष्य भी है। यह भाष्य छन्दोबद्ध है तथा ऋग्वेद के प्रथम मंडल के सूक्तों पर ही है। इसमें राघवेन्द्र यति का यह कथन पर्याप्त रूप से प्रमाणित है- ऋक् शाखागतैकोत्तरसहस्त्रसूक्तमध्ये कानिचित् चत्वारिंशत् सूक्तानि भगवत्पादै दैः व्याख्यातानि'। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में अपने विषय में कहा है कि 'वेदैश्च सवैरहमेव वेद्यः अर्थात् समस्त वेद मेरा ही प्रतिपान करते है। अतः वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्य आनन्दतीर्थ का वेदों में भगवान् नारायण का सर्वत्र प्रतिपादन देखना नितान्त युक्तियुक्त है। अपने भाष्य के आरंभ में वे स्वयं कहते हैं-

स पूर्णत्वात् पुमान् नाम पौरूशे सूक्त ईरितः।
स एवाखिलेवेदार्थः सर्वशास्त्रार्थ एव च।।

इसी दृष्टि को अपने सामने रखकर इस वैष्णवाचार्य ने वैदिक ऋचाओं का अर्थ किया है। जयतीर्थ के कथनुसार इस मध्वभाष्य मे आधिभौतिक तथा आधिदैविक अर्थ के अतिरिक्त आध्यात्मिक अर्थ का सुंदर प्रदर्शन किया गया है। इस प्रकार ऋग्वेद का यह 'माधव' भाष्य कई अंशों के विलक्षणता के ऊपर पड़ा है। द्वैतवादियों में इनकी प्रसिद्ध कम नहीं है। इस मध्यभाष्य के सुप्रसिद्ध माध्व आचार्य जयतीर्थ ने ग्रन्थ-रचना के तीस साल के भीतर ही मन् अपनी तथा नारायण ने 'भावरत्नप्रकाशिका' नाम दूसरी वृत्ति लिखी। इनके लेखक वैदिक साहित्य के अच्छे विद्वान् प्रतीत होते है। इनकी टीका और विवृत्तियों के मध्वभाष्य के समझने में बड़ी सहायता मिलती है। आनन्द तीर्थ का आविर्भाव विक्रम की तेरहवीं सदी के मध्य लेकर 14 वीं के मध्य तक है। सुनते है कि 80 वर्ष तक जीवित रहे (1255-1335 वि.सं)।

आत्मानन्द—

आत्मानन्द ने ऋग्वेद के अंतर्गत 'अस्य-वामीय' सूक्त पर अपना भाष्य लिखा है। इस भाष्य में उद्धृत ग्रंथकारों में स्कंद, भास्कर आदि का नाम मिलता है, परन्तु सायण का नाम नहीं मिलता। इससे ये सायण से पूर्व के भाष्यकार प्रतीत होते हैं। इनके द्वारा उद्धृत लेखकों में मिताक्षरा के कर्ता विज्ञानेष्वर (ई॰ 1070-1100) तथा स्मृतिचन्द्रिका के रचयिता देवणभट्ट (13वीं शर्ती ई॰) के नाम होने से हम कह सकते है इनका आविर्भाव-काल विक्रम की चौदहवीं शताब्दी है।

यह भाष्य भी अपनी विषेशता रखता है। आत्मानन्द ने भाष्य के अंत में लिखा है कि स्कन्दस्वामी आदि का भाष्य यज्ञपरक है; निरुक्त अधिदेव परक है; परन्तु यह भाष्य अध्यात्म-विषयक है। इस पर भी मूलरहित नहीं है। इसका मूल विष्णुधर्मोतर है-

अधियज्ञविशयं स्कन्दादिभाष्यम्, निरुक्त मधिदैवतविशयम् इदन्तु भाष्यमध्यात्मविशयमिति। न च भिन्नविशयाणामणां विरोध। अस्य भाष्यस्यमूलं विश्णुधर्मोपरम्।

भाष्य के निरीक्षण करने से पता चलता है कि आत्मानन्द अपने विषय के एक अच्छे जानकार थे। इसमें प्रत्येक मंत्र का अर्थ परमात्मा को लक्ष्य कर रहा है। यह इस भाष्य की बड़ी विशेषता है।

सायण—

सायणाचार्य विजयनगर के संस्थापक महाराज बुक्क तथा महाराज हरिहर के अमात्य तथा सेनानी भी थे। बुक्क के प्रधान अमात्य का पद इन्होंने 16 वर्षों (13ई०से लेकर 1378ई०) तक अलंकृत किया। तदनन्तर हरिहर द्वितीय का मन्त्रिकार्य अपने मृत्युपर्यन्त आठ वर्षों (1379ई० से 1386ई०तक, जो इकनी मृत्यु वर्ष था) तक सम्पन्न किया। इनके वेदभाष्यों के निर्णय का यही काल है 14 शती का उत्तरार्ध। अपने ज्येष्ठ भ्राता माधवाचार्य के द्वारा इस महनीय कार्य में प्रेरित किये जाने के कारण ये भाष्य 'माघवीय' नाम से प्रख्यात है। ''वैदिक भाषा तथा धर्म के सुदृढ़ गढ़ में प्रवेश करने के लिए हमारे पास एक ही विश्वासार्ह साधन है, और वह है सायण का यही वेदभाष्य।'' हमारा तो यह निश्चित मत है कि वैदिक सम्प्रदाय के सच्चे ज्ञाता होने के कारण सायण का वेदभाष्य वास्तव में वेदार्थ की कुंजी है और वेद के दुगम दुर्ग में प्रवेश कराने के लिए यह विशाल सिंहद्वार है।

साम-भाष्यकार—

समसंहिता पर सायण भाष्य लिखने से पहले दो भाश्यों का पता चलता है। एक अन्य ग्रन्थकार ने संहिता के ऊपर तो अपना भाष्य नहीं लिखा, लेकिन सामवेदियों के नित्य नैमित्तिक अनुष्ठानों में आनेवाले मन्त्रों की व्याख्या लिखी। अतः तीन ही ग्रन्थकारों का अब तक पता चला है, जिन्होंने साम की पूरी संहिता पर अथवा साम के अनुष्ठानोपयोगी मन्त्रों पर अपनी व्याख्याएँ लिखी।

माधव—

ये सामसंहिता के प्रथम भाव्यकार प्रतीत होते हैं। साम के दोनों खण्डों-छन्द आर्चिक तथा उत्तर आर्चिक-पर इन्होंने अपना भाष्य लिखा। इसका नाम 'विवरण' है। छन्द आर्चिक के भाष्य को 'छन्दसिका विवरण' तथा उत्तरार्चिक के भाष्य को 'उत्तर विवरण' नाम दिया गया है। अभी तक यह भाष्य अमुद्रितावस्था में ही पड़ा है, परन्तु इसके पता लगाने वाले सत्यव्रत सामश्रमी ने सबसे पहले अपने सायणभाष्य के संस्करण में इस भाष्य के कुछ अंश टिप्पणी के रूप में दिए है।

माधव के पिता का नाम 'नारायण' था, जिसे कुछ विद्वानों ने स्कन्दस्वामी के ऋग्भाष्य के पूरक तथा सहायक 'नारायण' से अभिन्न ही माना है, परन्तु अभी इन दोनों की अभिन्नता मानने के लिए प्रबल प्रमाण प्राप्त नहीं हुए है' तथापि इनके आविर्भावकाल का निष्चित अनुमान किया जा सकता है। देवराज यज्वा (12 शतक) ने अपने निघुण्टुः भाष्य की अवतरणिका में किसी-माधव का निर्देश किया हैं सम्भवतः यह माधव सामभाष्य-रचयिता माधव ही है। इनता नहीं, महाकवि बाणभट्ट विरचित कादम्बरी का-

रजोजुषे जन्मनि सत्त्ववृत्तये स्थितौ प्रजानां प्रलये तमःस्पृशे।
अजाय सर्गस्थितिनाशहेतवे त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नमः।।

मंगल पद्य माधव के साम-विवरण में भी मंगल के रूप में मिलता है। इस पद्य का 'त्रयीमयाय' शब्द यही सूचित करता है कि इसका किसी वैदिक ग्रन्थ के मंगलाचरण में होना नितान्त उपयुक्त है। अतः माधव ने सर्वप्रथम इसे अपने सामभाष्य के मंगल के लिए बनाया होगा, यही अनुमान सिद्ध है। भाष्यकार माधव वाणभट्ट के कोई पूज्य आचार्य गुरु हो सकते हैं। बाणभट्ट के पूर्वज वेद के परांगम पण्डित थे, बाण को भी, जैसा कि हर्शचरित से पता चलता है, वेदवेदां की शिक्षा विद्वान् गुरु से मिली थी। यह घटना पूर्व अनुमान की पुष्टि मात्र करती है। यदि वह ठीक हो तो कहना ही पड़ेगा कि बाणभट्ट के पूर्ववर्ती माधव का समय वि॰ 657 (600ई॰) से इधर का नहीं हो सकता। अतः माधव को विक्रम की सातवीं शताब्दी में मानना ठीक जान पड़ता है।

माधव का भाष्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि ये साम सम्प्रदायों को विशेष रूप से जाननेवाले थे। इसका पता इस बात से चलता है, जैसा सत्यव्रत सामश्रमी ने दिखलाया है कि अनेक स्थलों पर सायण ने आर्च पाठ (ऋग्वेद में प्रदत्त पाठ) की ही व्याख्या की है, परन्तु इन स्थलों पर माधव ने साम पाठ (सामवेद में स्वीकृत पाठ, जो आर्च पाठ से भिन्न है) को दिया है। अन्य विषेशता का पता माधवभाष्य के मुद्रित हो जाने पर चलेगा। इस भाष्य के प्रकाशन वेदाभ्यासियों के लिये निःसन्देह बड़े काम का होगा।

भरतस्वामी—

भरतस्वामी ने सामसंहिता पर भाष्य लिखा था, यह भी अभी अप्रकाशित ही है। इसके निम्नलिखित पद्य से पता चलता है कि भरतस्वामी काश्यपगोत्र के ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम नारायण तथा माता का यज्ञदा था, इन्होंने सामवेद की समस्त ऋचाओं के व्याख्या लिखी-

इत्थं श्रीभरतस्वामी काष्यपो यज्ञदासुतः।
नारायणार्यतनयो व्याख्यात् साम्नामृचोऽखिलाः।।

भरतस्वामी ने ग्रन्थ के आरम्भ में अपना परिचय दिया है-

नत्वा नारायणं तातं तत्प्रसादादवाप्तधीः।
साम्नां श्रीभरतस्वामी काष्यपो व्याकरोदृचम्।।
होसलाधीष्वरे पृथ्वीं रामानाथे प्रशासति।
व्याख्या कृतेयं क्षेमेण श्रीश्वसता मया।।

इन पद्यों से पता चलता है कि नारायण के पुत्र कश्यप भरतस्वामी ने श्रीम् जैसे प्रसिद्ध वैष्णवतीर्थ में रहते हुए होयसलाधीश्वर रामनाथ के राज्यकाल में इस भाष्य का बनाया। अपने समकालीन राजा के नामोल्लख से भारतस्वामी के समय का पूरा पता हमें चलता है।

होयसलवंश के विख्यातनामा वीर रामनाथ अपने समय के एक प्रतापी नरेश थे। इनके पिता सोमेश्वर इस वंश के प्रधान उन्नायकों में से माने जाते हैं। इन्होंने समस्त चोल राजाओं के प्रदेशों को जीतकर अपने अधीन कर लिया था। रामनाथ सोमेश्वर के द्वितीय पुत्र थे, जो देवल महादेवी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। सोमेश्वर ने पैतृक सिंहासन अपने प्रथम पुत्र, बिज्जल रानी के गर्भ से उत्पन्न, नरसिंह तृतीय को दिया तथा रामनाथ को अपने राज्यकाल में ही दक्षिण प्रदेशों का

शासक बनाया था। पिता की मृत्यु के अनन्तर रामनाथ इस प्रान्त के शासक बने ही रहे। श्रीम् इनके ही राज्य में पड़ता था। अतः भरतस्वामी का उपुर्यक्त उल्लेख बिल्कुल ठीक है। ये अपने ज्येष्ठ भ्राता से अलग, स्वतन्त्र रूप से दक्षिण प्रदेश में शासन करते थे। महीपुर के दक्षिण-भाग में इन्होंने अपने भाई से लड़ाई भी लड़ी थी। इनके पिता के द्वारा विजित चोल प्रदेश पर इन्हीं का शासन होता था। इनके जेष्ठ भाई होयसल नरसिंह तृतीय की मृत्यु ई० सनृ 1292 में हुई, जिसके कुछ ही साल बाद (लगभग 1294 या 1295 में) ये भी यहाँ से चल बसे। इनके पुत्र विश्वनाथ इनके स्थान पर दक्षिण देश के शासक हुए, परन्तु इनकी भी मृत्यु केवल तीन वर्श के ही भीतर हो गई। इसके बाद इनका भी प्रदेश नरसिंह तृतीय के सुपुत्र बीर बल्लाल तृतीय के पैतृक राज्य में मिल गया।

इस विवरण के आधार पर रामनाथ के शासन का अन्त वि०सं० 1352 (1295ई०) में हुआ। इससे भरतस्वामी के भाष्य का रचनाकाल सम्भवतः वि० सं० 1345 के आसपास होगा। अतः भरतस्वामी विक्रम की चौदहवीं सदी के मध्य-काल में अवश्य विद्यमान थे। ये दक्षिण भारत के रहनेवाले थे। भरतस्वामी के भाष्य तथा साणभाष्य में लगभग साठ-सत्तर वर्षों का अन्तर होगा। भरतस्वामी का भाष्य बहुत संक्षिप्त है। पूर्ववर्ती, भाष्यकार माधव से इसमें पर्याप्त सहायता ली गई प्रतीत होती है। भरतस्वामी ने साम-ब्राह्मणों पर भी भाष्य लिखा है। अतः पूरी संहिता पर इनका भाष्य होना चाहिए।

गुणविष्णु—

गुणविष्णु के साममन्त्र-व्याख्यान का नाम मिथिला तथा बशल में खूब है। वहाँ के सामवेदियों के नित्य नैमित्तिक विधियों के उपयोगी साममन्त्रों की व्याख्या कर इन्होंने बड़ा भारी काम किया। ये मिथिला या बगल के किसी भीग के रहने वाले थे। इनके छान्दोग्य-मन्त्रभाष्य का एक सुन्दर संस्करण कलकत्ता की संस्कृत- परिषद् ने निकाला है। इसकी प्रस्तावना में विद्वान् संपादक ने गुणविष्णु के विषय में अनेक ज्ञातव्य विषयों का विवेचन विद्वत्ता के साथ किया है।

यह छान्दोग्य मन्त्रभाष्य सामवेद की कौथुम शाक्षा पर है (हलायुधेन ये काण्वे कौथुमे गुणविष्णुना)। इन भाष्य तथा सायणकृत मन्त्रब्राह्मण के भाष्य की तुलना करने से जान पढ़ता है कि सायण ने गुण-विष्णु के भाष्य को आधार मानकर अपना भाष्य लिखा। हलायुध के द्वारा भी इस ग्रन्थ को उपयोग में लाने के प्रमाण मिलते है। इससे सम्भव है कि गुण-विश्णु-बल्बालसेन या उनके प्रसिद्ध पुत्र लक्ष्मणसेन के राज्यकाल में विद्यमान थे। अतः इनका समय विक्रम की 12 वीं सदी का अन्त तथा 13 वीं सदी का आरम्भ माना जा सकता है।

गुणविष्णु का 'छान्दोग्य-मन्त्राभाष्य' ग्रन्थ नितान्त विख्यात है तथा प्रकाशित भी है। इनके अन्य दो ग्रंथों का भी पता चलता है-पहला मंत्र ब्राह्मणभाष्य तथा दूसरा पारस्करगृहसूत्रभाष्य। इस ग्रंथों की रचना से ये अपने समय के एक प्रख्यात वैदिक प्रतीत होते है।

यजुः भाष्यकार—

(क) मध्यन्दिनसंहिता के दो प्रमुख भाष्यकर है-

(1) उबट—

ये आनन्दपुर के निवासी बज्रट के पुत्र थे, तथा अवन्ती में निवास करते समय राजा भोज के शासन काल में (महीं भोजे प्रशासति) इस भाष्य का निर्माण किया। फलतः इनका समय 11 वीं शती का मध्यकाल है। (भोज का राज्यकाल = 1018 से लेकर 1060 ई॰ तक)। पिता-पुत्र विशिष्ट नामकरण से ये काश्मीरी प्रतीत होते है। काव्यप्रकाश के टीकाकार भीमसेन उबट को मम्मट का अनुज मानते हैं जो काल'-विरूद्ध होने से संशययुक्त मालूम पड़ता है। इनका भाष्य लध्वक्षर होने पर भी बड़ा ही प्रोज्ज्वल, प्रामाणिक और सरल है। इसमें अनेक मंत्रों के अर्थ अध्यात्मपरक भी बतलाये गये हैं। उवट मध्ययुग के एक नितान्त प्रौढ़ वेदज्ञ थे। इनकी अन्य रचानायें हैं- (क) ऋक्-प्रातिशाख्य की टीकाः (ख) यजुः प्रातिशाख्य की टीका; (ग) ऋक्सर्वानुक्रमणी पर भाष्य, (भ) ईशावास्य उपनिषद् पर भाष्य, जो सब प्रकाशित हैं।

(2) महीधर—

इनके भाष्य का नाम 'वेददीप' है, जो विशेष मौलिक न होने पर भी अर्थ की विषदता प्रकट करने में नितान्त उपादेय है। महावीर काशी के निवासी नागर ब्राह्मण थे। इनके प्राचीन पुस्तकालय की हस्तलिखित प्रतियां हाल में सरस्वती भवन पुस्तकालय में संगृहीत की गई हैं। इनके भाष्य पर उबट भाष्य की स्पष्ट छाया है, परन्तु इन्होंने निरुक्त , श्रौतसूत्र आदि से उद्धरण देकर यज्ञप्रक्रिया के विधान को सुबोध रूप में समझाया और एक प्रकार से उवट-भाष्य को स्पष्ट तथा विषद बनाया है। महावीर वैदिक होने के अतिरिक्त तंत्र-शास्त्र में मर्मविद् तान्त्रिक भी थे, जिन्होंने अपने तंत्रग्रंथ मंत्रमहोदधि का निर्माण 1645 वि.सं. (= 1588 ई.) में किया। फलतः इनका अविर्भाव काल 16 वीं शती का उत्तरार्ध है और इस प्रकार ये वबट के पांच सौ वर्शों के अनन्तर उत्पन्न हुए। ये नरसिंह के उपासक थे जिसका उल्लेख इनके ग्रंथों में बहुश: उपलब्ध है।

(ख) काण्वसंहिता-भाष्य

हलायुध—

सायण के पीछे अनन्ताचार्य, आनन्दबोध आदि अनेक विद्वानों के शुल्क-यजुर्वेद की काण्वसंहिता पर अनेक भाष्य बनाए, परन्तु सायण के पूर्ववर्ती प्रधान लेखकों में हलायुध ने इस संहिता पर अपना भाष्य लिखा। इस भाष्य का नाम 'ब्राह्मणसर्वस्व' है। इसके आरम्भ में हलायुध ने अपने विषय में कुछ वृत्त दिया है, जिससे जान पड़ता है कि वे बंगाल के अंतिम हिन्दू नरेश सुप्रसिद्ध लक्ष्मणसेन के दरबार में धर्माधिकारी के गौरवपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित थे। यह पद उन्हें जवानी ढलेने पर मिला था। वे इसके सर्वथा योग्य थे। बाल्यकाल में वे राजपण्डित हुए। चढ़ती जवानी में ष्वेत छत्र धारण करने का अधिकार तथा मान उन्हें दिया गया। अंतिम समय में वे राजा के धर्माधिकारी बने-

बाल्ये ख्यापितराजपण्डितपदं श्रेताचिंबिम्बोज्ज्वल-
च्छत्रोत्सिक्तमहामहस्तमुपदं दत्वा नवे यौवने।
यस्मै यौवनषेशयोग्यमखिलत्त्मापालनारायणः
श्रीमान् लक्ष्मणसेनदेवनृपतिधर्माधिकारं ददौ।।

राजा लक्ष्मणसेन के साथ इस संबंध से इनका समय सरलता से जाना जा सकता है। लक्ष्मणसेन ने बड़ी योग्यता से गौड़ देश का शासन किया था। सुप्रसिद्ध लक्ष्मण संवत् (लं.सं.0) के चलाने वाले ये ही विद्याप्रेमी महराज हैं। 1170 ई के लगभग इन्होंने अपने विख्यात् पिता बल्लालसेन के बाद सिंहासन पर बैठे। लगभग 30 वर्ष तक ये राज्य करते रहे। 1200 ई॰ में इनके राज्य का अंत हुआ। अतः इनका समय वि॰सं. 1237 तदनुसार ई॰ सन् 1170 से 1200 तक हैं लक्ष्मणसेन के धर्माधिकारी होने के कारण हलायुध का भी यही समय होना चाहिए। अतः हलायुध का काल विक्रम की 12 वीं शताब्दी का पूर्वार्ध है।

हलायुध अपने समय के एक प्रख्यात वैदिक विद्वान थे। ब्राह्मण-सर्वस्व के अतिरिक्त मीमांसासर्वस्व, वैष्णवसर्वस्व, शैवसर्वस्व तथा पंडित-सर्वस्व आदि का ग्रन्थ हलायुध की लेखनी से उत्पन्न हुए। इससे ये न केवल वेद तथा मीमांस के ही मान्य पंडित प्रतीत होते हैं, प्रत्युत् आगम-विषेशतः वैष्णव तथा शैव आगम-के भी मर्मज्ञ जान पड़ते है। अतः ऐसे योग्य व्यक्ति का राज्य के धर्माधिकारी का पद सुशोभित करना नितान्त उचित था।

सायणाचार्य ने माध्यन्दिनसंहिता के ऊपर उवटभाष्य होने के कारण अपना कोई भाष्य नहीं लिखा। सायण ने पूरी काण्वसंहिता पर ही अपना भाष्य लिखा। अनन्ताचार्य-ये काषी के वैदिक विद्वान तथा माध्य वैष्णव थे। 16 वीं शती इनका स्थिति काल है। इन्होंने काण्वसंहिता के उतरार्ध पर (21 आ. 40 अ. तक) अपना भाष्य बनाया है। इस भाष्य पर महीधर के भाष्य की स्पष्ट छाया है। फलतः ये उनके उत्तरकालीन ग्रंथकार हैं। स्थान-स्थान पर इन्होंने मंत्रो का अर्थ विष्णुपरक किया है। यह सम्प्रदायीनुसारी व्याख्या इनके पाण्डित्य तथा पुराणज्ञता की विषेश द्योतिका है। शुक्लयजुःप्रातिशाख्य पर भी इनका एक टीका है, जा उवट की व्याख्या के सामने विषेश महत्व नहीं रखती।

आनन्दबोध भट्टोपाध्याय—

सारस्वती सुषमा पत्रिका (सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय) में आनन्दबोध भट्टोपाध्याय का काण्व-संहिता के चतुर्थ दशक (अध्याय 31-40) का भाष्य क्रमश: (सं. 2009-2011) प्रकाषित है। संपूर्ण संहिता पर इनके भाष्य मिलने की सूचना दी गई है, तो शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाला है। ग्रंथ के अंत की पुष्पिका के अनुसार ये वासुदेवपुरी-निवासी जातवेद भट्टोपाध्याय के पुत्र चतुर्वेदी थे। इनके संबंध में केवल इतनी ही सूचना उपलब्ध है। अपने भाष्य में इन्होंने देवता ऋशि, छंद का निर्देश एवं यज्ञ तथा मंत्रों का विनियोग भी यथास्थान दिया है। इसकी भाषा सरल और सुबोध है। इसमें व्याकरण संबंधी व्युत्पतियाँ भी दी गई है। ब्राह्मणों आदि से उद्धरण भी इन्होंने अपने अर्थ की पुष्टि में यत्र-तत्र दिये हैं। माध्यन्दिन यजुर्वेद पर उवट और महीधर के भाष्य से इनकी तुलना करने पर ऐसा लगता है कि पर उवट विशेष लक्षित किया जा सकता है। तथापि इन्होंने अपनी मौलिकता भी प्रदर्शित की है। उदाहरणार्थ इस मंत्र के भाष्य को लें-

केतुं कृण्वत्रकेतवे पेषो मर्या अपेशसे।
समुशदिभ्रजायथाः। (माध्यदिन सं. 29। 36 काण्व सं. 31। 12)

उवट और महीधर ने 'मर्या' को विभक्ति-व्यत्यय से 'प्रर्याय = मनुश्याय' अर्थ में ग्रहण किया, किन्तु आनन्दबोध ने उसे प्रथमान्त 'मर्या' ही माना है। साथ ही यह भी कहा जा सकता है कि महीधर की भांति इन्होंने अधिक स्पष्ट अर्थ नहीं किया है। इस दृष्टि से इनकी शैली उवट से अधिक मिलती हुई जान पड़ती है, परन्तु बिना पूरा ग्रंथ देखे इसके विषय में कुछ विशेष कहा नहीं जा सकता।

(4) कृष्णयजुर्वेद-तैत्तरीय-भाष्य—

तैत्तरीयसंहिता कृष्णयजुर्वेद की प्रधान संहिता है। सायणचार्य ने सबसे पहले इसी संहिता पर अपना प्रसिद्ध भाष्य लिखा। सायण के भाष्य के पहले भी अनेक आचार्यों ने इस संहिता पर अपना व्याख्यान लिखा था। इन व्याख्याकारों के विषय में हमारा ज्ञान नितान्त कम है। इनके भाष्य भी अभी तक उपलब्ध नहीं हुए हैं। इन्होंने भाष्य बनाया-इसका पता हमें केवल परवर्ती लेखकों के ग्रन्थों में दिए गये उल्लेखों से ही चलता है। केवल एक ही भाष्कर भट्भाष्कर मिश्र का पूरा भाष्य मिलता है तथा सुंदर रीति से होकर प्रकाशित भी किया गया है। भट्भाष्कर मिश्र का ही व्यक्तित्व इस संहिता के सायणपूर्व भाष्यकारों में विशेष रूप में परिस्फुट है। इस सामान्य वर्णन के अतिरिक्त इनका कुछ विशिष्ट वर्णन यहां किया जा रहा है।

कुण्डिन-कुण्डिन ने तैत्तरीयसंहिता पर वृत्ति बनाई थी, इसका पता हमें काण्डनुक्रमणीं के इस श्लोकार्ध से चलता है- **यस्याः पदकृदात्रेयो वृतिकारस्तु कुण्डिनः** पदपाठकार आत्रेय के साथ संबंध होने से कुण्डिन एक प्राचीन आचार्य प्रतीत होने हैं। बहुत संभव है कि इन्होंने गुप्त काल में अपनी वृति बनाई हो। इनका न तो ग्रंथ मिला है और न अन्य बातों का ही पता चलता है।

भवस्वामी—

आचार्य भवस्वामी ने भी इस संहिता पर भाष्य बनाया होगा। इसका पता 'बौधायन-प्रयोगसार' के आंरभ में केशवस्वामी के इस वाक्य से चलता है-'भवस्वामिमतानुसारिणा मयाय तु उभयमप्यंगीकृत्य प्रयोगसारः क्रियेत। भट्टभाष्कर ने अपने भाष्य के आंरभ में भवस्वामी का उल्लेख किया है, जिससे इनके भाष्यकार होने की बात पुष्ट होती है।

गृहदेव—

इनके तैत्तरीय संहिता के भाष्यकार होने में सबसे निश्चित प्रमाण देवराज यज्वा के निघंटु-भाष्य से मिलता है। भाष्य के आरंभ में देवराज यज्वा ने गुहदेव को भाष्यकार लिखा है। तैत्तरीयआरण्यक के 'रश्मयश्च देवा गरगिरः मंत्र के गरगिरः' शब्द की गुहदेव-कृत व्याख्या को देवराज ने उद्धृत किया है, जिससे इनके तैत्तरीयसंहिता के व्याख्यकार होने की बात पुष्ट होती है। ये भी प्राचीन भाष्यकार है, क्योंकि आचार्य रामानुज ने वेदार्थसंग्रह' में गुहदेव का नामोल्लेख किया है। अतः विक्रम की आठवीं या नवीं शताब्दी में इनका होना अनुमान सिद्ध है।

क्षुर—

आचार्य क्षुर ने तैत्तरीयसंहिता पर कोई भाष्य अवश्य लिखा था। इसका पता सायणाचार्य की माधवीया धातुवृति' में दिये गये अनेक निर्देशों से मिलता है। इनमें क्षुर का नाम भट्टभास्कर के नाम से पूर्व ही उल्लिखित है- **'यथा त्रय एनां महिमानं: सचते (तै॰ सं॰ 4-3-11) - इत्यत्र क्षुरभट्टभास्करीययो: संचते समंते इति।** हमारा अनुमान है कि क्षुर भाष्कर मिश्र से प्राचीन है।

भट्ट भाष्कर —

इनके समय का निर्धारण करना वैदिक भाष्यकारों के इतिहास के लिए नितान्त आवश्यक है। सायणाचार्य के द्वारा निर्दिष्ट होने से इनका समय विक्रम की 15वीं शताब्दी से पहले ही होना निश्चित है। वेदाचार्य (अपरनाम लक्ष्मण' समय वित्र सं. 1300) ने अपने 'सुदर्शन मीमांसा' नामक ग्रंथ में भट्ट भाष्कर मिश्र का ही नामोल्लेख नहीं किया है, प्रत्युत इनके वेदभाष्य- जिसका नाम 'ज्ञानयज्ञ' है- से भी अपना परिचय दिखलाया है। देवराज यज्वा के द्वारा इनके उल्लेख किये जाने की घटना का संकेत हम पहले कर आए है। प्रसिद्ध वैदिक हरदत्त (वि.सं. 12 वीं शताब्दी) ने एकाग्नि-काण्ड के अपने भाष्य में भास्करकृत भाष्य से विशेष सहायता ली है। इन सब प्रमाणों के आधार पर भट्ट भास्कर मिश्र का समय विक्रम की 12 वीं शताब्दी के पूर्व ठहरता है। अतः इन्हे 11 वीं सदी में मानना अयुक्तियुक्त न होगा। इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है कि भास्कर के द्वारा अपने भाष्य से उद्धृत ग्रंथ तथा ग्रंथकार (जैसे आर्यटीय, अमरकोष काशिका आदि) अत्यंत प्राचीन हैं। इसलिए इनका उक्त काल उचित ही प्रतीत होता है। भट्ट भाष्कर ने तैत्तरीय संहिता पर भाष्य लिखा है, किसका ज्ञानयज्ञ भाष्य है। यह बड़ी विद्वता से रचा है। प्रमाणरूप् से अनेक वैदिक ग्रंथ उद्धृत किए गए है। कुल वैदिक निघण्टुओं से भी अनेक प्रमाणय दिए गए हैं।

मंत्रों के अर्थ—

प्रदर्शन में कहीं-हीं भाष्यर ने भिन्न-भिन्न आचार्याभिमत अर्थों को भी दिखलाया है यज्ञपरक अर्थ का ही निर्देश इसमें नहीं है, बल्कि आध्यात्म तथा अधिदैव पक्ष में भी वेदमंत्रों का अर्थ बड़ी सुंदरता से किया गया है। उदाहरणार्थ हंसः षुचिशद् वसुरन्तरिक्षसत्' प्रसिद्ध मंत्र के 'हंस' पद की तरह से व्याख्या की गई है। अधियज्ञ पक्ष में हंस का अर्थ है- (हन्ति पृथिवीमिति हंसं) अधिदैवपक्ष में हंस का अर्थ है- आदित्य तथा अध्यात्मपक्ष हंस है-आत्मा। इसी तरह से अन्य मंत्रों के भी अर्थ कई प्रकार के किए गये है। इस प्रकार की अन्य विशेषताओं के कारण यह वैदिक साहित्य में इतना महत्व रखता है।

अथर्व भाष्यकार—

अथर्वसंहिता का भाष्य पहले पहल सायण ने ही प्रस्तुत किया। इनके पहिले किसी भी विद्वान ने इस वेद का ही संहिता पर भाष्यय नहीं लिखा। सायण ने पूरी संहिता पर भाष्य लिखा था, परन्तु छपे हुए ग्रंथों में केवल 12 काण्डों (1-4, 6-8, 11, 17-20 काण्ड) का ही भाष्य मिलता है। इस प्रकार इस वेद पर सायण-भाष्य भी अधूरा ही है।

ब्राह्मण-भाष्य—

संहिताओं के समान भिन्न-भिन्न शाखाओं के ब्राह्मणों पर भी कालान्तर में विद्वानों ने टीकायें तथा भाष्यों का प्रणयन किया। इनमें प्रधान आचार्यों का संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जाता है। शतपथ-ब्राह्मण-शतपथ दोनों शाखाओं-माध्यनन्दिन तथा काण्व पर भाष्य मिलता है।

(1) काण्व शतपथ पर भाष्य महाभारत के टीकाकार नीलकण्ड ने किया था। भाष्य तो मिलता नहीं, केवल उसका निर्देश वनपर्व के 162 अ०के 11 वें श्लोक की टीका में उन्होंने स्वयं किया है।

(2) माध्यन्दिन शतपथ-सुनते है उबट ने इस पर टीका लिखी थी। इनसे बहुत पहिले हरिस्वामी ने पूरे शतपथ पर अपना भाष्य बनाया था, जो आजकल पूरा नहीं मिलता। ये बड़े भारी वैदिक थे। ये पराशर गोत्रीय नागस्वामी के पुत्र तथा अवन्ती के राजा विक्रम के धर्माध्यक्ष थे। सौभाग्य से इनके भाष्य में रचना काल का निर्देश है। भाष्य का निर्माण 3740 कलिवर्श (अर्थात् 538 ई०) में हुआ था, जिससे स्पश्ट है कि ये विक्रम की शष्ठ शताब्दी में विद्यमान थे। यह भाष्य प्राचीन तथा प्रामाणिक है। ऐतरेय ब्राह्मण-ऐतरेय ब्राह्मण पर निम्नलिखित भाष्य उपलब्ध होते हैं-

(1) गोविन्दस्वामी—

'दैवी' की टीका 'पुरुषकार' के कर्ता श्रीकृष्णलीलाशुक मुनि (13शती) ने 118 वीं कारिका की टीका में 'गोविन्द स्वामी' का उल्लेख किया है (अनन्तशयन-ग्रन्थमाला में प्रकाशित)। यही उद्धरण 'माधवीया धातुवृत्ति' में भी मिलता है। 'बौधायनीय-धर्म-विवरण' का कर्ता सम्भवतः यही ग्रन्थकार है। इसमें कुमारिका का निर्देश और उनके प्रख्यात ग्रन्थ 'तन्त्रवार्तिक' का उद्धरण मिलता है। अतः इनका समय 8 शती के अनन्तर 13 शती से पूर्व सम्भवतः दशम शतक है।

(2) शड्गुरु शिष्य—

इन्होंने ऐतरेय-ब्रा०, ऐत०आर०, आश्रवलायन श्रौत तथा गृह्य और सर्वानुक्रमणी पर टीकायें लिखी है, जिनमें से ऐतरेय ब्रा० की टीका अभी अधूरी ही प्रकाषित है (अ०श०ग्र०) परन्तु कात्यायन की 'सर्वानुक्रमणी' की 'वेदार्थदीपिका' व्याख्या नितान्त प्रख्यात तथा सुसम्पादित है (आक्सफोर्ड से प्रकाशित)। अन्तिम टीका का रचनाकाल 1234 सं० (1177 ईवी ग्रन्थकार ने दिया है। फलतः इनका समय 12वीं शती का मध्यकाल है।)

(3) आचार्य सायण—

इनकी टीका आनन्दाश्रम पूना से प्रकाशित है। भरतस्वामी का सामविधान ब्राह्मण पर, गुणविश्णु का छान्दोग्य ब्राह्मण पर तथा द्विजराज भट्ट का संहितोपनिषद् ब्राह्मण पर भाष्य प्रकाशित है।

तैत्तिरीय-ब्राह्मण

(1) भवस्वामी—

भट्टभास्कर के कथनानुसार इनका भाष्य वाक्यपरक था। केशव स्वामी ने (जिनका नाम 11 शतक में निर्मित 'चिकाण्ड मण्डन' में उल्लिखित है) बौधायन-प्रयोगसागरमें भवस्वामी का

नाम निर्दिष्ट किया है। अतः इनका समय दशम शतक मानना उचित होगा। तैत्तिरीयसंहिता तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण पर इनके भाष्य निर्दिष्टमात्र हैं, उपलब्ध नहीं।

(2) भट्ट भास्कर—

'तैत्तिरीयसहिता' के ऊपर भाष्य लिखने के बाद इन्होंने तैत्तिरीय ब्राह्मण पर भी अपना भाष्य लिखा।

(3) आचार्य सायण—

इन्होंने भी तैत्तिरीय-ब्राह्मण पर अपना भाष्य लिखा है जो नितान्त लोकप्रिय है।

सामवेदीय ब्राह्मण—

सामवेद के ब्राह्मणों पर सायण से पहिले भी कई आचार्यों ने टीकायें लिखी हैं। हरिस्वामी के पुत्र जयस्वामी ने ताण्ड्य ब्राह्मण पर, गुणविष्णु ने मन्त्र-ब्राह्मण पर, भास्कर मिश्र ने आर्षेय-ब्राह्मण पर तथा भरतस्वामी ने सामविधान-ब्राह्मण पर भाष्यों की रचना की है। आचार्य सायण ने अपनी पद्धति के अनुसार इन समग्र सामवेदीय ब्राह्मणों पर अपनी व्याख्या लिखी है। गोपथ-ब्राह्मण के ऊपर किसी व्याख्या का पता नहीं चलता।

सायण के भेदभाष्य—

सायण के अन्य ग्रन्थों को उतना महत्त्व प्राप्त नहीं है जितना इन वेदभाष्यों को। सर्वसाधारण तो इनकी अन्य रचनाओं के अस्तित्व से भी सर्वथा अपरिचित है। वह तो सायण को इन्हीं वेदभाष्यों के रचयिता के रूप में जानता है तथा आदर करता है। ये वेदभाष्य ही सायणाचार्य की कमनीय कीर्तिलता को सर्वदा आश्रय देने वाले विशाल कल्पवृक्ष हैं, जिनकी षीतल छाया में आदरणीय आश्रय पाकर सायण की कीर्तिगरिमा सदैव वृद्धि तथा समृद्धि प्राप्त करती जायेगी। जिन संहिताओं तथा ब्राह्मणों के ऊपर सायण ने अपने भाष्य लिखे, उनके नामों का यहाँ उल्लेख किया जाता है। जहाँ तक पता चलता है सायण ने ज्ञान-काण्ड की व्याख्या में किसी ग्रन्थ को नहीं लिखा। सायण ने इन सुप्रसिद्धि वैदिक संहिताओं के ऊपर अपने भाष्य लिखे-

(1) तैत्तिरीयसंहिता (कृष्ण यजुर्वेद की)

(2) ऋग्वेदसंहिता

(3) सामवेदसंहिता

(4) काण्वसंहिता (शुक्लयजुर्वेदीय)

(5) अथर्ववेदसंहिता

सायण के द्वारा व्याख्यात ब्राह्मण तथा आरण्यक-

क-कृष्णयजुर्वेदीय ब्राह्मण-

(1) तैत्तिरीय-ब्राह्मण

(2) तैत्तिरीय आरण्यक

ख-ऋग्वेद के ब्राह्मण

(3) ऐतरेय ब्राह्मण

(4) ऐतरेय-आरण्यक

ग-सामवेद के ब्राह्मण-

(5) ताण्ड्य ब्राह्मण (पंचाविंश; महाब्राह्मण)

(6) शड्विंश ब्राह्मण

(7) सामविधान ब्राह्मण

(8) आर्शेय ब्राह्मण

(9) देवताध्याय ब्राह्मण

(10) उपनिशद् ब्राह्मण

(11) संहितोपनिषद् ब्राह्मण

(12) वंश ब्राह्मण

घ- शुक्ल यजुर्वेदीय ब्राह्मण

(13) शतपथ-ब्राह्मण

3.6 वैदिक एवं लौकिक साहित्य में भेद

वैदिक साहित्य के अनन्तर लौकिक संस्कृत में निबद्ध साहित्य का उदय होता है। लौकिक संस्कृत में लिखा गया साहित्य, विषय, भाषा, भाव आदि की दृष्टि से अपना विशिष्ट महत्त्व रखता है। लौकिक साहित्य वैदिक साहित्य से आकृति, भाषा, विषय तथा अन्तस्तत्त्व की दृष्टि नितान्त पार्थक्य रखता है।

(क) विषय—

वैदिक साहित्य मुख्यतया धर्मप्रधान साहित्य है। देवताओं को लक्ष्य कर यज्ञ-याग का विधान तथा उनकी कमनीय स्तुतियाँ इस साहित्य की विषेशतायें है; परन्तु लौकिक संस्कृत साहित्य, जिसका प्रसार प्रत्येक दिशा में दीख में पड़ता है, मुख्यतया लोकवृत्त-प्रधान है; पुरुषार्थ के चारों अशों में काम की ओर इसकी प्रवृत्ति विशेष दीख पड़ती है। उपनिषदों के प्रभाव से इस साहित्य के भीतर नैतिक भावना का महान् साम्राज्य है। धर्म का वर्णन भी है, परन्तु यह धर्म वैदिक धर्म पर अवलम्बित होने पर भी कई बातों में कुछ नूतन भी है। ऋग्वेदकाल में जिन देवताओं की प्रमुखता थी अब वे गौणरूप में ही वर्णित पाये जाते है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव की उपासना पर ही अधिक महत्त्व इस युग में दिया नये देवताओं की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार प्रतिपाद्य विषय का अन्तर इस साहित्य में स्पष्ट दीख पड़ता है।

(ख) आकृति—

लौकिक साहित्य जिस रूप में हमारे सामने आता है वह वैदिक साहित्य के रूप से अनेक अंशों में भिन्नता रखता है। वैदिक साहित्य में गद्य को गरिमा स्वीकृत की गई है। तैत्तिरीय संहिता, काण्व-संहिता तथा मैत्रायणी संहिता से ही वैदिक गद्य आरम्भ होता है। वैदिक गद्य में जो सौन्दर्य दीख पड़ता है वह लौकिक संस्कृत के गद्य में दिखलाई नहीं पड़ता। अब तो गद्य का क्षेत्र केवल व्याकरण और दर्शन शास्त्र तक ही सीमित रह जाता है, परन्तु वह गद्य दुरूह, प्रसादविहीन

तथा दुर्बोध भी है। इस युग में पद्य की प्रभुता इतनी अधिक बढ़ जाती है कि ज्योतिष और वैद्य जैसे वैज्ञानिक विषयों का भी वर्णन छन्दोमयी वाणी में ही किया गया है। साहित्यिक गद्य केवल कथानकों तथा गद्यकाव्यों में ही दीख पड़ता है, परन्तु क्षेत्र के सीमित होने के कारण यह गद्य वैदिक गद्य की अपेक्षा कई बातों में हीन तथा न्यून प्रतीत होता है। पद्य की रचना जिन छन्दों में की गई है, वे छन्द भी वैदिक छन्दों से भिन्न ही हैं। पुराणों तथा रामायण महाभारत में विशुद्ध 'श्लोक' का ही विशाल साम्राज्य विराजमान है, परन्तु पिछले कवियों ने साहित्य में नाना प्रकार के छोटे-बड़े छन्दों का प्रयोग विशय के अनुसार किया है। वेद में जहाँ गायत्री, त्रिष्टुप् तथा जगती का प्रचलन है वहाँ उक्त संस्कृत में उपजाति, वंशस्थ ओर वसन्ततिलका विराजती है। लौकिक छन्द वैदिक छन्दों से ही निकले हुए हैं, परन्तु इनमें लघु-गुरु के विशेष महत्त्व दिया गया है।

(ग) भाषा—

भाषा की दृष्टि से भी यह साहित्य पूर्वयुग में लिखे गये साहित्य की अपेक्षा भिन्न है। इस युग की भाषा के नियामक तथा शोधक महर्षि पाणिनि है, जिनकी अष्टाध्यायी ने लौकिक सस्कृत का भाव्य विशुद्ध रूप प्रस्तुत किया। इस युग के नियमों की मान्यता उतनी आवश्यक नहीं थी। इसीलिये रामायण, महाभारत तथा पुराणों में बहुत से 'आर्ष' प्रयोग मिलते हैं, जो पाणिनि के नियमों से ठीक नहीं उतरते। पिछली शताब्दियों में तो पाणिनि तथा उनके अनुयायियों की प्रभुता इतनी जम जाती है कि 'अपाणिनीय' प्रयोग के आते ही भाषा अत्यधिक खटकने लगती है। 'च्युत-संकारता' के नित्यदोष माने जाने का यही तात्पर्य है। आशय यह है कि वैदिक काल में संस्कृत भाषा व्याकरण के नपे-तुले नियमों से जकड़ी हुई नहीं थी, परन्तु इस युग में व्याकरण के नियमों से बाँध कर वह विशेष रूप से संयत कर दी गयी है।

(घ) अन्तस्तत्त्व—

वैदिक साहित्य में रूपक की प्रधानता है। प्रतीक रूप से अनेक अमूर्त भावनाओं की मूर्त कल्पना प्रस्तुत की गयी है, परन्तु लौकिक साहित्य में अतिशयोक्ति की ओर अधिक अभिरुचि दीख पड़ती है। पुराणों के वर्णन में जो अतिशयोक्ति दीख पड़ती है वह पौराणिक शैली की विशेषता है। वैदिक तथा पौराणिक तत्त्वों में किसी प्रकार का अन्तर नहीं है, भेद शैली का ही है। वैदिक साहित्य में प्रसिद्ध इन्द्र-वृत्र, युद्ध, अकाल, दानव के ऊपर वर्षा-विजय का प्रतिनिधि है। पुराणों में भी उसका यही अर्थ है, परन्तु शैली-भेद होने से दोनों में पार्थक्य दीख पड़ता है। पुनर्जन्म का सिद्धान्त इस वैदिक युग में विकसित होकर अत्यन्त आदरणीय माना जाने लगा। ऐसी अनेक कहानियाँ मिलेंगी जिसका नायक कभी तो पशुयोनि में जन्म लेता है ओर वही कभी पुण्य के अधिक संचय होने के कारण देवलोक में जाकर विराजने लगता है। साहित्य मानव समाज का प्रतिबिम्ब हुआ करता है-इस सत्य का परिचय लौकिक संस्कृत साहित्य के अध्ययन से भली-भाँती मिलता है। मानव-जीवन से सम्बद्ध तथा उसे सुखद बनाने वाला शायद ही कोई विषय होगा जो इस साहित्य से अछूता बच गया हो। पूर्वकाल में जहाँ पर नैसर्गिकता का बोलबाला था, वहाँ अब अलंकृति की अभिरूचि विशेष बढ़ने लगी। अलंकारों की प्रधानता का यही कारण है। इस

प्रकार अनेक मौलिक वैदिक तथा लौकिक साहित्य में विद्यमान है। कतिपय अन्य भिन्नतायें भी दृश्टिगोचर होती हैं-

(1) वैदिक साहित्य तत्कालीन जनभाषा का साहित्य है, संस्कृत भाषा का काव्य-साहित्य अभिजातवर्ग की साहित्यिक भाषा का साहित्य है। (1) वैदिक साहित्य में प्राकृतिक शक्तियों का कीर्तन है, परन्तु संस्कृत का साहित्य मानव-जीवन का साहित्य है। (3) वैदिक साहित्य ग्राम्यजीवन का साहित्य है, जब आर्य लोग पशुपालन तथा कृषि के द्वारा अपनी जीविका अर्जन करते थे; संस्कृत साहित्य नागरिक जीवन का साहित्य है, जब बड़े-बड़े राजाओं के वैभव से महनीय नगरों की स्थापना की गई और जीविका के साधनों में पर्याप्त विस्तार हो गया। (4) वैदिक साहित्य उस समाज का चित्रण है जिसमें आर्य और दस्यु, विजेता तथा विजित इन दो वर्गों की ही सत्ता थी; संस्कृत का साहित्य चातुर्वर्ण्य का साहित्य है, जिसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र के अधिकारों का अलग-अलग निर्धारण कर दिया गया था, तथा ये परस्पर सामंजस्य के साथ अपना जीवन बिताते थे। (5) वैदिक साहित्य कल्पना तथा भावना के विशुद्ध रूप पर आश्रित होने वाला साहित्य है, जहाँ कल्पना नैसर्गिक रूप में प्रवाहित होकर हृदय के भावों का अनाविल रूप चित्रित करती है; संस्कृत का साहित्य कलात्मक साहित्य है, जिसमें कला और शास्त्र का, प्रतिभा तथा व्युत्पत्ति का मौलिक कल्पना और शास्त्र-नैपुण्य का संमिश्रण रचना का मुख्य आधार है

बोध प्रश्न-

1. अलौकिक परिहार वतलाने वाले ग्रन्थों को कहते है।

(क) पुराण **(ख)** साहित्य

(ग) ब्राह्मण **(घ)** वेद

2. ऋक का अर्थ विषय है।

(क)शस्त्र **(ख)** अस्त्र

(ग) ज्ञान **(घ)** बुद्धि

3. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

(क) शतपथ ब्राह्मण के विख्यात भाष्यकार.....थें

(ख) तैत्तिरीय संहिता पर वृत्ति.....ने बाई थी।

(ग) वैदिक साहित्य मुख्यतया.....साहित्य है।

4. निचे दिये हुए वाक्यों में सही वाक्य के सामने (√) सही का निशान तथा गलत के सामने (×) गलत का निशान बनाए।

(क) साम संहिता के प्रथम भाष्यर माधव है। ( )

(ख) लौकिक साहित्य के नियामक तथा शोधक पाणिनी है। ( )

3.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आपने वेद के नामकरण तथा उनके अस्तित्व को जाना। वेद के विभाजन तथा उनकी संहिता के बारे विस्तृत अध्ययन किया साथ ही वेदों के प्रमुख भाष्यकारों का यथोचित अध्ययन किया। यहाँ यह जानना अतिआवश्यक है कि क्या वैदिक साहित्य का ही रूप लौकिक साहित्य है अथवा इनमें कुछ पार्थक्य भी है इसलिये इनके विषय में इस इकाई के माध्यम से विस्तृत चर्चा कि गई है।

वेद स्वयं अपौरूषेय है जिसकी उत्पत्ति स्वयं ब्रह्मा द्वारा माना गया है। अतः इसके विषय में ज्ञान प्राप्त करना ही एक महान कार्य है परन्तु इस इकाई के माध्यम से मुख्य वैदिक संहिता, उनके भाष्यकार, ब्राह्मण ग्रन्थों का स्वरूप तथा वैदिक एवं लौकिक साहित्य के मध्यान्तर का विस्तृत रूप अपने अन्तर्मन में उतार सकेंगे।

3.8 पारिभाषिक शब्दावली

(1) परिहार	-	छोड़ देना
(2) अपौरुशेय	-	जोपुरुष के द्वारा उत्पन्न हो
(3) नामोल्लेख	-	नाम का उल्लेख
(4) तन्नियोजित	-	जिसके लिये नियोजित
(5) अन्तस्तत्व	-	अन्दर के तत्व
(6)अध्ययनोपरान्त	-	अध्ययन के उपरान्त
(7) यथोचित	-	जैसा उचित हो

3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

(1) (घ) **(2)** (क) (3) (क) स्कन्दस्वामी (ख) कुण्डिन (ग) धर्म प्रधान

(4) (क) (√) (ख) (√)

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(1) आचार्य वलदेव उपाध्याय-वैदिक साहित्य एवं संस्कृति

(2) संस्कृत वाड्.मय का वृहद् साहित्य (वेदखण्ड)-पद्मभूशण आचार्य श्री वलदेव उपाध्याय

3.11 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

(1) वेद भाष्य भूमिका-संग्रह

(2) आचार्य शायण और माधव-आचार्य वलदेव उपाध्याय

(3) भाव्य भूमिका-स्कन्द स्वामी

3.12 निबन्धात्मक प्रश्न

(1) वैदिक संहिताओं का परिचयात्मक रूप प्रस्तुत किजिए।

(2) प्रमुख भाष्यकारों का परिचय बताते हुए उनके द्वारा कृत वेदभाश्यों को प्रस्तुत किजिए।

खण्ड- दो (Section-B)
आरण्यक एवं उपनिषद्

इकाई-1 आरण्यक का अर्थ, परिचय एवं वर्ण्य विषय

इकाई की रुपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 आरण्यक का अर्थ एवं परिचय
1.4 आरण्यकों के वर्ण्य विषय
1.5 सारांश
1.6 पारिभाषिक शब्दावली
1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

बी0 ए0 (VAC- 01) खण्ड द्वितीय से सम्बन्धित यह प्रथम इकाई है। इससे पूर्व की इकाई में आपने वेद-वेदांग एवं संहिता का परिचय प्राप्त किया। इस इकाई में आरण्यक का अर्थ, परिचय एवं वर्ण्य विषय का वर्णन किया गया हैं। प्रस्तुत खण्ड आरण्यकों का स्वरूप एवं प्रतिपाद्य विषय आपके अध्ययनार्थ प्रस्तुत है।

ऋषि परम्परा ने आरण्यक और ब्रह्मचर्य धारण कर जिस गम्भीर चिन्तनपूर्ण विद्या का उपार्जन या अध्यन किया जाता है उसी को आरण्यक कहते हैं। किन्तु आचार्य सायण ने कहा है कि जंगल में रहते वानप्रस्थी जिन यज्ञादि कार्य को करते थे, उन्हीं का वर्णन करने वाले ग्रन्थों को आरण्यक कहते है अथवा आरण्यक को पढ़ाये जाने के योग्य होना भी आरण्यक कहला सकता है। सभी आरण्यक ब्राह्मण ग्रन्थों के परिशिष्ट हैं। इनका प्रतिपाद्य ब्रह्माविद्या का विवेचन तथा यज्ञ का गूढ़ रहस्य बतलाना रहा है। इसके अतिरिक्त प्राणविद्या का विवेचन अराण्यकों का विशिष्ट विवेचन रहा है। अतः प्रस्तुत इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप उपासना का उचित स्थान, गृहस्थों के लिए विहित कर्मकाण्डों एवं आदिदैविक रूप को समझाते हुए ज्ञान एवं कर्म के समुच्चय को बता सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप—

- आरण्यक साहित्य की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- आरण्यकों के वर्ण्य विषय की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- आरण्यक शब्द और अर्थ एवं महत्ता का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- आरण्यकों का परिचय जान सकेंगे।
- वैदिक वाङ्मयानुसार उपलब्ध आरण्यकों की संख्या जान सकेंगे।
- वेदों से सम्बन्धित आरण्यकों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- आरण्यक के प्रतिपाद्य विषय की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

1.3 आरण्यक का अर्थ एवं परिचय

ऋषियों ने जनशून्य अरण्य में ब्रह्मचर्य में रत होकर जिस और गम्भीरचिन्तन-पूर्ण विद्याका अध्ययन किया, उसी विद्या को 'आरण्यक' कहते हैं। अरण्य का अर्थ है- 'जंगल', तो आरण्यक का सामान्य अर्थ हुआ 'अरण्य सम्बन्धी' अर्थात् गूढ़ और रहस्यात्मक विषयों को समझने के लिए एकान्त की आवश्यकता होती है। सबसे ज्यादा एकान्त वनों में ही प्राप्त होता है। अतः जिन ग्रन्थों का अध्ययन अरण्यों में किया गया उन्हें आरण्यक कहा गया । आरण्यक ब्राह्मण ग्रन्थों के परिशिष्ट हैं। आरण्यकों का वर्ण्य विषय आध्यात्मवादी, रहस्यवादी, दार्शनिक, और प्रतीकवादी वर्णन करना है । आरण्यकों में यज्ञ की आध्यात्मिक व्याख्या की गई है, जबकि ब्राह्मणों में यज्ञ के

स्थूल रूप पर विचार किया गया है।आरण्यक ग्रन्थ ब्राह्मण व उपनिषदों को जोड़ने वाले सेतु हैं। सायण ने ऐतरेय ब्राह्मण के भाष्य में लिखा है कि ''एकान्त अरण्य में रहने वाले वानप्रस्थ जिन यज्ञादिकों को करते थे, उनको बताने वाले ग्रन्थों को 'आरण्यक'' कहते हैं। इसी प्रकार उन्होंने ऐतरेय-आरण्यक भाष्य में कहा है कि ''आरण्य में पढ़ाये जाने के योग्य होने के कारण इसे 'आरण्यक' कहते हैं।'' **अरण्य एवं पाठ्यत्वादारण्यक मितीर्यते। (ऐतरेय आरण्यक, सायणभाष्य)** तैत्तिरीयारण्यक के भाष्य में भी सायण ने कहा है कि स''जिस विद्या को अरण्य में पढ़ा या पढ़ाया जाय, उसे 'आरण्यक' कहते हैं।'' **अरण्याध्ययनादेतदारण्यक मितीर्यते।अरण्ये तदधीयीतेत्येवं वाक्यं प्रचक्ष्यते।। (**तैत्तिरीयाण्यक, सायणभाष्य, श्लोक 6) इस प्रकार आरण्यकों के अध्ययन, मनन एवं चिन्तन के लिए अरण्यक का एकान्त शान्त वातावरण ही उपयुक्त समझा जाता था। ग्राम्य का वातावरण उसके लिए कथमपि उपयुक्त नहीं था। ओलडनबर्ग का कथन है कि ''आरण्यक ग्रन्थ वे हैं, जिनका प्रतिपाद्य विषय सूक्ष्म अध्यात्मवाद होने के कारण वे गुरु द्वारा अरण्य के एकान्त में ही अधिकारी शिष्य को दिये जा सकते थे। नगर का वातावरण आरण्यकों में प्रतिपादित गूढ़ विद्या की प्राप्ति के लिए योग्य नहीं समझा जाता था। संस्कृत साहित्य का इतिहास (मैक्डॉनल), पृ0 190 आरण्यकों को रहस्य ग्रन्थ भी कहते हैं क्योंकि आरण्यक यज्ञ के गूढ़ रहस्यों का प्रतिपादन करते हैं, आध्यात्मिक तथ्यों की यथार्थ मीमांसा करते हैं, ब्रह्मविद्या का अभिधान करते हैं।

वैदिक वाङ्मय के अनुसार आरण्यक ब्राह्मण ग्रन्थों एवं उपनिषदों को जोड़ने वाली कड़ी है। संहिताओं के अन्तिम भाग ब्राह्मण ग्रन्थ हैं और इनमें यज्ञों के दार्शनिक और आध्यात्मिक पक्ष का जो अंकुरण हुआ है, उसका पल्लवित रूप आरण्क ग्रन्थ हैं। इनमें उस विषय का और विस्तृत विवेचन हुआ है। इसका ही सुविस्तृत रूप उपनिषद् हैं। वेद की जितनी शाखायें शास्त्रों में निर्दिष्ट हैं वे सभी प्राप्त नही होती हैं, परन्तु जो शाखा प्राप्य हैं उनका अवगाहन करने पर कतिपय शाखागत ही आरण्यक ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं।

अरण्य शब्द से अष्टाध्यायी सूत्र संख्या 4.3.53 इस सूत्र से भव अर्थ मे ठक् प्रत्यय होने पर आरण्यक शब्द निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ अरण्य (वन, जंगल) में होने वाला तत्त्व है। अभिप्राय यह है कि अरण्य में होने वाला अध्ययन, मनन, चिन्तन, शास्त्रीय चर्चा, आत्मविद्या, तत्त्वचिन्तन, रहस्यात्मक और आध्यात्मिक विवेचन आरण्यक शब्द से गृहीत है। निरुक्त के टीकाकार दुर्गाचार्य ने भी आरण्यकों को "रहस्य" कहा है- (निरुक्त.भाष्य 1.4) आरण्यकों में यज्ञ का गूढ रहस्य और ब्रह्मविद्या का प्रतिपादन है, अतः इन्हें "रहस्य" कहा जाता है। महषि व्यास जी ने आरण्यक के महत्त्व का प्रतिपादन इस प्रकार किया है—**नवनीतं यथा दध्नो मलयाच्चन्दनं यथा। आरण्यं च वेदेभ्य ओषधिभ्योऽमृतं यथा।।** जैसे दही से मक्खन, मलयपर्वत से चन्दन और ओषधियों से अमृत प्राप्त होता है, वैसे ही वेदों से सार अंश रूप आरण्यक प्राप्त हुए हैं। इनमें यज्ञ के गूढ रहस्यों का उद्घाटन किया गया है। इनमें मुख्य रूप से आत्मविद्या और रहस्यात्मक विषयों के विवरण हैं।

आरण्यकों का उद्भव—

वैदिक संहिताओं के पश्चात् क्रम में ब्राह्मण ग्रन्थ आते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों के बाद आरण्यक ग्रन्थ आते हैं और उसके बाद उपनिषद्। आरण्यक, ब्राह्मण ग्रन्थों के पूरक हैं। एक ओर आरण्यक ब्राह्मणों के परिशिष्ट के रूप में हैं तो दूसरी ओर उपनिषद् आरण्यकों के अंश हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि आरण्यकों का प्रारम्भिक भाग ब्राह्मण हैं और अन्तिम भाग उपनिषद् हैं। ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् इतने मिश्रित हैं कि उनके मध्य किसी प्रकार की सीमा रेखा खींचना अत्यन्त कठिन है। वेदों और ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञों का विस्तृत वर्णन है। आरण्यकों के उद्भव पर एक दो तर्कपूर्ण मतों पर भी विचार करना चाहिए। कुछ पाश्चात्य मतों के अनुसार यह कह सकते हैं कि ब्राह्मण ग्रन्थों में वणित यज्ञविधि अत्यन्त कष्टसाध्य, दुर्बोध और नीरस होने के कारण अरुचिकर होती जा रही थी तथा इतना ही नहीं बल्कि इनके आयोजन के लिए अधिक धन की आवश्यकता होती थी। इन्हें केवल राजा और धनी व्यक्ति ही कर सकता था। अतः आत्मिक शान्ति के लिए आध्यात्म की आवश्यकता अनुभव की गई और स्थूल व्यमय यज्ञ से सूक्ष्म आध्यात्म.यज्ञ की ओर प्रवृत्ति हुई। दूसरे पक्ष पर यदि विचार करें तो आश्रम चतुष्टय नियमानुसार गृहस्थ ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास इनके चार भेद हैं और वेद के भी चार भाग हैं- संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद्। इनका क्रमशः वर्गीकरण करें तो ब्रह्मचर्याश्रम में वेदाध्ययनगत ब्राह्मण ग्रन्थ विहित कर्मकाण्डों के प्रतिपादन हेतु गृहस्थाश्रम है और वानप्रस्थाश्रमवासी के लिये आरण्यक ग्रन्थ तथा संन्यासाश्रम के लिये उपनिषद् हैं। वैदिक साहित्यानुसार यही पक्ष आरण्यकों के उद्भव और विकास पर सही प्रतीत होता है।

आरण्यकों के रचनाकार—

वैदिक ज्ञान राशि के अन्तर्गत आरण्यक ब्राह्मण ग्रन्थों का ही एक भाग है। इन ब्राह्मण ग्रन्थों के भी रचयिता भिन्न-भिन्न ऋषि हैं, अतः आरण्यकों के रचयिता ब्राह्मण के रचनाकार ही माने जाते हैं। कुछ आरण्यकों के रचनाकार इस प्रकार हैं- ऐतरेय ब्राह्मण के रचनाकार महिदास ऐतरेय हैं। वही ऐतरेय आरण्यक के भी रचनाकार हैं- ऐसा माना जाता है कि ऐतरेय आरण्यक के चतुर्थ आरण्यक के प्रवक्ता आश्वलायन और पञ्चम आरण्यक के प्रवक्ता शौनक ऋषि हैं। आचार्य सायण ने भी ऐतरेय आरण्यक के भाष्य में अपना यही मत प्रकट किया है, सायण ने लिखा है कि शांखायनारण्यक के प्रवक्ता 'गुण शांखायन' हैं। इनके गुरु का नाम कहोल कौषीतकि था। बृहदारण्यक के प्रवक्ता महषि याज्ञवल्क्य हैं। ये सम्पूर्ण शतपथ ब्राह्मण के भी प्रवक्ता हैं। शतपथ ब्राह्मण का अन्तिम भाग बृहदारण्यक है। कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीयारण्यक के प्रवक्ता कठ ऋषि हैं। मैत्रायणी आरण्यक भी कृष्ण यजुर्वेदीय है। इसके प्रवक्ता भी कठ ऋषि ही हैं, क्योंकि मैत्रायणीयों की गणना 12 कठों के अन्तर्गत होती है। तवलकार आरण्यक जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण ही है। इसके प्रवक्ता आचार्य

जैमिनि ही हैं। अतः इसी प्रकार और भी आरण्यकों के रचयिता सन्दर्भ को ग्रहण करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

निम्नलिखित में सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिए–

1. ऐतरेय आरण्यक किसका परिशिष्ट है।

क-उपनिषद्

ख-ब्रह्मविद्या

ग- ऐतरेय ब्राह्मण

घ-इनमें से कोई नहीं

2. मोक्षप्रदान टीका के रचयिता हैं।

क- राधाकृष्णन

ख- कीथ

ग- षडगुरुशिष्य

घ- महर्षि

3. ऐतरेय आरण्यक में कितने भाग हैं।

क- 4

ख- 7

ग- 3

घ- 5

4- ऐतरेय आरण्यक में अध्यायों की संख्या है।

क- 13

ख- 15

ग- 17

घ- 18

5- शांखायन आरण्यक किस वेद का है।

क- ऋग्वेद

ख- यजुर्वेद

ग- सामवेद

घ- अथर्ववेद

6- शुक्लयजुर्वेद का आरण्यक है।

क- शांखयन

ख- कौषतकी

ग- तैतिरीय आरण्यक

घ- इनमें से कोई नहीं

7- याज्ञवल्क्य जनक संवाद किसमें वर्णित है।

क- वृहदारण्यक

ख- यजुर्वेद

ग- तैतिरीय आरण्यक

घ- ऐतरेय

8-तैतिरीय आरण्यक किस वेद का है।

क- शुक्ल यजुर्वेद

ख- कृष्ण यजुर्वेद

ग- अथर्ववेद

घ- सामवेद

9.तवल्कार आरण्यक किस वेद से है।

क-सामवेद

ख- ऋग्वेद

ग- यजुर्वेद

घ- अथर्ववेद

1.4 आरण्यकों के वर्ण्य विषय

आरण्यक ब्राह्मण-ग्रन्थों के ही परिशिष्ट भाग हैं, किन्तु ब्राह्मणों से वैशिष्टय दिखाने के लिए इसे 'रहस्य' भी कहते हैं, क्योंकि इसका स्वरूप रहस्यमय है । इसका अध्ययन-अध्यापन अरण्य में ही होता था, इसलिए इसे 'आरण्यक'कहते हैं। आरण्यकों का मुख्य विषय ब्रह्म-विद्या का विवेचन तथा यज्ञों के गूढ़ रहस्य का प्रतिपादन करना है। आरण्यकों में यज्ञों के आध्यात्मिक एवं तात्त्विक स्वरूप का विवेचन किया गया है। आरण्यकों के अनुसार यह जगत् यज्ञमय है और यज्ञ ही समस्त विश्व का नियन्ता है। प्राणविद्या का विवेचन ही आरण्यकों का विशिष्ट विशय है। इसके अध्ययन एवं उपासना के लिए अरण्य का एकान्त शान्त स्थान ही उपादेय समझा जाता था। आरण्यकों के अनुसार प्राण ही समस्त विश्व का आधार है। यह सारा जगत् प्राण से ही आवृत्त है। संसार के समस्त प्राणी प्राण के द्वारा ही विधृत हैं। ऐतरेय आरण्यक 2/1/6 आरण्यकों में वर्णाश्रम धर्म का पूर्ण विकास देखा जाता है। डॉ राधाकृष्णन् का कथन है कि ''गृहस्थों के लिए विहित कर्मकाण्डों का विवेचना ब्राह्मण ग्रन्थों में है और वानप्रस्थों के लिए चिन्तन और मनन के विषय आरण्यकों में पाये जाते हैं। 'भारतीय दर्शन (राधाकृष्णन्) मुख्यतः इनमें आध्यात्मिक तत्त्वों का विवेचन है और आधिदैविक रूप का विवरण भी। इनमें ज्ञान और कर्म दोनों का समुच्चय है जिनका विकास उपनिषदों में देखा जाता है।

आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार, आरण्यक यज्ञ के गूढ़ रहस्य का प्रतिपादन करते हैं। 'रहस्य' शब्द से अभिहित की जाने वाली ब्रह्मविद्या की भी इसमें सत्ता है। आरण्यकों का मुख्य

प्रतिपाद्य विषय प्राणविद्या तथा प्रतीकापासना है। वे प्राणविद्या को अपनी अनोखी सूझ नहीं बतलाते, प्रत्युत ऋग्वेद के मन्त्रों को अपनी पुष्टि में उदधृत करते हैं, जिनमें प्राणविद्या की दीर्घकालीन परम्परा का इतिहास मिलता है। उपनिषदों के समान आरण्यक–ग्रन्थ भी एक ही मूलसत्ता को मानते हैं, जिसका विकास इस सृष्टि के रूप में हुआ है। विभिन्न वस्तुओं में एक ही तत्त्व कैसे अनुस्यूत है, इसका निरूपण ऐतरेयारण्यक में इस प्रकार से हुआ है—

"एतं ह्येव बह्वृचा महत्युक्थे मीमांसन्त एतमग्नावध्वर्यव एतं महाव्रते छन्दोगा एतमस्यामेतं दिव्येतं वायावेतमाकाश एतमप्स्वेतमोषधीष्वेतं वनस्पतिष्वेतं चन्द्रमस्येतं नक्षत्रेष्वेतं सर्वेषु भूतेष्वेतमेव ब्रह्म इत्याचक्षते।"

ऐतरेय आरण्यक—

ऐतरेय आरण्यक ऐतरेय ब्राह्मण का ही परिशिष्ट भाग है। सत्यव्रत सामश्रमी ने 1876 ई0 में सायण भाष्य के साथ इसका प्रकाशन किया था। तदनन्तर 1909 ई0 में ए0बी0 कीथ ने अंग्रेजी अनुवाद के प्रकसान किया था। षड्गुरुशिष्य ने इस पर 'मोक्षप्रदा' टीका लिखी थी, किन्तु वह अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है।

ऐतरेय आरण्यक में पाँच भाग हैं, जिन्हें आरण्यक कहा ।जाता है प्रथम आरण्यक में पाँच अध्याय, द्वितीय में सात, तृतीय में दो ,चतुर्थ में एक और पञ्चम आरण्यक में तीन अध्याय हैं। इस प्रकार कुल अठारह अध्याय हैं। इस आरण्यक के प्रथम आरण्यक में महाव्रत का विवेचन है, जो ऐतरेय ब्राह्मण 'गवामयन' का ही एक अंश है। द्वितीय आरण्यक के प्रथम तीन अध्यायों में उक्थ,प्राण,विद्या और पुरूष का वर्णन है। चार से लेकर छः अध्यायों में ऐतरेय उपनिषद् है। तृतीय आरण्यक संहितोपनिषद् है, जिसमें संहिता, क्रम एवं पद पाठों का तथा स्वर-व्यञ्जन आदि के स्वरूप का विवेचन है। इसमें निर्भुज (संहिता), प्रतृष्ण (पद), सन्धि, संहिता आदि पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हुआ है। चतुर्थ आरण्यक अत्यन्त छोटा है। इसमें महाव्रत के पाँचवें दिन में प्रयुक्त होने वाली कुछ महानाम्नी ऋचाएँ संकलित की गयी हैं। पञ्चम् आरण्यक् में महाव्रत के माध्यन्दिन सवन में पढ़े जाने 'निष्कैवल्यशास्त्र' का विवेचन है। ऐतरेय आरण्यक् के प्रथम तीन आरण्यकों के प्रणेता महिदास ऐतरेय, चतुर्थ के आश्वनायन और पंचम के शौनक है।

ऐतेरेय–आरण्यक का यह विशिष्ट प्रतिपाद्य है। तदनुसार प्राण इस विश्व का धारक है, प्राण की शक्ति से जैसे यह आकाश अपने स्थान पर स्थित है, उसी प्रकार सर्वोच्च प्राणी से लेकर चींटी तक समस्त प्राणी इसी प्राण के द्वारा प्रतिष्ठित हैं–'सोऽयमाकाशः प्राणेन बृहत्या विष्टबधः, तद्यथायमाकाशः प्राणेन बृहत्या, विष्टब्ध एवं सर्वाणि भूतान्यापिपीलिकाभ्यः प्राणेन बृहत्या विष्टब्धानीत्येवं विद्यात्' प्राण ही आयु का कारण है, कौषीतकि–उपनिषद् से भी इसकी पुष्टि होती है–'यावद्ध्यस्मिन् शरीरे प्राणो वसति तावदायुः।' इसीलिस जैसे पुत्र अपने सत्कर्मों से पिता की सेवा करता है, उसी प्रकार अन्तरिक्ष और वायु भी प्राण की सेवा में संलग्न रहते हैं–

प्राणेन स्रष्टावन्तरिक्षं च वायुश्च। अन्तरिक्षं वा अनुचरन्ति अन्तरिक्षमनुश्रृण्वन्ति। वायुरस्मै पुण्यं गन्धमावहति। एवमेतौ प्राणंपतरं परिचरतोऽन्तरिक्षं च वायुश्'।

सभी ऋचाएँ, यहाँ तक की सभी वेद और ध्वनियाँ प्राण में ही सन्निहित हैं— **'ता वा एताः सर्वा ऋचः सर्वे घोषाः एकैव व्याहतिः प्राण एव प्राण ऋच इत्येवं विद्यात्'।** प्राण के विभिन्न रूपों के ध्यान से ध्याता को विभिन्न फलों की प्राप्ति होती है। अहोरात्र के रूप में प्राण कालात्मक है। प्रातःकाल प्राण का प्रसरण दिखलाई पड़ता है। सायंकाल इन्द्रियों में जो संकोच आता है, वह प्राण के कारण ही है। हिरण्यदन नामक ऋषि ने प्राण की देवात्मक रूप में उपासना की थी। ऐतरेय आरण्यक में ही प्राणों की ऋषिरूप में भी उपासना निर्दिष्ट है। गृत्समद, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि, भारद्वाज, वसिष्ठ प्रभृति सभी ऋषि प्राण ही हैं। 'गृत्समद' नाम में विद्यमान 'गृत्स' और 'मद' का, इस सन्दर्भ में पृथक–पृथक् निर्वचन करते हुए कहा गया है कि शयन ही के समय वाक्, चक्षु इत्यादि इन्द्रियों के निगरण करने के कारण 'गृत्स' है और रीति–क्रिया के समय वीर्यस्लखन रूप 'मद' को उत्पन्न करने के कारण 'मद' कहलाता है। इस प्रकार 'गृत्समद' का तात्पर्य है प्राण और अपान का संयोग। प्राण ही विश्वामित्र है, क्योंकि समस्त विश्व इस प्राण देवता का भोग्य होने के कारण मित्र है–'विश्वः मित्रं यस्य असौ विश्वामित्रः।' 'वामदेव' नामगत 'वाम' शब्द प्राण की वन्दनीया, भजनीयता और सेवानीयता का द्योक है। समस्त विश्व को पाप से बचाने के कारण अत्रि भी प्राण ही है–'सर्व पाप्मनोऽत्रायत इति अत्रिः।' 'भरद्वाज' के सन्दर्भ में कहा गया है कि गति सम्पन्न होने से मनुष्य देह 'वाज' है और प्राण इस शरीर में प्रवेश करके निरन्तर उसका भरण करता है। 'वसिष्ठ' भी प्राण ही है, क्योंकि इस शरीर में इन्द्रियों के निवास करने का कारण प्राण ही है। इस प्रकार, ऋषि–भावना से प्राणोपासना का निर्देश आरण्यकों में अन्त्यन्त विस्तार से उपलबध होता है। मैत्रायणी–आरण्यक में प्राण, अग्नि और परमात्मा शब्दों को समानार्थक बतलाया गया है– **'प्राणोऽग्निः परमात्मा'।**

ऐतिहासिक सन्दर्भों में उपादेय अनेक तथ्यों का परिज्ञान भी आरण्यकों से होता है। तदनुसार यज्ञोपवीत का सर्वप्रथम उल्लेख तैत्तिरीय आरण्यक में है। वहाँ कहा गया है कि यज्ञोपवीत–धारण करके जो व्यक्ति यज्ञानुष्ठान करता है, उसका यज्ञ भलीभाँति स्वीकार किया जाता है–ऐसा यज्ञोपवीतधारी व्यक्ति जो कुछ भी पढ़ता है, वह यज्ञ ही है। 'श्रमण' शब्द का प्रयोग तैत्तिरीय आरण्यक में तपस्वी के अर्थ में हुआ है। कालान्तर से, बौद्ध काल में, यह शब्द बौद्धभिक्षुओं का ज्ञापक बन गया। इसी आरण्यक में एक सहस्र धुरों वाले, बहुसंख्यक चक्रों वाले तथा सहस्र अश्वों वाले एक विलक्षण रथ का वर्णन है। काण्वशाखीय बृहदारण्यक में सन्न्यास का विधान स्पष्ट शब्दों में है। कहा गया है कि आत्मा का ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् ही कोई मुनि होता है। इसी ब्रह्मलोक की इच्छा से संन्यासी सन्न्यास धारण करते हैं।

शांखायन आरण्यक—

ऋग्वेद का दूसरा आरण्यक शांखायन आरण्यक है, जिसे 'कौषीतकि आरण्यक' भी कहते हैं। सन् 1922 ई0 में श्री धर पाठक ने सम्पूर्ण शांखायन ब्राह्मण को प्रकाशित किया है। इसमें कुल पन्द्रह अध्याय और 137 खण्ड हैं। इसके प्रथम दो अध्यायों को ब्राह्मण का भाग माना जाता है। तीन से लेकर छः अध्याय तक 'कौषीतकि उपनिषद्' कहा जाता है। इसका वर्ण्य

विशय सामान्यतः ऐतरेय आरण्य के समान ही है। इसके षष्ठ अध्याय में कुरुक्षेत्र, मत्स्य, उशीनर,काशी, पाञ्चाल, विदेह आदि प्रदेशों का उल्लेख है। त्रयोदश अध्याय में उपनिषदों से अनेक उद्धरण लिये गए हैं। इसमें महाव्रत आदि कृत्यों का विवेचन किया गया है।

वृहदारण्यक—

शुक्लयजुर्वेद के शतपथ ब्राह्मण की माध्यन्दिन और काण्व शाखों के अन्तिम छः अध्यायों को 'बृहदारण्यक' कहते हैं। इसका प्रकाशन 1889 ई0 में ओटो वोहट्लिङ्क ने किया था। इसमें आरण्यक और उपनिषद् दोनों का मिश्रण है। इसमें बीच-बीच में यज्ञों का रहस्य वर्णन किया गया है, अतःइसे 'आरण्यक' कहते हैं, किन्तु इसमें आत्मतत्त्व का विस्तृत उपदेश दिया गया है, इसमें आरण्यक् उपनिषद् का अधिक वर्णन होने के कारण इसे 'उपनिषद्' भी कहते हैं। इस प्रकार इसका नाम 'बृहदारण्यकोपनिषद्' भी है। माध्यन्दिन और काण्व दोनों ही शाखाओं के बृहदारण्यकों में याज्ञवल्क्य और जनक का सम्वाद तथा मैत्रेयी एवं गार्गी दोनों ब्रह्मवादिनी नारियों का आख्यान वर्णित है। प्रथम अध्याय में अश्वमेध यज्ञ का रहस्य समझाया गया है।

तैत्तिरीय आरण्यक—

कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा का आरण्यक 'तैत्तिरीय आरण्यक' है। राजेन्द्रलाल मिश्र ने 1872 ई0 में सायण भाष्य के साथ इसे प्रकाशित किया था। 1898 ई0 में एच्0एन्0 आप्टे ने इसका दूसरा संस्करण निकाला। इसमें कुल दस प्रपाठक या परिच्छेद हैं। प्रत्येक प्रपाठक में कई अनुवाक हैं। अनुवाकों की संख्या कुल 170 है। सप्तम से लेकर नवम प्रपाठक तक को 'तैत्तिरीयोपनिषद्' कहते हैं और दशम प्रपाठक को 'महानारायणीयोपनिषद्' कहा जाता है, जिसे तैत्तिरीय आरण्यक का परिशिष्ट माना जाता है। तैत्तिरीय आरण्यक के प्रथम प्रपाठक में अग्नि की उपासना और इष्ट का चयन वर्णन है। द्वितीय प्रपाठक में स्वाध्याय तथा पञ्च महायज्ञों का वर्णन किया गया है। तृतीय प्रपाठक में चतुर्होम चिति के उपयोगी मन्त्रों का वर्णन है। चतुर्थ प्रपाठक में प्रवर्ग्य के उपयोगी मन्त्रों का वर्णन है और इसी में अनेक अभिचारपरक मन्त्र भी वर्णित हैं। पञ्चम प्रपाठक में यज्ञीय संकेत प्राप्त होते हैं। षष्ठ प्रपाठक में पितृमेध सम्बन्धी मन्त्रों का वर्णन है। इसके अनेक मन्त्र ऋग्वेद से संगृहीतहैं । सप्तम से नवम तक 'तैत्तिरीयोपनिषद्' है। दशम प्रपाठक महानारायणीयोपनिषद् है, जिसे खिल कहते हैं। तैत्तिरीय आरण्यक में कुरुक्षेत्र, खण्डव, पाञ्चाल, मत्स्य,काशी आदि भौगोलिक नामों का उल्लेख है। इसमें 'श्रमण' शब्द का प्रयोग तपस्वी के अर्थ में किया गया है। बौद्ध भिक्षु के अर्थ में इसका प्रयोग करते हैं। इसमें यज्ञोपवीत का प्रथम उल्लेख मिलता है। यज्ञोपवीतधारी व्यक्ति के द्वारा किया गया यज्ञ ही स्वीकार किया जाता है और यज्ञोपवीतधारी जो कुछ अध्ययन करता है, वह सब यज्ञ ही है। **प्रसृतो ह वै यज्ञोपवीतिनो यज्ञः। यत् किञ्च ब्राह्मणो यज्ञोपवीत्यधीते यजत एव तत्** (तैत्तिरीयारण्यक 2/1/1) तैत्तिरीय आरण्यक में जल के चार रूप बतलाये गये हैं - मेघ, वद्युत्, गर्जन और वृष्टि तथा जल के छः प्रकार बताये गये हैं-वृष्टि का जल, कूपजल, तड़ागजल, नद्यादिजल, पात्रजल और झरने का जल। **चत्वारि वा अपां रूपाणि - मेघो विद्युत् स्तनायित्नवृष्टिः।** तैत्तिरीयारण्यक

1/24/18.तैत्तिरीयारण्यक 1/24/1-2 इस आरण्यक में एक ऐसे रथ का वर्णन है कि जिसमें एक हजार धुरे और कई चक्र हैं। इस रथ में एक हजार घोड़े जुतते हैं। **सहस्रन्धुरं परश्चक्र सहस्राश्व** (वही 1/31/1) इसमें कश्यप को सर्वदर्शक कहा गया है और व्यास पाराशर्य का उल्लेख मिलता है।

तैत्तिरीय—

आरण्यक में काल का निदर्शन बहुत सुन्दरता से किया गया है। काल निरन्तर प्रवाहमान है। अखण्ड संवत्सर के रूप में हम इसी पारमार्थिक काल के दर्शन करते हैं। व्यावहारिक काल अनेक तथा अनित्य है। व्यवहार की दृष्टि से उसके अनेक भाग मुहूर्त्त, दिन, रात, पक्ष, मास इत्यादि रूपों में किए जाने पर भी वस्तुतः वह एकरूप अथवा एकाकार ही रहता है। इस सन्दर्भ में नदी का दृष्तान्त दिया गया है, जो अक्षय्य स्रोत से प्रवाहित होती है, जिसे नाना सहायक नदियाँ आकर पुष्ट बनाती हैं, तथा जो विस्तीर्ण होकर भी नहीं सूखती हैं। यही स्थिति काल के सन्दर्भ में संवत्सर की है–

नदीव प्रभवात् काचिदक्षय्यात् स्यन्दते यथा।
तां नद्योऽभिसमायान्ति सोरुः सती न निवर्तते।।
एवं नाना समुत्थानाः कालाः संवत्सरं श्रिताः। प्राणविद्या के महत्त्व का निरूपण आरण्यकों में विशेष रूप से है।

मैत्रायणी आरण्यक—

कृष्णयजुर्वेद की मैत्रायणी शाखा का 'मैत्रायणी आरण्यक' है। इसे ही 'मैत्रायणी उपनिषद्' कहा जाता है। इसमें सात प्रपाठक हैं। पांचवें प्रपाठक से 'कैत्सायनी स्तोत्र' का प्रारम्भ होता है। इसमें आरण्यक और उपनिषद् दोनों के अंश मिश्रित हैं। इसमें परमात्मा को अग्नि और प्राण कहा गया है। इसमें अश्वपति, हरिश्चन्द्र, अम्बरीश, शर्याति, ययाति, युवनाश्व आदि राजाओं का उल्लेख है।

तवल्कार आरण्यक—

सामवेद की जैमिनीय शाखा से सम्बद्ध आरण्यक 'तवल्कार आरण्यक' है। इसी को जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण' भी कहते हैं। उसका प्रथम प्रकाश 1931 ई0 में एच् अर्टल ने किया था। इसमें चार अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में कई अनुवाक या खण्ड हैं। इसमें साम-मंत्रों की सुन्दर व्याख्या की है। इस आरण्यक के चतुर्थ अध्याय को 'केनोपनिषद्' कहते हैं। इसका दूसराम 'तवल्कार उपनिशद्' भी है।

छान्दोग्यारण्यक—

यह सामवेद के ताण्ड्यब्राह्मण से सम्बद्ध आरण्यक है। सत्यव्रत सामश्रमी ने 1878 ई0 में 'सामवेदर आरण्यक-संहिता' नाम से इस प्रकाशित किया था। छान्दोग्योपनिषद् का प्रथम भाग छान्दोग्यारण्यक है। इसमें 'समान्' और 'उद्गीथ' की धार्मिक दृष्टि से व्याख्या की गई है।

1.5 सारांश

इस इकाई में आपने अध्ययन किया कि अरण्य में प्राप्त की जाने वाली विद्या, किए जाने वाले यज्ञादि कर्म तथा ब्रह्मविद्या के स्वरूप का विवेचन करने वाले ग्रन्थों को आरण्यक कहा गया है।

आरण्यक ब्राह्मण ग्रन्थ एवं उपनिषद् को जोड़ने वाली कड़ी है। संहिताओं का अन्तिम भाग ब्राह्मण ग्रन्थ हैं और इनमें यज्ञों के दार्शनिक और आध्यात्मिक पक्ष का जो अंकुरण हुआ है, अरण्य में इसका पठन-पाठन होने के कारण इसे आरण्यक कहते हैं। आरण्यकों में आत्मविद्या, तत्त्वचिन्तन और रहस्यात्मक विषयों का वर्णन है। प्राणविद्या के अतिरिक्त प्रतीकोपासना, ब्रह्मविद्या, आध्यात्मिकता का वर्णन करने से आरण्यकों की विशेष महत्ता है। वैदिक संहिताओं के पश्चात् क्रम में ब्राह्मण ग्रन्थ आते हैं। ब्राह्मणों के बाद आरण्यक आते हैं और उसके बाद उपनिषद्। आरण्यक, ब्राह्मण ग्रन्थों के पूरक हैं। एक ओर आरण्यक ब्राह्मणों के परिशिष्ट के रूप में हैं तो दूसरी ओर उपनिषद् आरण्यकों के अंश हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि आरण्यकों का प्रारम्भिक भाग ब्राह्मण हैं और अन्तिम भाग उपनिषद् है। ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् इतने मिश्रित हैं कि उनके मध्य किसी प्रकार की सीमा रेखा खींचना अत्यन्त कठिन है। वेदों और इन ब्राह्मण ग्रन्थों के रचयिता भिन्न-भिन्न ऋषि रहे हैं, अतः आरण्यकों के रचयिता ब्राह्मण के रचनाकार ही माने जाते हैं। आरण्यकों का प्रतिपाद्य विषय आत्मदर्शन, परमात्मदर्शन, आध्यात्मिक ज्ञान आदि हैं। आरण्यकों में यज्ञों का आध्यात्मिक और दार्शनिक पक्षों का विवेचन किया गया है। आरण्यक ग्रन्थों में प्राणविद्या की महिमा का विशेष प्रतिपादन किया गया है। महाव्रत का विवेचन प्राणविद्या और पुरुष का वर्णन ऐतरेय आरण्यक में प्रतिपाद्य है। शाखायन आरण्यक में मत्स्य, कुरुक्षेत्र, काशी, पांचाल, विदेह आदि प्रदेशों का उल्लेख किया गया है। फिर भी इसका वर्ण्य विषय ऐतरेय के ही समान है। वृहदारण्यक में आत्मतत्व का विस्तृत विवेचन प्राप्त है। इसकी शैली उपनिषद् शैली है। इसकी दो शाखाएँ माध्यन्दिन तथा काण्व में मैत्रेयी गार्गी के ही आख्यान और जनक याज्ञवल्क्य संवादों को निरूपित किया गया है। तैतरीय आरण्यक को महानारायण उपनिषद कहा जाता है। इसमें अग्नि की उपासना आदि का वर्णन है। इसी प्रकार मैत्रायणी आरण्यक में परमात्मा को अग्नि कहा गया है। इसमें हरिशचन्द्र अम्बरीक आदि राजाओं का उल्लेख है। तवल्कार व्याख्या और छान्दोग्य आरण्यक क्रमश: सामवेद से सम्बन्धित तथ्यों की व्याख्या करते हैं।

अत: इस इकाई का अध्ययन कर लेने के पश्चात् ब्रह्मविद्या, प्राणविद्या, गृहस्थ धर्म, वानपस्थ धर्म और ब्रम्हचर्य में रात होकर उपासना द्वारा विद्या प्राप्त करने की विधि को भली-भांति समझ सकेंगे।

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

प्राणविद्या - उपनिषदों व आरण्यकों में प्राणों गमनागमन तथा प्रकारों का अध्ययन बताने वाली विद्या प्राणविद्या कहलाती है।

वानप्रस्थ- गृहस्थाश्रम में निवास करने के पश्चात ब्रह्मविद्या की प्राप्ति हेतु जंगल में निवास करने को वानप्रस्थी कहा जाता है।

व्रयृत-फेला हुआ

प्रपाठक- यह मैत्रायणी आरण्यक का भाग है।

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ग	2.ग	3.घ	4.घ	5.क
6.ग	7.क	8.ख	9.क	

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वैदिक साहित्य का इतिहास – बलदेव उपाध्याय, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी, प्रकाशन 2009 ई. प्रथम संस्करण।
2. भारतीय दर्शन का इतिहास, डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर, प्रकाशन 1978 ई. प्रथम संस्करण।
3. वैदिक वाङ्मय का इतिहास भाग द्वितीय - आचार्य भगवद्दत्त , अनुसंधान विभाग डी.ए.वी कालेज लाहौर 1927 ई. प्रथम संस्करण।
4. वैदिक साहित्य और संस्कृति - आचार्य वाचस्पति गैरोला, संवतिका प्रकाशन प्रयागराज (इलाहाबाद) 1969 ई. प्रथम संस्करण।
5. ऐतरेय–आरण्यक, सायण–भाष्यसहित, आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली में, पूना से 1898 में प्रकाशित।
6. वैदिक साहित्य और संस्कृति, (पंचम संस्करण) पृष्ठ 234-35
7. वैदिक साहित्य और संस्कृति - पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा संस्थान रवीन्पुरी दुर्गाकुण्ड वाराणसी 1973 ई. प्रथम संस्करण।
8. वैदिक साहित्य एवं संस्कृति - आचार्य कपिलदेव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी 2000 ई.।
9. वैदिक साहित्य - पं. रामगोविन्द त्रिवेदी, भारतीय ज्ञानपीठ काशी 1950 ई. प्रथम संस्करण।

1.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. तैत्तिरीय–आरण्यक. 1.2
2. ऐतरेय आरण्यक, 2.1.6
3. ऐतरेय आरण्यक 2.1.7
4. वैदिक साहित्य - प्रो.किरीट जोशी, सान्दीपनि विद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन।
5. ऐतरेय–आरण्यक एक अध्ययन–डॉ. सुमनशर्मा, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली से सन् 1981 में प्रकाशित।

6. शांखायन–आरण्यक, सं. श्रीधरशास्त्री पाठक, आनन्दाश्रम, पूना से सन् 1922 में प्रकाशित।
7. तैत्तिरीयारण्यक, सायण–भाष्यसहित, आनन्दाश्रम, पूना से सन् 1926 ई. में प्रकाशित।
8. बृहदारण्यक–गीताप्रेस, आनन्दाश्रम इत्यादि से अनेकधा प्रकाशित।

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. आरण्यकों के रचना काल एवं प्रतिपाद्य विषय पर प्रकाश डालिए।
2. ऐतरेय आरण्यक पर अपने विचार स्पष्ट कीजिए।
3. आरण्यक का अर्थ एवं महत्त्व पर प्रकाश डालिए।
4. आरण्यकों का संक्षिप्त परिचय सहित प्रतिपाद्य विषय पर टिप्पणी लिखिए।
5. आरण्यकों के विषय विवेचन पर प्रकाश डालिए।

इकाई-2 उपनिषद् का अर्थ, परिचय एवं प्रतिपाद्य विषय

इकाई की रुपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 उपनिषद् का अर्थ एवं रचनाकाल
2.4 उपनिषदों का प्रतिपाद्य विषय
2.5 सारांश
2.6 पारिभाषिक शब्दावली
2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रिय शिक्षार्थियों!

बी0 ए0 (VAC- 01) वैदिक अध्ययन (Vedic Studies) के खण्ड द्वितीय से सम्बन्धित यह द्वितीय इकाई है। इस खण्ड में उपनिषद् का अर्थ, परिचय एवं प्रतिपाद्य विषय का वर्णन किया गया हैं। प्रस्तुत खण्ड में उपनिषद् का अर्थ एवं रचनाकाल तथा उपनिषदों का प्रतिपाद्य विषय का अध्ययन करेंगें। उपनिषद् वर्णन से सम्बन्धित यह द्वितीय इकाई है। इससे पूर्व इकाई में आरण्यकों का स्वरूप एवं प्रतिपाद्य विषय का परिचय प्राप्त किया। प्रस्तुत खण्ड उपनिषदों का स्वरूप एवं प्रतिपाद्य विषय आपके अध्ययनार्थ प्रस्तुत है।

उपनिषद् शब्द 'उप' एवं 'नि' उपसर्ग पूर्वक सद् (सदृलृ) धातु में 'क्विप्' प्रत्यय लगकर बनता है, जिसका अर्थ होता है 'समीप में बैठना' अर्थात् गुरु के समीप बैठकर ज्ञान प्राप्त करना। धातुपाठ में सद् (सद्लृ) धातु के तीन अर्थ निर्दिष्ट हैं - विशरण, (विनाश होना), गति (प्रगति), अवसादन (शिथिल होना)। इस प्रकार जो विद्या समस्त अनर्थों के उत्पादक सांसारिक क्रिया-कलापों का नाश करती है, संसार के कारणभूत अविद्या (माया) के बन्धन को शिथिल करती है और ब्रह्म का साक्षात्कार कराती है, उसे 'उपनिषद्' कहते हैं। इसका अर्थ यह है कि जिस विद्या से परब्रह्म, अर्थात् ईश्वर का सामीप्य प्राप्त हो, उसके साथ तादात्म्य स्थापित हो, वह विद्या 'उपनिषद्' कहलाती है। इस प्रकार जो विद्या समस्त अनर्थों के उत्पादक सांसारिक क्रिया-कलापों का नाश करती है, संसार के कारणभूत अविद्या (माया) के बन्धन को शिथिल करती है और ब्रह्म का साक्षात्कार कराती है, उसे 'उपनिषद्' कहते हैं। दार्शनिक विचारधाराओं का मूल स्रोत वैदिक सूक्त हैं। इन्हीं विचारधाराओं का विकसित रूप उपनिषदों में गति विशरण, अवसादन पाया जाता है। इसका तात्पर्य होता है कि ऐसी विद्या जो समस्त सांसारिक क्रियाकलापों का नाश करती है और ब्रह्म का साक्षात्कार कराती है। अतः इस इकाई में वर्णन किए गए तथ्यों का अध्ययन करने के पश्चात आप उपनिषद् का अर्थ समझाते हुए उसके रचनाकाल व उपनिषदों का प्रतिपाद्य को भी बता सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप—

- उपनिषद् शब्द की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- उपनिषदों के वर्ण्य विषय की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- उपनिषद् का स्वरूप एवं महत्ता का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- उपनिषदों का परिचय जान सकेंगे।
- वैदिक वाङ्मयानुसार उपलब्ध उपनिषदों की संख्या जान सकेंगे।
- उपनिषद् के प्रतिपाद्य विषय की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

2.3 उपनिषद् का अर्थ एवं रचनाकाल

उपनिषद् शब्द का समान्य अर्थ है - 'समीप उपवेशन' या 'समीप बैठना (ब्रह्म विद्या की प्राप्ति के लिए शिष्य का गुरु के पास बैठना)। यह शब्द 'उप + नि उपसर्ग 'सद्' धातु से निष्पन्न हुआ है। सद् धातु के उक्त तीन अर्थ हैं : विवरण-नाश होना; गति-पाना या जानना तथा अवसादन-शिथिल होना। उपनिषद् में ऋषि और शिष्य के मध्य बहुत सुन्दर और गूढ संवाद है जो अध्येता को वेद के गूणार्थ तक पहुंचाता है। आचार्य शङ्कर नें 'उपनिषद्' शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है-''जो मनुष्य भक्ति एवं श्रद्धा के साथ आत्मभाव से ब्रह्मविद्या को प्राप्त करता हैं, यह विद्या उनके जन्म-मरण, रोग आदि अनर्थों को नष्ट करती है और परबह्म को प्राप्त कराती है तथा अविद्या आदि संसार के कारणों को समूल नष्ट करती है। वह उप+नि पूर्वक सद् धातु का अर्थ स्मरण होने से 'उपनिषद्' कहते है। प्रचीनकाल में इस उपनिषद् विद्या का अध्ययन-अध्यापन रहस्य (एकान्त) स्थान में किया जाता था, अतः इसे 'रहस्य-विद्या' भी कहते हैं। उपनिषदों में अनेक स्थलों पर 'रहस्यविद्या' या 'ब्रह्मविद्या' के अर्थ में 'उपनिषद्' शब्द का प्रयोग हुआ है। इस प्रकार जिन ग्रन्थों में रहस्यात्मक ज्ञान आत्मविद्या की चर्चा की जाती है,उसे उपनिषद् कहते हैं और वेद का अन्तिम भाग होने के कारण उसे 'वेदान्त' भी कहा जाता है।

ओल्डनबर्ग ने उपनिषद् का अर्थ 'पूजा की एक पद्धति' बताया। इस प्रकार उपनिषद् शब्द का मुख्य अर्थ 'रहस्य' है, जो रहस्य ज्ञान (गुह्यज्ञान) सामान्य लोगों के लिए अभिप्रत नहीं था, बल्कि कुछ परखे हुए विशिष्ट व्यक्तियों को दिया जाता था। छान्दोग्योपनिषद् में तो यहाँ तक कहा गया है कि ''पिता रहस्य ज्ञान (ब्रह्मविद्या) का उपदेश अपने ज्येष्ठ पुत्र या अतिविश्वास पात्र शिष्य को ही दे अन्य किसी को नहीं, चाहे वह उसे समुद्रों से घिरी एवं रत्नों से भरी समस्त पृथ्वी को ही क्यों न दे दे। उपनिषदों में अनेक स्थलों पर कहा गया है कि गुरु शिष्य के बार-'बार प्रार्थना करने पर कठोर परीक्षा के बाद ही उसे गुह्यज्ञान का उपदेश देता है। वनों में एकान्त आश्रमों के शान्त वातावरण में गुरुजन रहस्यज्ञान (गुह्यज्ञान) या अध्यात्मविद्या का चिन्तन किया करते थे और उस ज्ञान को निकटस्थ योग्य एवं विश्वासपात्र शिष्यों को सिखाया करते थे, क्योंकि योग्य, सुपात्र एवं दीक्षित व्यक्ति ही उपनिषदों के रहस्यमय ज्ञान को समझ सकते हैं।

उपनिषद् भारतीय आध्यात्मिक चिन्तन के मूलाधार है, ये आध्यात्मिक दर्शन के स्त्रोत हैं। उपनिषद् चिन्तनशील एवं कल्पाशील मनीषियों की दार्शनिक ज्ञानचर्चाओं का सार हैं। उपनिषद् अपने आसपास के दृश्य संसार के पीछे झाँकने के प्रयत्न हैं। इसके लिए न कोई उपकरण उपलब्ध हैं और न किसी प्रकार की प्रयोग/अनुसंधान सुविधाएँ संभव है। अपनी मनश्चेतना, मानसिक अनुभूति या अंतर्दृष्टि के आधार पर हुए आध्यात्मिक स्फुरण या दिव्य प्रकाश को ही वर्णन का आधार बनाया गया है। उपनिषद् अध्यात्मविद्या के विविध अध्याय हैं जो विभिन्न अंत: प्रेरित ऋषियों द्वारा लिखे गए हैं। इनमें विश्व की परमसत्ता के स्वरूप, उसके अवस्थान, विभिन्न प्राकृतिक शक्तियों के साथ उसके संबंध, मानवीय आत्मा में उसकी एक किरण की झलक या सूक्ष्म प्रतिबिंब की उपस्थिति आदि को विभिन्न रूपकों और प्रतीकों के रूप

में वर्णित किया गया है। संक्षेप में, वेदों में इस संसार में दृश्यमान एवं प्रकट प्राकृतिक शक्तियों के स्वरूप को समझने, उन्हें अपनी कल्पनानुसार विभिन्न देवताओं का जामा पहनाकर उनकी आराधना करने, उन्हें तुष्ट करने तथा उनसे सांसारिक सफलता व संपन्नता एवं सुरक्षा पाने के प्रयत्न किए गए थे। उन तक अपनी श्रद्धा को पहुँचाने का माध्यम यज्ञों को बनाया गया था। उपनिषदों में उन अनेक प्रयत्नों का विवरण है जो इन प्राकृतिक शक्तियों के पीछे की परमशक्ति या सृष्टि की सर्वोच्च सत्ता से साक्षात्कार करने की मनोकामना के साथ किए गए। मानवीय कल्पना, चिंतन-क्षमता, अंतर्दृष्टि की क्षमता जहाँ तक उस समय के दार्शनिकों, मनीषियों या ऋषियों को पहुँचा सकीं उन्होंने पहुँचने का भरसक प्रयत्न किया।

उपनिषदों की संख्या एवं रचना शैली —

उपनिषदों की रचना शैली गुरु-शिष्य संवाद, विद्वान ऋषियों से चिंतनशील जिज्ञासुओं के प्रश्नोत्तर, विद्वानों की पारस्परिक चर्चाओं या वरिष्ठों के उपदेशों के रूप में हैं।–

सर्वोपनिषदां मध्ये सारमष्टोत्तरं शतम्।
सकृच्छ्रवणमात्रेण सर्वाघौघनिकृन्तनम्।।(मुक्तिकोपनिषद्/01)

परम्परा के अनुसार उपनिषदों की संख्या 108 ही मानी जाती है। मुक्तिकोपनिषद् में 108 उपनिषदों का उल्लेख है, जिनमें ऋग्वेद से सम्बद्ध 10 उपनिषद्, शुक्त यजुर्वेद की 19, कृष्णयजुर्वेद की 32, सामवेद की 16 और अथर्ववेद से सम्बद्ध 31 उपनिषद् हैं। मुक्तिकोपनिषद् में कहा गया है कि ये 108 उपनिषद् सभी उपनिषदों में सारभूत हैं, इनके अध्ययन से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। इन 108 उपनिषदों में प्रमुख कौन-कौन से माने जाएँ इस विषय में सामान्य मत यह है कि शंकराचार्य ने जिन उपनिषदों की टीका लिखी वे ही सबसे प्रमुख हैं। उनके नाम हैं-

ईश-के-कठ-प्रश्न-मुण्ड-माण्डूक्य-तित्तिरि:।
ऐतरेयं च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं तथा।। (मुक्तिकोपनिषद् 1/30)

1. ईश, 2. केन, 3. कठ, 4. प्रश्न, 5. मुण्ड 6. माण्डूक्य, 7. तैत्तिरीय, 8. ऐतरेय, 9. छान्दोग्य, 10. वृहदारण्यक । इनके इतर शंकराचार्य ने पाँच-छह अन्य उपनिषदों से भी उदाहरण दिए हैं। श्रीरामानुजाचार्य ने सभी उपनिषदों की टीका तो नहीं लिखी किंतु उन्होंने भी प्राय: इन्हीं उपनिषदों को माना है। उपनिषदों की संख्या में निरंतर वृद्धि हुई है एवं अब यह संख्या 250 तक पहुँच गई है। संक्षेप में प्रत्येक वेद से सम्बद्ध उपनिषद् इस प्रकार हैं -

1. ऋग्वेद के उपनिषद् -

1. ऐतरेय उपनिषद
2. कौषीतकि उपनिषद्

2. शुक्ल-यजुर्वेद के उपनिषद् -

1. ईशोपनिषद्
2. बृहदारण्यकोपनिषद्

3. कृष्णयजुर्वेद के उपनिषद् -

1. तैत्तिरीयोपनिषद्
2. कठोपनिषद्
3. श्वेताश्वतरोपनिषद्
4. मैत्रायणी उपनिषद्
5. महानारायणोपनिषद्

4. सामवेद के उपनिषद् -

1. केनोपनिषद्
2. छान्दोग्योपनिषद्

5. अथर्ववेद के उपनिषद -

1. मुण्डकोपनिषद्
2. माण्डूक्योपनिषद्प्र
3. श्नोपनिषद्

उपनिषदों का रचनाकाल—

कालक्रम की दृष्टि से उपनिषद् चार वर्गों में विभाजित किये जा सकते हैं। प्रथमवर्ग में बृहदारण्यक, छान्दोग्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय और कौषीतकि रखे जा सकते है, जो सबसे प्राचीन हैं और जिनकी रचना ब्राह्मणों की शैली में गद्य में हुई है। केनोपनिषद् में शैलीगत परिवर्तन परिलक्षित होता है। यह अंशत: छान्दोबद्ध और अंशत: गद्यात्मक है और यह उपर्युक्त उपनिषदों से परवर्ती है।

डॉ. राधाकृष्णन ने अपने ग्रंथ 'भारतीय दर्शन' (भाग-1) में उपनिषदों के रचनाकाल के विषय में यह मत व्यक्त किया है- 'जिन उपनिषदों पर शंकराचार्य ने भाष्य किया है वे ही सबसे प्राचीन तथा अत्यंत प्रामाणिक हैं। उनके निर्माण की कोई ठीक तिथि हम निश्चित नहीं कर सकते। इनमें से जो एकदम प्रारंभ के हैं वे तो निश्चित रूप से बौद्धकाल के पहले के हैं और उनमें से कुछ बुद्ध के पीछे के हैं। यह संभव है कि उनका निर्माण वैदिक सूक्तों की समाप्ति और बौद्धधर्म के आविर्भाव अर्थात ईसा के पूर्व छठी शताब्दी के मध्यवर्ती काल में हुआ हो।

डयूसन का कथन है कि ''इन सभी उपनिषदों में पूर्ववर्ती और परवर्ती पाठ्य मिले हुए हैं। इसलिए कालनिर्णय करते हुए प्रत्येक पर अलग से विचार करना होगा, किन्तु यदि हम केवल भाषा के आधार पर विचार करते हैं तो इन उपनिषदों के परवर्ती भाग भी अत्यन्त प्राचीन काल के सिद्ध होते हैं। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि बृहदारण्यक और छान्दोग्य जैसी बड़ी उपनिषदें ब्राह्मणों और आरण्यकों के काल से अधिक परवर्ती नहीं हैं, निश्चित ही है कि बौद्ध धर्म के आविर्भाव से पूर्ववर्ती और पाणिनि से भी पूर्ववर्ती हैं।

प्रारंभिक उपनिषदों का रचनाकाल 1000 ईस्वी पूर्व से लेकर 300 ईस्वी 3 पूर्व तक माना गया है। कुछ परवर्ती उपनिषद्, जिन पर शंकर ने भाष्य किया, बौद्धकाल के पीछे के हैं और उनका रचनाकाल 400 या 300 ई.पू. का है। सबसे पुराने उपनिषद वे हैं जो गद्य में हैं। वे

सम्प्रदायवाद से रहित हैं। ऐतरेय, कौषीतकीं, तैत्तिरीय, छान्दोग्य, वृहदारण्यक के अलावा केन उपनिषद के कुछ भाग पुराने हैं जबकि केनोपनिषद् एवं वृहदराण्यक के कुछ अंश बाद में जोड़े गए प्रतीत होते हैं। प्रक्षिप्त अंशों के अध्ययन में पर्याप्त सावधानी की अपेक्षा है जिससे अर्थ का अनर्थ न हो जाए। सही-गलत जाँचने-परखने की कसौटी है- उपनिषदों में जो वेदानुकूल है वह ग्राह्य है, जो वेद विरुद्ध है वह त्याज्य है। कठोपनिषद और भी बाद का है। इसमें हमें सांख्य और योगदर्शन के तत्व मिलते हैं। श्वेताश्वतर का निर्माण ऐसे काल में हुआ जबकि बहुत प्रकार के दार्शनिक ग्रंथों के पारिभाषिक शब्द इसमें मिलते हैं और उनके मुख्य सिद्धांतो का समावेश भी इसमें किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस उपनिषद का आशय वेदान्त, सांख्य और योग इन तीनों दर्शनों का आस्तिकवादपरक समन्वय करना है। प्रारंभिक गद्यात्मक उपनिषदों में अधिकतर विशुद्ध कल्पना पाई जाती है। जबकि परवर्ती उपनिषदों में अधिकांशत: धार्मिक पूजा और भक्ति का समावेश है।'

शंकराचार्य के अनुसार उपनिषत् शब्द का अर्थ ब्रह्मविद्या है परंतु लक्षणा से ब्रह्मविद्या का विवेचन करने वाले ग्रंथों को भी उपनिषद कहते हैं। उपनिषद स्वतंत्र ग्रंथ नहीं है। जिस प्रकार भगवद्गीता महाभारत का एक भाग है उसी प्रकार उपनिषद् भी वेदों, वेदों की शाखाओं, ब्राह्मण ग्रंथों या आरण्यकों के विशेष भाग ही हैं। ईशोपनिषद् यजुर्वेद का चालीसवाँ अध्याय नहीं है परंतु यजुर्वेद की काण्वशाखा का अंतिम तदनुसार चालीसवाँ अध्याय है। सब उपनिषदों की मूलभूत रचना ईशोपनिषद है। चूँकि यह उपनिषद वेद के अंत में है अतएव सभी उपनिषदें 'वेदान्त' के नाम से प्रसिद्ध हुई। षड्दर्शनों का वेदांत दर्शन (उत्तर मीमांसा) उपनिषद से भिन्न है। उपनिषदों में परमात्मा एवं जीवात्मा की विवेचना की गई है। इनमें जीवात्मा के मोक्ष मार्ग हेतु सारगभिर्कत व विवेकसम्मत मार्गदर्शन दिया गया है। परमात्मा और जीवात्मा में न कालकृत दूरी है और न देश-दूरी। दूरी यदि है तो अज्ञान के कारण। अज्ञान का व्यवधान हटा दें तो परमात्मा से साक्षात्कार होगा, मोक्ष मिलेगा।

आचार्य शंकर ने ब्रह्मसूत्र के भाष्य में इसे प्रामाणिक ग्रन्थ के रूप में उद्धृत किया है। 'सुबाल उपनिषद्' में सृष्टि-रचना शरीर विज्ञान, मनोविज्ञान तथा अध्यात्मशास्त्र के तत्व वर्णित हैं। रामानुज ने इससे बहुत से उद्धरण लिखे हैं। 'गर्भ उपनिषद्' में भ्रूणविज्ञान के साथ पुनर्जन्म प्राप्त न करने के सम्बन्ध में विधियाँ वर्णित हैं। 'अथर्वाङ्गिरस उपनिषद्' की धर्मसूत्रों में पवित्र ग्रन्थ के रूप में चर्चा है। 'वज्रसूचिका उनिषद्' में ब्रह्म का निरूपण है। वहाँ यह बताया गया है कि जो ब्रह्म का पूर्ण ज्ञान रखता है, वही ब्राह्मण है। ये अधिकांश दार्शनिक से बढ़कर धार्मिक हैं। डॉ0 राधाकृष्णन् का मत है कि प्राचीन उपनिषदों का रचनाकाल 800 ई0पू0-300 ई0पू0 के मध्य है। किन्तु पाणिनि ने अष्टध्यायी में 'उपनिषद्' शब्द का प्रयोग किया है। पाणिनि का समय 700 ई0पू0 माना जाता है। अत: इससे पूर्व उपनिषद् मान्य हो चुके थे। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि 700 ई0पू0 में प्राचीन उपनिषदों की रचना हो चुकी थी। तिलक ने ज्योतिष गणना के आधार उपनिषदों का रचनाकाल 1600 ई0पू0 माना है। उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि समस्त उपनिषदें किसी एक काल एवं किसी एक व्यक्ति की रचना नहीं हैं।

विभिन्न काल के विभिन्न ऋषियों ने अपने जीवनकाल में संसार का जो कुछ अनुभव किया, इनमें उनके अनुभवों का संग्रह है, उनके विचारों का संग्रह है। इनमें कुछ ऋषि वैदिककालीन भी हैं। कालक्रम की दृष्टि से ये वैदिककाल के अन्त की और ब्राह्मणयुग के समकालीन कृतियाँ हैं। प्राचीन उपनिषदें, जिनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध वेदों से है और जो ब्राह्मणों के भाग हैं, उनका रचनाकाल बौद्ध धर्म के आविर्भाव के पूर्व का है और पाणिनि से भी पूर्ववर्ती है।

अभ्यास प्रश्न:-1

1. उपनिषदों में कितने उपसर्गों का प्रयोग है।

क. तीन

ख. दो

ग. पांच

घ. दो

2. विशरण अर्थ किससे संबंधित है।

क. वेद

ख. पुराण

ग. मीमांसा

घ. उपनिषद्

3. रहस का अर्थ है।

क. एकांत

ख. जंगल

ग. पर्वत

घ. गांव

4. भारतीय परंपरा में कितने उपनिषद् माने गए हैं।

क. 50

ख. 60

ग. 80

घ. 108

5. उपनिषद् वाक्य महाकोष में उपनिषदों की कितनी संख्या मानी गई है।

क. 175

ख.223

ग.225

घ.228

6. दाराशिकोह ने फारसी में उपनिषदों का अनुवाद किस नाम से कराया था।

क. उपनित

ख. उपनस

ग.ओपन

घ.ओपनिखत

7. शंकराचार्य ने जिन 10 उपनिषदों पर अपना भाष्य लिखा है कहा उल्लिखित है।

क.नारायण सूची

ख.उपनिषद् संग्रह

ग. मुक्तिकोपनिषद्

घ. इनमें से कोई नहीं

2.4 उपनिषदों का प्रतिपाद्य विषय

उपनिषदों का मुख्य रूप से प्रतिपाद्य विषय आत्मतत्व का वर्णन, ब्रह्मतत्व का वर्णन, प्राणतत्व का विवेचन, ब्रह्म एवं जगत् का वर्णन, नैतिक सिद्धान्तों का वर्णन, पुनर्जन्म का वर्णन, कर्म के सिद्धान्त् आदि का विवेचन उपनिषदों में प्रतिपादित है। डॉ॰ ड्यूसेन, डॉ॰ बेल्वेकर तथा रानडे ने उपनिषदों का विभाजन प्रतिपाद्य विषय की दृष्टि से इस प्रकार किया है:

गद्यात्मक उपनिषद्	१. ऐतरेय, २. केन, ३. छान्दोग्य, ४. तैत्तिरीय, ५. बृहदारण्यक तथा ६. कौषीतकि
पद्यात्मक उपनिषद्	१.ईश, २.कठ, ३. श्वेताश्वतर तथा नारायण
अवान्तर गद्योपनिषद्	१.प्रश्न, २.मैत्री (मैत्रायणी) तथा ३.माण्डूक्य
आथर्वण	कर्मकाण्डी उपनिषद्- अवांतरकालीन उपनिषद्

उपनिषदों में आत्मतत्व का वर्णन:-

'आत्मन्' शब्द 'अन् प्राणने' धातु से बनता है, जिसका अर्थ है प्राण। ऋग्वेद में इसका अर्थ वायु बताया गया है। ब्राह्मणों में यही शब्द जीवात्माका वाचक हो गया है। आचार्य शङ्कर 'आत्मन्' शब्द की व्युत्पत्ति का निर्देश करते हुए कहते हैं कि ''जो सर्वत्र व्याप्त है, सबको अपने में ग्रहण कर लेता है, विषयों का उपभोग करता है और जो इसकी सत्ता निरन्तर रहती है, इन्हीं कारणों से इसे 'आत्मा' कहते हैं। कठोपनिषद् में आत्मस्वरूप का विवेचन करते हुए कहा गया है कि ''यह आत्मा न जन्म लेता है, न मरता है, न स्वयं किसी से उत्पन्न हुआ है और न इससे कोई उत्पन्न हुआ है। यह अज, नित्य, शाश्वत और पुरातत्व है। शरीर के नष्ट हो जाने पर भी यह नष्ट नहीं होता है। यह आत्मा अणु से भी छोटा और महान् से भी महान् है और यह समस्त प्राणियों के हृदय रूपी गुहा में स्थित है, उसकी महिमा को कामना एवं शोक रहित साधक परमेश्वर की कृपा से ही जान सकता है। छान्दोग्योपनिषद् में इन्द्र और प्रजापति के सम्वाद द्वारा आत्मा के स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है। प्रजापति कहते हैं कि ''आत्मा वह है जो पाप से मुक्त है, जरा से मुक्त है, वृद्धास्था से रहित है, मृत्यु एवं शोक से रहित है, भूख और प्यास से रहित है, जो सत्य काम है

वही जानने और अनुभव करने योग्य है। इस प्रकार यह आत्मा अजन्मा, नित्य,व्यापक, सर्वान्तर्यामी और सर्वातिशायि है। माण्डूक्योपनिषद् में आत्मा को तुरीय कहा गया है। इस उपनिषद् में आत्मा की चार अवस्थाओं का निरूपण किया गया है - जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय। जाग्रत् अवस्था में आत्मा स्थूल पदार्थों का अनुभव करती है। स्वप्नावस्था में वह सूक्ष्म पदार्थों का अनुभव करती है और सुषुप्ति अवस्था में आत्मा ब्रह्म के साथ तद्रूप होकर आनन्द का अनुभव करती है। प्रथम दोनों अवस्थाओं में आत्मा का ब्रह्म एवं आभ्यन्तर जगत् से सम्बन्ध होने के कारण द्वैत का भान रहता है। किन्तु तृतीय अवस्था में आत्मा परमानन्द का अनुभव करता है। अतः इसे द्वैत का भान नहीं रहता। इन्हीं तीनों को क्रमशः वैश्वानर, तेजस् और प्राज्ञ कहते हैं। आत्मा की एक तुरीय अवस्था है। यह शुद्ध चैतन्य की अवस्था है। इसमें बाह्य और आभ्यन्तर किसी भी प्रकार के पदार्थों का भास नहीं रहता है।

उपनिषदों में ब्रह्मतत्व का वर्णन—

'ब्रह्म' शब्द बृह् धातु से निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है 'बढ़ना'। आचार्य शङ्कर ब्रह्म शब्द की व्युत्पत्ति 'वृहति' (अतिशय) से मानते हैं और उसका अर्थ शाश्वत एवं विशुद्ध करते हैं। माध्व के अनुसार जिसमें गुण पूर्वण रूप में रहते हैं, उसे 'ब्रह्म' कहते हैं। (बृहन्तो ह्यस्मिन् गुणाः।) ऋग्वेद में 'ब्रह्मन्' शब्द का स्तुति के अर्थ में प्रयोग हुआ है, अथर्ववेद में यह शब्द यज्ञ के अर्थ में प्रयुक्त होता था । और ब्राह्मणों में यह पवित्रता का बोधक हो गया। उपनिषदों के अनुसार सत्,चित् और आनन्द रूप है। वही सबकी आत्मा है और उसी से इस मानरूपात्मक जगत् की सृष्टि होती है। तैत्तिरीयोपनिषद् के एक आख्यान में बताया गया है कि वरुण पुत्र भृगु अपने पिता से प्रश्न करते हैं कि मुझे ब्रह्म का ज्ञान कराइये। तब वरुण का ब्रह्म उपदेश देते हैं कि ''जिससे सभी प्राणी उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होकर जिसके द्वारा जीवित रहते हैं तथा अन्त में जिसके पास जाते हैं और जिसमें लीन हो जाते वही ब्रह्म है। उपनिषदों में ब्रह्म के दो रूपों का निर्देश मिलता है- निर्गुण औरा सगुण निर्गुण ब्रह्म को 'परब्रह्म' कहा गया है। वह परब्रह्म सच्चिदानन्द रूप है, वाङ्मनसगोचर नहीं है और निरुपाधि होने के कारण अनिर्वचनीय, तैत्तिरीयोपनिषद् में इसे सत्य, ज्ञान और अनन्त कहा गया है।

(सत्यं ज्ञानमनस्तं ब्रह्म) मुण्डकोपनिषद् में इसे अक्षर,आनन्दरूप,अजर और अमर भी कहा गया है। वह अदृश्य, अग्राह्य, अनादि, रूपरङ्ग से रहित तथा चक्षु और श्रोत्र से रहित है।

बृहदारण्यकोपनिषद् में याज्ञवल्क्य ने गार्गी के प्रश्न का उत्तर देते हुए उस अक्षरब्रह्म को अवाङ्मनसगोचर कहा है। सगुण ब्रह्म को 'अपरब्रह्म' कहा गया है। यह अपरब्रह्म ससीम, नित्य, विभु, सर्वज्ञ, सर्वनियन्ता और विश्व का सर्जक, पालक एवं संहारक है और सोपाधि होने के कारण वर्णनीय है। छादोग्योपनिशद् में सगुण ब्रह्म का विवेचन 'तज्जलान्' शब्द के द्वारा किया गया है। 'तज्जलान्' शब्द का अर्थ है - 'उस ब्रह्म से यह जगत् उत्पन्न होता है (तज्ज) उसी में लीन हो जाता है। (तल्ल) और उसी से धारण करता है। (तदन्)। अर्थात् उस जगत् को उत्पन्न करने वाला, धारण करने वाला और अपने में लीन करने वाला वह ब्रह्म ही है। इस प्रकार सगुण ब्रह्म ही इस

संसार का कारण है, सब का स्वामी है, वही सर्वज्ञ, सर्वव्यापक और नामरूपात्मक जगत् का अधिष्ठाता है। वस्तुतः दोनों में कोई तात्विक भेद नही है। दोनों ही एकत्व (ब्रह्म) के दो दृष्टिकोण हैं। यही कारण है कि अनेक स्थलों पर एक ही स्थान पर ब्रह्म का उभयविध वर्णन प्राप्त होता है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में एक ओर उसे सर्वाव्यापी, सर्वान्तर्यामी, कर्माध्यक्ष और साक्षी कहा है। दूसरी ओर उसे ही निर्गुण कहा है। इस प्रकार ब्रह्म के उभयरूप के वर्णन के पश्चात् भी उसे उपनिषदों में उसे अनिर्वचनीय कहा गया है।

उपनिषदों में ब्रह्म और आत्मा का वर्णन—

वेद और ब्राह्मणों में ब्रह्म और आत्मा अलग- अलग अर्थों प्रयुक्त होते रहे हैं, किन्तु उपनिषदों में आकर ये दोनों एक-दूसरे के पर्यायवाचक हो गये। मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है कि ब्रह्म और आत्मा दोनों ही सख्यभाव शरीर रूपी वृक्ष पर निवास करते हैं। उनमें से एक (आत्मा) कर्मफलों का भोग करता है और दूसरा (परमात्मा) उसे साक्षी रूप में देखता है। इस कथन से यद्यपि द्वैत की प्रतीति रही है, किन्तु इसी उपनिषद् के अग्रिम वचनों से दोनों की अद्वैतता सिद्ध होती। जैसा कि कहा गया है कि 'यह अमृत (अविनाशी) ब्रह्म ही ऊपर-नीचे, आगे-पीछे, दायें-बायें चारों ओर व्याप्त है और यह विश्व ब्रह्म ही है और जो इस ब्रह्म को जान लेता है, ब्रह्म ही हो जाता है। उक्त कथन की पुष्टि बृहदारण्यकोपनिषद् से भी होती है कि यह आत्मा ही ब्रह्म है और उसने अपने हृदय में स्थित आत्मा को 'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसा समझा। छान्दोग्योपनिषद् में श्वेतकेतु के उपाख्यान द्वारा जीवात्मा और ब्रह्म का ऐक्य प्रतिपादित किया गया है। उद्दालक आरुणि अपने पुत्र श्वेतकेतु को ब्रह्मविद्या का उपदेश देते हुए कहते हैं कि ''हे श्वेतकेतो! यह जो अणिमा (अणुरूप) है, यह सब कुछ तद्रूप है,वह सत् है, वही आत्मा है और हे श्वेतकेतो! 'वही तू है' (त्वमसि)। इस प्रकार 'तत्वमसि, इस वाक्य के द्वारा आत्मा और ब्रह्म में ऐक्य स्थापित किया गया है।

छान्दोग्योपनिषद् में शाण्डिल्य का सिद्धान्त आत्मा और ब्रह्म के ऐक्य का प्रतिपादक है। शाण्डिल्य का कथन है कि ''ये मेरी आत्मा मेरे अन्तर हृदय में ब्रह्म है। जब मैं इस संसार से जाऊँगा तो उससे एकरूप हो जाऊँगा, जिसे यह ज्ञान हो गया है उसके लिए कोई भी विचिकित्सा शेष नहीं है। इसी प्रकार छान्दोग्योपनिषद् में अन्य भी बहुत से उपाख्यान मिले हैं जिनके द्वारा ब्रह्म और आत्मा को एक्य सम्बन्ध स्थापित किया गया है। माण्डूक्योपनिषद् में भी बताया गया है 'कि यह सब कुछ ब्रह्म ही है, यह आत्मा ब्रह्म है। बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा गया है कि ''यह आत्मा ही ब्रह्म है और वह महान् अजन्मा अजर, अमर एवं अभय है, जो ऐसा जानता, वह ब्रह्म ही हो जाता है। इस प्रकार उपनिषदों के अनुसार यह समस्त दृश्यमान जगत्ब्रह्म है, यह जीव ब्रह्म है, यह आत्मा भी ब्रह्म है, यह सब कुछ ब्रह्म ही है, उससे भिन्न कुछ भी नहीं है।

उपनिषदों में प्राणतत्व का वर्णन—

उपनिषदों में कई स्थलों पर 'प्राण' शब्द का प्रयोग' के 'आत्मा के लिये हुआ है। इसे विज्ञानमय पुरुष से अभिन्न समझा गया है। छान्दोग्योपनिषद् के अनुसार एक बार प्राण और

इन्द्रियों में परस्पर विवाद हुआ कि हममें कौन बडा है। इस पर सब प्रजापति के पास गये। तब प्रजापति ने कहा कि 'तुम में से जिसके उत्क्रमण करने पर शरीर नष्ट हो जाय और पापियों जैसा प्रतीत होने लगे, वही श्रेष्ठ है। सबसे पहले उसी शरीर छोड़कर चली गई और एक वर्ष के बाद लौटकर देखा तो शरीर में किसी का विकार नहीं है, उसकी सारी क्रियाएँ ज्यों की त्यों है। उसने पूछा कि मेरे अभाव में तुम कैसे जीवित रहे ? उन्होंने कहा कि जैसे मूक व्यक्ति बिना बोले जीवित रहते हैं, उसी प्रकार हम भी जीवित रहे। तब वाणी शरीर में प्रवेश कर गई। इसके बाद चक्षु ने उत्क्रमण किया। एक वर्ष तक बाहर रहने के बाद लौटकर देखा शरीर का कुछ भी नहीं बिगड़ा है और उसने भी शरीर में प्रवेश किया। तदनन्तर श्रोत्र शरीर छोड़कर चला गया और एक संवत्सर रहने के बाद लौटकर देखा कि शरीर कुछ कभी नहीं बिगड़ा है। वह भी शरीर में प्रविष्ट हो गया। उसके बाद मन चला गया और एक वर्ष बाहर रहने के बाद लौटकर देखा कि शरीरज्यों का

त्यों बना है, उसका कुछ भी नहीं बिगड़ा है। उसके बाद जब प्राण जाने को तैयार हुआ, वैसे ही सारी इन्दियां व्याकुल होने लगीं और प्राण से कहने लगीं कि ''आप मत जाइये, यहीं रहिय, हममें आप ही सर्वश्रेष्ठ हैं। इस प्रकार ये मन, वाणी, श्रोत्र, चक्षु सभी प्राण ही हैं और प्राण ही आत्मा है।

उपनिषदों में ब्रह्म और जगत् का वर्णन—

उपनिषदों में ब्रह्म को जगत् का कारण बताया गया है। यह ब्रह्म जगत् की उत्पत्ति का निमित्त कारण है और उपादान कारण भी। मुण्डकोपनिषद् में बताया गया है कि 'जिस प्रकार मकड़ी जाला बनाती है और फिर अपने में समेट लेती है, जैसे पृथ्वी से औषधियाँ उत्पन्न होती है और जैसे पुरुष के केश एवं लोम उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार अक्षर ब्रह्म से जगत् उत्पन्न होता है। तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा गया है कि ''उस परमात्मा (ब्रह्म) से सूक्ष्म आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश से वाय, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से औषधियाँ, औषधियों से अन्न, अन्न से वीर्य, वीर्य से पुरुष उत्पन्न हुआ। इस प्रकार यह जगत् इस ब्रह्म का परिणाम है। सृष्टि अभिव्यक्ति हे, अभिव्यक्ति के पूर्व जगत् अव्यक्त रूप था, वह अव्यक्त रूप ही ब्रह्म है और ब्रह्म की व्यक्तावस्था ही जगत् है। माया सर्वोच्च ब्रह्म की वह शक्ति है जिससे जगत् की अभिव्यक्ति होती है। माया पर सर्वोच्च का नियन्त्रण रहता है और सर्वोच्च माया के द्वारा ही जगत् को अभिव्यक्त करता है। उपनिषदों के अनुसार यह समस्त दृश्यमान नामरूपात्मक जगत् ब्रह्म का एक रूप है और ब्रह्म उस जगत् का मूल कारण है। यह जगत् ब्रह्म में से आता है और उसी में लौट जाता है। जगत् की जो भी कुछ सत्ता है वह ब्रह्म के कारण है।

उपनिषदों में पुनर्जन्म एवं कर्म के सिद्धान्त् का वर्णन—

उपनिषद् की विचारधारा के अनुसार मानव जन्म-मरण एवं आवागमन की विभीषिका से संत्रस्त होकर उससे मुक्ति पाने की चेष्ट करता है। और उससे उन्मुक्त होकर अमृत्व प्राप्त करता है। यदि वह अच्छा कर्म करता है, तो अच्छा फल प्राप्त करता है, यदि बुरा कर्म करता है, तो बुरा फल प्राप्त करता है। अतएव उपनिषद् सदैव सत्कर्म की प्रेरणा देती हैं। जैसा कि

ईशावास्योपनिषद् में कहा गया है कि ''सत्कर्मों को करते हुए सौ वर्ष तक जीने की कामना करो। इससे ज्ञात होता है कि निष्काम भाव से सत्कर्म करने से मानव जन्म-मरण की विभीषिका से पीड़ित नहीं होता, किन्तु जो स्वार्थ वश कर्म में प्रवृत्त होते हैं, वे अवश्य ही जन्म मरण की विभीषिका को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार अपने-अपने किये गये कर्मों के ही अनुसार मानव का उत्थान-पतन होता है। याज्ञवल्क्य ने कर्म का महत्व बताते हुए कहा है कि मनुष्य पुण्य कर्म करने से पुण्यात्मा और पाप कर्म करने से पापी बनता। आगे कहा गया हैया है कि वह पुरुष काममय है, जैसा उसका काम (राग) होता है, वैसा ही संकल्प होता है; जैसा संकल्प होता है, वैसा कर्म करता है और जैसा कर्म करता है, वैसा उसका भाग्य बनता है। इस प्रकार सत्कर्म के द्वारा जो व्यक्ति अपने को ऊपर उठाता है, उसे स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है और जो व्यकित नीच कर्मों द्वारा अपने को नीचे गिराता है, उैसे नरक की प्राप्तिहोती है। इसी कर्म सिद्धान्त के आधार पर पुनर्जन्म सिद्धान्त का विकास पाया जाता है। छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया है कि 'श्रद्धा और तप में लीन व्यक्ति शरीर त्याग के अनन्तर देवयान मार्ग के द्वारा ब्रह्मलोक को जाते हैं और उनका संसार में पुनरागमन नहीं होता। इष्टापूर्त्त, यज्ञादि कर्मों में रत सदाचारी व्यक्ति पितृयान मार्ग से चन्द्रलोक को जाते हैं और पुण्यकर्मों के क्षय होने से पर वहाँ लौटकर वह शुभाशुभ कर्मों के अनुसार शुभ और अशुभ योनियों को प्राप्त करते कौषितकि हैं। उपनिषद् के अनुसार 'शरीर-त्याग' के अनन्तर समस्त प्राणी चन्द्रलोक को जाते हैं और वहाँ से कुछ पितृयान द्वारा ब्रह्मलोक को जाते हैं और कुछ व्यक्ति मर्त्यलोक में नाना प्रकार की योनियों में जन्म लेते हैं। केनोपनिषद् के अनुसार देवयान को उत्तरमार्ग (उत्तरायण) और पितृयानमार्ग दक्षिणमार्ग (दक्षिणायन) कहते हैं। कठोपनिषद् में एक आख्यान द्वारा पुनर्जन्म की समस्या का प्रतिपादन किया गया है। नचिकेता नामक एक ब्राह्मण शिशु यमलोक पहुँचता है और यम उससे तीन वर माँगने को कहते हैं। नचिकेता प्रथम दो वर माँगने के बाद तृतीय वर के रूप में वह पूछता है कि ''मृत्यु के बाद मनुष्य का क्या काम होता है ? यमराज नचिकेता के आग्रह पर उक्त प्रश्न का समाधान करते हुए कहते हैं कि ''जीवन और मरण विकास के ये विभिन्न स्वरूप हैं, जीवर औ ब्रह्म के ऐक्य की अनुभूति कराने वाला तत्वज्ञान मनुष्य को मृत्यु से अतीत बनाकर अमरत्व को प्राप्त कराता है।

उपनिषदों में नैतिक सिद्धान्त का वर्णन—

परम्परा से ही उपनिषद आदर्शों की जननी है। इनके नैतिक उपदेश इतने दिव्य हैं कि जिनके द्वारा मनुष्य शाश्वत सुख एवं विमल शान्ति प्रिाप्त कर सकते हैं। उपनिषद मानव-जीवन की नैतिक शिक्षा की बार-बार प्रेरणा देती हैं कि उठो, जागो और बड़ों से शिक्षा ग्रहरण करो। ऐसा करने से मानव परम काल्याण होगा। तैत्तिरीयोपनिषद् का उपदेश तो अमृत से भरा हुआ है। सत्यंवद् धर्मं चर''सत्य बोलो,धर्म का आचरण करो, स्वाध्याय से प्रमाद मत करो, सत्य और धर्म के पालन में आलस्य मत करो, देवता, पितर, माता, पिता, गुरु, अतिथि के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन करो, श्रद्धा, भक्ति एवं नम्रता से दान करो। छान्दोग्योपनिषद् में जीवन को एक

यज्ञ के रूप में कल्पित किया गया है और तप, दान, आर्जव, अहिंसा एवं सत्यवादिता को उस यज्ञ की दक्षिणा बताया है। बृहदारण्यकोपनिषद् में प्रजापति अपने तीनों सन्तानों (देव, मनुष्य और असुर) को सभी सद्गुणों में एक ही 'द' का उपदेश देते हैं उनके इस उपदेश से देवों ने 'द' से दमन (दाम्यत) की शिक्षा ली, मनुष्यों' ने दान (दत्त) की शिक्षा ली और असुरों ने 'द' से दया (दयध्वम्) की शिक्षा ली। प्रजापति ने कहा कि दैवीवाक् में भी उन्हें 'द द द' यही श्रवण होता है, अतः तुमहें दाम्यत (आत्मनिग्रह), दत्त (दान) और दयध्वम् (दया) इन तीन गुणों को ग्रहण करना चाहिये।

अभ्यास प्रश्न:-2

निम्नलिखित में सही विकल्प चनकर उत्तर दीजिए -

1. ऋग्वेद में आत्मन् का अर्थ क्या बताया गया है -

क. प्राण ख.वायु ग. आकाश घ. पृथ्वी

2. आत्मा को अज, नित्य व शाश्वत किस उपनिषद् में कहा गया है -

क. श्वेताश्वतर ख. कठोपनिषद् ग. वृहदारण्यक् घ.प्रश्नोपनिषद्

3. उपनिषदों में आत्मा की कितनी अवस्थाएँ हैं -

क.पॉच ख. चार ग. सात घ. दस

4. वरूण के पुत्र कौन हैं -

क. अंगिरा ख. भृगु ग. सत्यकाम घ. कोई नहीं

5. उपनिषदों में ब्रह्म के कितने स्वरूप हैं -

क. तीन ख. आठ ग. दो घ. तीन

6. सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म किस उपनिषद् से सम्बन्धित है-

क.मैत्रायणीयोपनिषद् ख. तैतिरीयोपनिषद् ग. प्रश्नोपनिषद् घ.मुण्डकोपनिषद्

7. ब्रह्म और आत्मा सख्यभाव से शरीर रूपी वृक्ष पर रहते हैं, यह कथन किस उपनिषद् का है-

क. मुक्तिकापनिषद् ख.महानारायणीयोपनिषद् ग. छान्दोग्योपनिषद् घ. मुण्डकोपनिषद्

8. उद्दालक आरूणि के पुत्र का नाम है -

क. नचिकेता ख. श्वेतकेतु ग. ब्रह्मा घ. इरक

9. तत्वमसि किस उपनिषद् से है -

क. छान्दोग्य ख.तैत्तिरीय ग. प्रश्न घ. मुण्डक

10. निम्नलिखित में किसमें शाण्डिल्य का सिद्धान्त है-

क. मुक्तिकोपनिषद् ख.मुण्डक ग. ईशावास्य घ. छान्दोग्य

11. मकडी के जाल बनाने का तथ्य किस उपनिषद् में है -

क. मुण्डक ख.माण्डूक्य ग. छान्दोग्य घ. ऐतरेय

2.5 सारांश

समस्त उपनिषद् किसी एक काल एवं किसी एक व्यक्ति की रचना नहीं हैं। विभिन्न काल के विभिन्न ऋषियों ने अपने जीवनकाल में संसार का जो कुछ अनुभव किया, इनमें उनके अनुभवों का संग्रह है, इनमें उनके विचारों का संग्रह है। कुछ ऋषि वैदिककालीन भी हैं। कालक्रम की दृष्टि से ये वैदिककाल के अन्त की और ब्राह्मणयुग के समकालीन कृतियाँ हैं। प्राचीन उपनिषद, जिनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध वेदों से है और जो ब्राह्मणों के भाग हैं, उनका रचनाकाला बौद्ध धर्म के आविर्भाव के पूर्व का है और पाणिनि से भी पूर्ववर्ती है। इसी प्रकार उपनिषदों का मुख्य रूप से प्रतिपाद्य विषय आत्मतत्व का वर्णन, ब्रह्मतत्व का वर्णन, प्राणतत्व का विवेचन, ब्रह्म एवं जगत् का वर्णन, नैतिक सिद्धान्तों का वर्णन, पुनर्जन्म का वर्णन, कर्म के सिद्धान्त् आदि के सिद्धान्तों का वर्णन उपनिषदों में प्राप्ता होता है।

कठोपनिषद् में आत्मस्वरूप का विवेचन करते हुए कहा गया कि ''यह है आत्मा न जन्म लेता है, न मरता है, न स्वयं किसी से उत्पन्न हुआ है और न इससे कोई उत्पन्न हुआ है। यह अज, नित्य, शाश्वत और पुरातत्व है। शरीर के नष्ट हो जाने पर भी यह नष्ट नहीं होता है। यह आत्मा अणु से भी छोटा और महान् से भी महान् है और यह समस्त प्राणियों के हृदय रूपी गुहा में स्थित है, उसकी महिमा को कामना एवं शोक रहित साधक परमेश्वर की कृपा से ही जान सकता है। छान्दोग्योपनिषद् में इन्द्र और प्रजापति के सम्वाद द्वारा आत्मा के स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है। मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है कि ब्रह्म और आत्मा दोनों ही संख्यभाव से शरीर रूपी वृक्ष पर निवास करते हैं। उनमें से एक (आत्मा) कर्मफलों का भोग करता है दूसरा (परमात्मा) उसे साक्षी रूप में देखता है। इस कथन से यद्यपि द्वैत की प्रतीति हो रही है, किन्तु इसी उपनिषद् के अग्रिम वचनों से दोनों की अद्वैतता सिद्ध होती है। जैसा कि कहा गया है कि 'यह अमृत (अविनाशी) ब्रह्म ही ऊपर-नीचे, आगे-पीछे, दायें-बायें चारों ओर व्याप्त है और यह विश्व ब्रह्म ही है और जो इस ब्रह्म को जान लेताहै, ब्रह्म ही हो जाता है। ईशावास्योपनिषद् में कहा गया है कि ''सत्कर्मों को करते हुए सौ वर्ष तक जीने की कामना करो। इससे ज्ञात होता है कि निष्काम भाव से सत्कर्म करने से मानव जन्म-मरण की विभीषिका से पीड़ित नहीं होता, किन्तु जो स्वार्थवश कर्म में प्रवृत्त होते हैं, वे अवश्य ही जन्म-मरण की विभीषिका को प्राप्त करतें है। इस प्रकार अपने-अपने किये गये कर्मों के अनुसार ही मानव का उत्थान-पतन होता है। तैत्तिरीयोपनिषद् का नैतिक उपदेश तो अमृतमय है। सत्यंवद् धर्मं चर ''सत्य बोलो, धर्म का आचरण करो, स्वाध्याय से प्रमाद मत करो, सत्य और धर्म के पालन में आलस्मत करो, देवता, पितर, माता, पिता, गुरु, अतिथि के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन करो, श्रद्धा, भक्ति एवं नम्रता से दान करो। बृहदारण्यकोपनिषद् में प्रजापति अपने तीनों सन्तानों (देव, मनुष्य और असुर) को सभी सद्गुणों में एक ही 'द' का उपदेश हैं उनके इस उपदेश से देवों ने 'द' से दमन (दाम्यत) की शिक्षा ली, मनुष्यों ने 'द'से दान (दत्त) की शिक्षा ली और असुरों ने 'द' से दया (दयध्वम्) की शिक्षा ली।

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

अध्यात्मविषयक - जिस वर्णन में आत्मा के सम्बन्ध में विमर्श हो और ब्रह्मविषयक चिन्तन किया गया हो उसे अध्यात्मविषयक कहा जाता है।

आश्वलायन	-	यह नाम है
सत्यकाम	-	सत्यकाम नामक ऋषि
सौर्यायणी	-	स्त्री
प्रश्नोपनिषद्	-	जिसमें प्रश्नोत्तर हो ऐसा
कालक्रम	-	समय के क्रम में
पुरातत्व	-	प्राचीन तत्व
अज	-	अजन्मा
इष्टापूर्त्त	-	इष्ट की प्राप्ति कराने वाला
विभीषिका	-	भयानकता
शुभाशुभ	-	शुभ और अशुभ
शाश्वत	-	सदा रहने वाला

2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्नोंत्तर:-1

1.घ	2.घ	3.क	4.घ
5.ख	6.घ	7.ग	8.क

अभ्यास प्रश्नोंत्तर:-2

1. ख	2.ख	3.ख	4.ख	
5. ग	6.ख	7.घ		8.ख
9.क	10.घ	11.क		

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वैदिक साहित्य का इतिहास – बलदेव उपाध्याय, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी, प्रकाशन 2009 ई. प्रथम संस्करण।
2. भारतीय दर्शन का इतिहास, डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर, प्रकाशन 1978 ई. प्रथम संस्करण।
3. वैदिक वाङ्मय का इतिहास भाग द्वितीय - आचार्य भगवद्दत्त, अनुसंधान विभाग डी.ए.वी कालेज लाहौर 1927 ई. प्रथम संस्करण।
4. ऐतरेय–आरण्यक, सायण–भाष्यसहित, आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली में, पूना से 1898 में प्रकाशित।
5. वैदिक साहित्य एवं संस्कृति - आचार्य कपिलदेव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी 2000 ई.।

6. वैदिक साहित्य - पं. रामगोविन्द त्रिवेदी, भारतीय ज्ञानपीठ काशी 1950 ई. प्रथम संस्करण।

2.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.भारतीय साहित्य का इतिहास,

2.प्राचीन भारतीय साहित्य, पृ0 175

3.संस्कृत साहित्य का इतिहास (मैकडानल)

4.संस्कृत साहित्य का इतिहास (मैकडानल) पृ0 216

5.कठोपनिषद् शांकरभाष्य 2/2/20

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.उपनिषदों के रचनाकाल को समझाइये।

2. ब्रह्म और आत्मा के निरूपण पर प्रकाश डालिए

3.उपनिषदों में वर्णित नैतिक शिक्षा का वर्णन कीजिए

4. प्राणतत्व की विवेचना पर विस्तार से लिखिए।

इकाई-3 प्रमुख उपनिषदों का सामान्य परिचय

इकाई की रुपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 प्रमुख उपनिषदों का सामान्य परिचय
3.4 सारांश
3.5 पारिभाषिक शब्दावली
3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रिय शिक्षार्थियों!

बी0 ए0 (VAC- 01) वैदिक अध्ययन (Vedic Studies) के खण्ड द्वितीय से सम्बन्धित यह तृतीय इकाई है। इस खण्ड में प्रमुख उपनिषदों का परिचय एवं प्रतिपाद्य विषय का वर्णन किया गया हैं। प्रस्तुत खण्ड में ऐतरेयोपनिषद् , कौषीतकि उपनिषद् , ईशोपनिषद् , बृहदारण्यकोपनिषद् , तैत्तिरीयोपनिषद् , कठोपनिषद, श्वेताश्वतरोपनिषद्, मैत्रायणी उपनिषद्, महानारायणोपनिषद्, छान्दोग्योपनिषद्, केनोपनिषद् , प्रश्नोपनिषद् , मुण्डकोपनिषद् , माण्डूक्योपनिषद् का अध्ययन करेंगें। उपनिषद् वर्णन से सम्बन्धित यह तृतीय इकाई है। इससे पूर्व इकाई में उपनिषदों का स्वरूप एवं प्रतिपाद्य विषय का परिचय प्राप्त किया। प्रस्तुत खण्ड प्रमुख उपनिषदों का परिचय आपके अध्ययनार्थ प्रस्तुत है। उपनिषद् शब्द 'उप' और 'नि' उपसर्ग तथा 'सद' धातु के संयोग से बना है। 'सद' धातु का प्रयोग 'गति', अर्थात् गमन, ज्ञान और प्राप्त के सन्दर्भ में होता है। इसका अर्थ यह है कि जिस विद्या से परब्रह्म, अर्थात ईश्वर का सामीप्य प्राप्त हो, उसके साथ तादात्म्य स्थापित हो, वह विद्या 'उपनिषद्' कहलाती है। उपनिषद् में 'सद' धातु के तीन अर्थ और भी हैं - विनाश, गति, अर्थात ज्ञान -प्राप्ति और शिथिल करना। इस प्रकार उपनिषद् का अर्थ हुआ-'जो ज्ञान पाप का नाश करे, सच्चा ज्ञान प्राप्त कराये, आत्मा के रहस्य को समझाये तथा अज्ञान को शिथिल करे, वह उपनिषद है।' इस प्रकार जो विद्या समस्त अनर्थों के उत्पादक सांसारिक क्रिया-कलापों का नाश करती है, संसार के कारणभूत अविद्या (माया) के बन्धन को शिथिल करती है और ब्रह्म का साक्षात्कार कराती है, उसे 'उपनिषद्' कहते हैं। प्राचीन समय एवं उपनिषद् विद्या का अध्ययन एवं अध्यापन एकांत में होता था। अतः इसे रहस्य विद्या भी कहा जाता है। वेद का अन्तिम होने के कारण उपनिषदों में गंभीर विषय चिंतित है।

अतः इस इकाई में वर्णन किए गए तथ्यों का अध्ययन करने के पश्चात आप उपनिषदों को समझाते हुए प्रमुख उपनिषदों के परिचय को भी बता सकेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप—

- उपनिषद् शब्द की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- प्रमुख उपनिषदों के वर्ण्य विषय की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- ईशोपनिषद् का स्वरूप एवं महत्ता का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- वैदिक साहित्य ही उपनिषदों की पृष्ठभूमि है, इससे परिचित होंग।
- कठोपनिषद का परिचय जान सकेंगे।
- उपनिषद् शब्द के व्युत्पत्तिगत अर्थ से परिचित होंगे।
- वेदानुसार उपनिषदों के संख्या से आप परिचित होंगे।

- उपनिषदों के महत्त्व को जान सकेंगे।
- उपनिषदों के प्रतिपाद्य विषय का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

3.3 प्रमुख उपनिषदों का परिचय

उपनिषदों की संख्या लगभग 108 है जिनमें से प्रायः चौदह उपनिषदों को मुख्य उपनिषद् कहा जाता है। मुख्य उपनिषद, वे उपनिषद हैं जो प्राचीनतम हैं और जिनका पठन-पाठन अधिक हुआ है। इनका रचनाकाल ८०० ईसा पूर्व से लेकर ईसवी सन् के आरम्भ तक माना जाता है। भारत में अंग्रेजों के शासन के समय के कुछ विद्वान यद्यपि केवल दस उपनिषदों को मुख्य उपनिषद की श्रेणी में रखते थे, किन्तु अब अधिकांश विद्वान् 14 उपनिषदों को मुख्य उपनिषद् मानते हैं- क्योंकि ये 14 उपनिषद् ही वैदिक परम्परा से सम्बद्ध एवं प्राचीन हैं। इन्में ईशावास्योपनिषद्, केनोपनिषद्, कठोपनिषद्, प्रश्नोपनिषद्, मुण्डकोपनिषद्, माण्डूक्योपनिषद्, तैत्तिरीयोपनिषद्, ऐतरेयोपनिषद्, छान्दोग्योपनिषद् एवं बृहदारण्यकोपनिषद् हैं।

इसके अतिरिक्त कौषीतकि उपनिषद्, श्वेताश्वतरोपनिषद् तथा मैत्रायणीयोपनिषद् भी प्राचीन माने जाते हैं क्योंकि आचार्य शंकर ने अपने भाष्य में कौषीतकि उपनिषद् श्वेताश्वतरोपनिषद् के उद्धरण दिए हैं। अतः इन दो को लेकर प्राचीन उपनिषदों की संख्या 12 और तृतीय मैत्रायणीयोपनिषद् एवं चतुर्थ महानारायणोपनिषद् को लेकर 14 मानी जाती है। वैदिक साहित्यानुसार उपनिषदों की संख्या के विषय में मतभेद है। उपनिषदों की संख्या 108 से 223 तक मानी जाती है। मुक्तिकोपनिषद् 108, उपनिषद्वाक्यमहाकोश 223, डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने भारतीय दर्शन के इतिहास ग्रन्थ में सन् 1917 में निर्णय सागर प्रेस से प्रकाशित उपनिषदों के अनुसार इनकी संख्या 112 मानी है परन्तु स्पष्टतया 108 उपनिषदों का उल्लेख शुक्ल यजुर्वेदीय मुक्तिकोपनिषद् के प्रथम अध्याय में प्राप्त होता हैं। इस उपनिषद् में दो अध्याय हैं, जिनमें प्रथम अध्याय के 56 मन्त्रों में ऋग्वेद से 10, शुक्लयजुर्वेद से 19, कृष्णयजुर्वेद से 32, सामवेद से 16, अथर्ववेद से 31 उपनिषदों के नाम का उल्लेख किया गया है। मुक्तिकोपनिषदानुसार समग्र 108 उपनिषद् निम्नवत् हैं।

प्रमुख उपनिषद्			
ईशावास्योपनिषद्	मुण्डकोपनिषद्	छान्दोग्योपनिषद्	मैत्रायणीयोपनिषद्
केनोपनिषद्	माण्डूक्योपनिषद्	बृहदारण्यकोपनिषद्	महानारायणोपनिषद्
कठोपनिषद्	तैत्तिरीयोपनिषद्	कौषीतकि उपनिषद्	
प्रश्नोपनिषद्	ऐतरेयोपनिषद्	श्वेताश्वतरोपनिषद्	

1.ईश, 2.केन, 3.कठ, 4.प्रश्न, 5.मुण्डक, 6.माण्डूक्य, 7.तैत्तिरीय, 8.ऐतरेय, 9. छान्दोग्य, 10.बृहदारण्यक, 11.बह्म, 12.कैवल्य, 13.जाबाल, 14.श्वेताश्वतर, 15.हंस, 16. आरुणिक,

17.गर्भ, 18.नारायण, 19.परमहंस, 20.अमृतबिन्दु, 21.अमृतनाद, 22. अथर्वशिरस, 23.अथर्वशिखा, 24.मैत्रायणी, 25.कौषीतकिबाह्मण, 26.बृहज्जाबाल, 27. नृसिंहतापनीय, 28. कालाग्निरुद्र, 29.मैत्रेयी, 30.सुबाल, 31.क्षुरिका, 32.यन्त्रिका, 33. सर्वसारे, 34.निरालम्ब, 35.शुकरहस्य, 36.वज्रसूचिका, 37.तेजोबिन्दु, 38.नादबिन्दु, 39. ध्यानबिन्दु, 40.ब्रह्मविद्या, 41.योगतत्व, 42.आत्मप्रबोध, 43.नारदपरिव्राजक, 44. त्रिशिखिब्राह्मण, 45.सीता, 46.योगचूडामणि, 47.निर्वाण, 48.मण्डलब्राह्मण, 49.दक्षिणामूति, 50.शरभ, 51.स्कन्द, 52.त्रिपादविभूति महानारायण, 53.अद्वयतारक, 54.रामरहस्य, 55. रामतापनीय, 56.वासुदेव, 57.मुद्गल, 58.शाण्डिल्य, 59.पिङ्गल, 60.भिक्षक, 61.महा, 62. शारीरक, 63.योगशिखा, 64.तुरीयातीत, 65.संन्यास, 66.परमहंसपरिव्राजक, 67.अक्षमाला, 68.अव्यक्त, 69.एकाक्षर, 70.अन्नपूर्णा, 71.सूर्य, 72.अक्षि, 73.अध्यात्म, 74.कुडिक, 75. सावित्री, 76.आत्मा, 77.पाशुपत, 78.परब्रह्म, 79.अवधूत, 80.त्रिपुरातापनीय, 81.देवी, 82. त्रिपुरा, 83.कठरुद्र, 84.भावना, 85.रुद्रहृदय, 86.योगकुण्डली 87.महावाक्य, 88.पञ्चब्रह्म, 89.प्राणाग्निहोत्र, 90.गोपालतापनीय, 91.कृष्ण, 92.याज्ञवल्क्य, 93.वराह, 94.शाट्यायनीय, 95.हयग्रीव, 96.दत्तात्रेय, 97.गरुड, 98.कलिसंतरण, 99.जाबालि, 100.सौभाग्यलक्ष्मी, 101. भस्म जाबाल, 102.रुद्राक्ष जाबाल, 103.गणपति, 104.जाबालदर्शन, 105.तारसार, 106. सरस्वतीरहस्य, 107.बहृच, 108. मुक्तिकोपनिषद् हैं। अत: इन 14 प्रमुख उपनिषदों का ही परिचय यहा दिया जा रहा है –

1. ऐतरेयोपनिषद्—

ऐतरेयोपनिषद् का सम्बन्ध ऐतरेय ब्राह्मण से है। ऐतरेय ब्राह्मण के अन्तिम भाग को ऐतरेय आरण्यक कहते हैं। ऋग्वेदीय ऐतरेय आरण्यक के अन्तर्गत द्वितीय आरण्यक के अध्याय 4, 5 और 6. का नाम ऐतरेयोपनिषद् है। यह उपनिषद् ब्रह्मविद्याप्रधान है। इसमें कुल तीन अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में विश्व की उत्पत्ति का मार्मिक विवेचन है। इसमें विश्व के स्रष्टा आत्मा (ब्रह्म) बताया गया है। इस अध्याय का आधार ऋग्वेद का पुरुषसूक्त है। आत्मा (ब्रह्म) का व्यक्त रूप ही पुरुष है और यह आत्मा पुरुष के इन्द्रिय, मन और सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओं के समानान्तर है। द्वितीय अध्याय में जन्म, जीवन और मरण इन तीन अवस्थाओं का वर्णन किया गया है। तृतीय अध्याय में आत्मा के स्वरूप का विवेचन है। इसमें 'प्रज्ञान' की महिमा वर्णित है और आत्मा को प्रज्ञान का स्वरूप बताया गया है। यह प्रज्ञान ही ब्रह्म है (प्रज्ञानं ब्रह्म) और इसी से समस्त विश्व की उत्पत्ति हुई है। इस उपनिषद के प्रथम अध्याय में तीन खण्ड हैं— **पहले खण्ड में सृष्टि का जन्म, दूसरे खण्ड में मानव-शरीर की उत्पत्ति और तीसरे खण्ड में उपास्य देवों की क्षुधा-तृप्ति के लिए अन्न के उत्पादन का वर्णन किया गया है।**

प्रथम खण्ड में ऋषि कहता है कि सृष्टि के आरम्भ में एकमात्र 'आत्मा' का विराट ज्योतिर्मय स्वरूप विद्यमान था। तब उस आत्मा ने विचार किया कि सृष्टि का सृजन किया जाये

और विभिन्न लोक बनाये जायें तथा उनके लोकपाल निश्चित किये जायें। ऐसा विचार कर आत्मा ने 'अम्भ', 'मरीचि', 'मर' और 'आप:' लोकों की रचना की।

ऋग्वेद में आप: को सृष्टि के मूल क्रियाशील प्रवाह के रूप में व्यक्त किया है। वही हिरण्यगर्भ रूप है। इस हिरण्यगर्भ रूप में ब्रह्म का संकल्प बीज पककर विश्व-रूप बनता है। इसी हिरण्यगर्भ से विराट पुरुष एवं उसकी इन्द्रियों की उत्पत्ति होती है और उसकी इन्द्रियों से देवताओं का सृजन होता है। यही जीवन का विकास-क्रम है। वेद हिरण्यगर्भ रूप को पृथिवी और द्युलोक का आधार स्वीकार करते हैं- यह हिरण्यगर्भ रूप ही 'आप:' के मध्य से जन्म लेता है। अत: सृष्टि का आधारभूत हव्य है।

द्वितीय खण्ड में, मानव-शरीर की रचना का उल्लेख किया गया है। परमेश्वर द्वारा रचे गये अग्नि आदि देवता इस महासृष्टि के अनन्त सागर में डूबने-उतराने लगे। परमात्मा ने उन्हें भूख-प्यास से मुक्त कर दिया। तब देवों की याचना पर परमात्मा ने मानव-शरीर की रचना की। यह मानव-शरीर उनके लिए आश्रयस्थल बन गया। अग्निदेव वाकेन्द्रिय के माध्यम से मनुष्य के मुख में प्रविष्ट हो गये। वायु ने प्राण वायु के रूप में नासिका के छिद्रों में अपना आश्रयस्थल बना लिया। सूर्य देवता ने नेत्रों में अपना स्थान ग्रहण किया। दिक्पाल, अर्थात् दिशाओं के स्वामी मनुष्य के कानों में प्रवेश कर गये। औषधियों व वनस्पतियों ने त्वचा के रोमों में अपना स्थान बना लिया। चन्द्रमा मन के रूप में हृदय में प्रविष्ट कर गया और मृत्यु देवता अपानवायु के रूप में गुदामार्ग से शरीर में प्रवेश करके नाभिप्रदेश पर स्थित हो गया तथा जल देवता वीर्य के रूप में जननेन्द्रियों में प्रवेश कर गये। इस प्रकार ईश्वर द्वारा उत्पन्न सृष्टि के सभी देवता और लोकपाल मानव-शरीर पर अपना अधिकार जमाकर बैठ गये। ठीक उसी प्रकार, जैसे 'हिरण्य पुरुष' से उनका जन्म हुआ था, मानव-शरीर में वे उन्हीं स्थानों पर समाविष्ट हो गये। उनकी भूख-प्यास भी उन्हीं अंगों के माध्यम से पूरी होने लगी। वस्तुत: भूख-प्यास का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। वह विभिन्न अंगों-अवयवों में स्थित देव-शक्तियों के साथ ही संयुक्त है।

तृतीय खण्ड में देवताओं, अर्थात् लोकपालों के लिए अन्न की व्यवस्था करने का उल्लेख है। साथ ही 'आत्मा' के मानव-शरीर में प्रवेश का मार्ग बताया गया है। परमात्मा ने देवताओं की भूख-प्यास की सन्तुष्टि के लिए अन्न की उत्पत्ति का निर्णय किया। पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश, इन पंच महाभूतों को पकाकर अन्न का सृजन किया गया। प्रारम्भ में इस अन्न को देवताओं ने मनुष्य की विभिन्न इन्द्रियों द्वारा ग्रहण करने का प्रयत्न किया, परन्तु वे इसे स्वीकार नहीं कर सके। तब अन्त में मुख के द्वारा इसे ग्रहण करना सम्भव हो सका। तभी परमात्मा को लगा कि इसमें उसका अंश कहां है। तब ब्रह्म ने मानव-शरीर के सिर की कठोर सीमा को चीरकर उसमें प्रवेश किया। उसके प्रवेश करते ही सम्पूर्ण शरीर और शरीर में स्थित सभी देवगण चैतन्य हो उठे। बालक के सिर में जो कोमल स्थान है, उसे ही आत्मा के प्रवेश का मार्ग कहा जाता है। कपाल के इसी स्थल पर 'ब्रह्मरन्ध्र' का स्थान है, जहां पहुंचने के लिए योगी योग-साधना करते हैं। इसे सहस्त्रार, अर्थात् दल कमल भी कहते हैं। इसे 'विदृति' नाम से भी जाना जाता

है; क्योंकि इस स्थल को विदीर्ण करके ही परमात्मा ने अपने प्रवेश का मार्ग बनाया था। तब मानव-देह में उत्पन्न हुए उस जीव ने परब्रह्म परमेश्वर का सूक्ष्म रूप पहचाना और कहा 'इदन्द्र' (इदम्+द=इसको मैंने देख लिया), अर्थात् परमात्मा से साक्षात्कार को ही 'इदन्द्र' कहा गया। इसी का दूसरा रूप 'इन्द्र' है, अर्थात् ऐसी अगोचर वस्तु, जिसे आंखों से देखा न जा सके, केवल हृदय में जिसका अनुभव किया जा सके। यह शरीर निश्चित रूप से परमात्मा का आवास है। इस शरीर में तीन स्वचालित तन्त्र और तीन ग्रन्थियों में आत्मा का सीधा नियन्त्रण रहता है- मस्तिष्क में सहस्त्रार, हृदय तथा नाभि ग्रन्थि। इन्हें ही शरीर, ब्रह्माण्ड और परम व्योम, स्थूल, सूक्ष्म तथा पालन का आधार माना जा सकता है।

द्वितीय अध्याय में एक ही खण्ड है। इसमें जीव के तीन जन्मों का विवरण प्राप्त होता है। तृतीय अध्याय में उपास्य देव के स्वरूप को निश्चित किया गया है। जिस आत्मा की हम उपासना करते हैं, वह कौन है ? जिसके द्वारा यह प्राणी देखता है, सुनता है, विविध ग्रन्थों को सूंघता है, बोलता है तथा स्वाद का रसास्वादन करता है, वह आत्मा कौन है?

2. कौषीतकि उपनिषद्—

यह कौषीतकि ब्राह्मण से सम्बद्ध है। कौषीतकि ब्राह्मण से सम्बद्ध कौषीतकि आरण्यक है। कौषीतकि आरण्यक के तृतीय से षष्ठ अध्याय तक को कौषीतकि उपनिषद् कहते हैं। इसे ही कौषीतकि ब्राह्मणोपनिषद् भी कहते हैं। इस उपनिषद् में कुल चार अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में मृत्यु के बाद जीवात्मा के प्रयाण के देवयान और पितृयान नामक मार्गों का वर्णन है। इसमें चित्र नामक क्षत्रिय राजा ने उद्दालक आरुणि को परलोक की शिक्षा दी है। राजा चित्र यज्ञ में आरुणि को पुरोहित बनाता है। आरुणि अपने पुत्र श्वेतकेतु को भेजता है। वहाँ पहुँचने पर चित्र ने पूछा कि लोक में क्या ऐसा कोई गुप्त स्थान है, जहाँ तुम मुझे रख सकोगे ? क्या लोक में दो मार्ग हैं, जिनमें से एक में तुम मुझे लगा दोगे ? श्वेतकेतु ने कहा कि मुझे ज्ञात नहीं, आचार्य से प्रश्न पूछूंगा। यह कहकर उसने घर लौट कर पिता से प्रश्न पूछा। पिता ने कहा कि मुझे भी उत्तर ज्ञात नहीं है। तब दोनों चित्र के पास जाते हैं। चि ने उन्हें बताया कि कुछ लोग अच्छे कर्मों के बल से ब्रह्मलोक चले जाते हैं और ब्रह्ममय हो जाते हैं। कुछ लोग स्वर्ग एवं नकर में जाते हैं और कुछ मरने के बाद मृत्युलोक में जन्म लेते हैं।

द्वितीय अध्याय में आत्मा के प्रतीक प्राण के स्वरूप का विवेचन है। प्राण ही ब्रह्म है और मन प्राणरूपी ब्रह्म का दूत है, नेत्र रक्षक हैं, श्रोत्र द्वारपाल हैं और वाणी दासी है। जो इनके स्वरूप को जानता है, वही इन्द्रियों पर अधिकार रख सकता है। तृतीय अध्याय में इन्द्र प्रतर्दन को प्राण और प्रज्ञा का उपदेश देते हैं। इसी प्रसङ्ग में प्राणतत्व का विशद विवेचन किया गया है। चतुर्थ अध्याय में काशिराज अजातशत्रु बालाकि को पर ब्रह्म (ब्रह्मविद्या) का उपदेश देते हैं।

3. ईशोपनिषद्—

शुक्लयजुर्वेद की काव्य एवं वासनेयी संहिता का चालीसवाँ अध्याय 'ईशावास्योपनिषद्' के नाम से प्रसिद्ध है, दोनों में अन्तर यह है कि काण्वसंहिता के चालीसवें

अध्याय में अठारह मन्त्र हैं और वाजसनेयी संहिता में सत्रह मन्त्र हैं। इस अध्याय का प्रथम मन्त्र 'ईशावास्यम्' से प्रारम्भ होता है, अत: इसका नाम 'ईशावास्योपनिषद्' है। ईशावास्योपनिषद् को ही 'ईशोपनिषद्' भी कहते हैं। यह लघुकाय उपनिषद् है किन्तु महत्व की दृष्टि से सर्वोपरित है। इसमें वेद का सार एवं गूढ़तत्व का विवेचन हुआ है। आत्मा के स्वरूप का जितना स्पष्ट विवेचन इस उपनिषद् में हुआ है, उतना किसी अन्य उपनिषद् में नहीं मिलता है। आत्मकल्याण के लिए ज्ञान और कर्म दोनों के अनुष्ठान को आवश्यक बताया गया है। इसमें निष्काम कर्म करते हुए सौ वर्ष तक जीने की कामना व्यक्त की गयी है। इसमें विद्या और अविद्या, सम्भूति और असम्भूति का विवेचन अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

निष्काम कर्म, परमार्थ ज्ञान की प्रधानता, कर्म और ज्ञान का समन्वय और ईश्वर की सर्वव्यापकता इसका प्रतिपाद्य विषय है । यह लघुकाय किन्तु महत्त्वपूर्ण उपनिषद् है । यह ज्ञान, कर्म और उपासना का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करता है । अतः इसे महत्त्वपूर्ण दार्शनिक ग्रन्थ माना गया है ।

4. बृहदारण्यकोपनिषद्—

शुक्लयजुर्वेद से सम्बद्ध शतपथ ब्राह्मण के अन्तिम छ: अध्यायों को बृहदारण्यक कहते हैं। इसमें आरण्यक और उपनिषद् दोनों ही मिश्रित है, इसलिए इसका नाम 'बृहदारण्यकोपनिषद्' पड़ा। यह विशालकाय एवं प्राचीनतम उपनिषद् है। इस उपनिषद् में तीन भाग हैं और प्रत्येक भाग में दो-दो अध्याय हैं। इस प्रकार कुल छ: अध्याय हैं। इनमें प्रथम भाग को मधुकाण्ड, द्वितीय भाग को याज्ञवल्क्यकाण्ड और तृतीय भाग को खिलकाण्ड कहते हैं। प्रत्येक अध्याय ब्राह्मणों में विभाजित है। प्रथम अध्याय में छ: ब्राह्मण, द्वितीय अध्याय में छ: ब्राह्मण, तृतीय में नौ ब्राह्मण, चतुर्थ अध्याय में छ: ब्राह्मण, पंचम में पन्द्रह ब्राह्मण और षष्ठ अध्याय में पाँच ब्राह्मण हैं।

प्रथम काण्ड के प्रथम अध्याय में अश्वमेध यज्ञ की रहस्यात्मकता की व्याख्या, प्राण को आत्मा का प्रतीक मानकर आत्मा (ब्रह्म) से जगत् की उत्पत्ति, प्राण की श्रेष्ठता विषय रोचक आख्यान तथा आत्मा (ब्रह्म) की सर्वव्यापकता का वर्णन है जो प्रत्येक शरीर में जीवात्मा के रूप में दृष्टिगोचर होता है। द्वितीय अध्याय में गाग्र्य एवं काशिराज अजातशत्रु के माध्यम से आत्मस्वरूप का विवेचन किया गया है। गाग्र्य ने काशिराज अजातशत्रु से कहा कि मैं ब्रह्म की व्याख्या करूँगा। उन्होंने सूर्य, चन्द्र, विद्युत, वायु, अग्नि, जल, आत्मा में समन्वित पुरुष को ब्रह्म बताया, किन्तु अजातशत्रु ने कहा कि ब्रह्म में ये सब तो समाहित हैं, किन्तु इससे ब्रह्म का स्वरूप ज्ञात नहीं हो सकता। जिस प्रकार अग्नि से चिनगारियाँ निकलती हैं, उसी प्रकार ब्रह्म से सभी प्राण एवं प्राणी उद्भूत होते हैं। वह ब्रह्म ही सर्वोच्च सत्ता एवं परमसत्य है। असीम-ससीम, साकार-निराकार, सविशेष-निर्विशेष भेद से ब्रह्म के दो रूप हैं। द्वितीय सम्वाद याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी का है। वानप्रस्थ ग्रहण करते समय मैत्रेयी ने धन की अभिलाषा न कर अमरत्व प्राप्ति का उपाय पूछा। याज्ञावल्क्य ने विविध उदाहरणों द्वारा ब्रह्म की सर्वमयता का उपदेश दिया। इसमें मधुविद्या का भी उपदेश है।

द्वितीय काण्ड के प्रथम अध्याय (तृतीय अध्याय) में राजा जनक की सभा में याज्ञवल्क्य के द्वारा सभी ब्रह्मवादियों के पराजित होने का वर्णन है। इसमें चार आध्यात्मिक वाद हैं। प्रथम में याज्ञवल्क्य के द्वारा समस्त ब्रह्मवादियों के पराजित होने का वर्णन है इस वाद में यह सिद्ध किया गया कि ब्रह्म यद्यपि अज्ञेय हैं तथापि उसका ज्ञान साध्य है। द्वितीय वाद में राजा जनक और याज्ञवल्क्य का संवाद है। इस सम्वाद में याज्ञवल्क्य ऋषियों द्वारा प्रस्तुत 'प्राण ही ब्रह्म है' इस प्रकार के छ: सिद्धान्तों का खण्डन करते हैं और आत्मा (ब्रह्म) को अगोचर, अविनाशी एवं सर्वेश्वर बताते हैं। तृतीय सम्वाद में भी जनक और याज्ञवल्क्य का संवाद है। इसमें जीवात्मा की जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, जन्म, मरण और मोक्ष इन छ: अवस्थाओं का वर्णन है। चतुर्थ सम्वाद याज्ञवल्क्य और वचक्नु की कन्या गार्गी का सम्वाद है। द्वितीय काण्ड के द्वितीय अध्याय (चतुर्थ अध्याय) में याज्ञवल्क्य और जनक का सम्वाद है, जिसमें जनक महर्षि याज्ञवल्क्य से तत्वज्ञान की शिक्षा ग्रहण करते हैं। इसी अध्याय में याज्ञवल्क्य और उनकी पत्नी कात्यायनी तथा मैत्रेयी का सम्वाद वर्णित है, जिसमें याज्ञवल्क्य मैत्रेयी को ब्रह्मज्ञान का उपदेश देते हैं।

तृतीय काण्ड (पंचम और षष्ठ अध्याय) परिशिष्ट भाग है।इसके (पंचम) अध्याय में पन्द्रह खण्ड हैं। जो एक दूसरे से असम्बद्ध हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये अलग-अलग समय की रचनाएँ हैं। इसमें ब्रह्म, प्रजापति, गायत्री, प्राण परलोक आदि के सम्बन्ध में विचार किया गया है। द्वितीय (षष्ठ) अध्याय में श्वेतकेतु एवं प्रवाह का दार्शनिक सम्वाद, प्राण की श्रेष्ठता, प॑ंचाग्नि विद्या का महत्व, मन्त्रविद्या और उसकी परम्परा, सन्तानोत्पत्ति विज्ञान पुनर्जन्म के सिद्धान्त आदि विविध विषयों का विवेचन है।

5. तैत्तिरीयोपनिषद् —

कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा से सम्बद्ध तैत्तिरीय ब्राह्मण का अन्तिम भाग तैत्तिरीय आरण्यक कहलाता है। तैत्तिरीय आरण्यक के दस प्रपाठकों में सप्तम, अष्टम एवं नवम प्रपाठकों को तैत्तिरीयोपनिषद् कहते हैं। इस उपनिषद् में तीन अध्याय हैं, जिन्हें क्रमश: शिक्षावल्ली, ब्रह्मानन्दवल्ली एवं भृगुवल्ली कहते हैं। प्रथम शिक्षावल्ली में बारह अनुवाक हैं, ब्रह्मानन्दवल्ली में नौ और भृगुवल्ली में दस अनुवाक हैं। शिक्षावल्ली में वर्ण, स्वर, मात्रा, बल आदि के विवेचन के साथ वैदिक मन्त्रों के उच्चारण के नियम तथा स्नातक के लिए उपयोगी शिक्षाओं का निरूपण है। द्वितीय ब्रह्मानन्दवल्ली में ब्रह्मविद्या का निरूपण है।

इसमें ब्रह्म से स्वरूप का वर्णन है। ब्रह्म आनन्दरूप हैं, उसी से समस्त विश्व की सृष्टि हुई है। यह अन्न, प्राण, मन, विज्ञान और आनन्द रूप है, किन्तु इसका निवास आनन्दमय कोश है, जहाँ ब्रह्मानन्द को प्राप्त कर मनुष्य परमानन्द का अनुभव करता है। ब्रह्म के स्वरूप को जान लेने पर मनुष्य अपने ही समान सबको समझने लगता है। सारा भेदभाव दूर हो जाता है और वह ब्रह्म से तादात्म्य स्थापित कर लेता है।

तृतीय अध्याय भृगुवल्ली है। इसमें भृगु और वरुण का सम्वाद वर्णित है। वरुण अपने पुत्र भृगु को ब्रह्म का स्वरूप समझाते हुए कहते हैं कि जिससे ये समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं, जिससे

जीते हैं और अन्त में जिसमें प्रवेश कर जाते हैं, वही ब्रह्म है। इसमें ब्रह्मप्राप्ति के साधन रूप तप का वर्णन है और 'पंचकोशों' का विवेचन वरुण एवं भृगु के सम्वाद के रूप में हुआ है। इसमें अतिथि सेवा का भी महत्व वर्णित है।

6. कठोपनिषद—

यह कृष्णयजुर्वेद की कठखाखा का 'कठोपनिषद' है। इसमें कुल दो अध्याय और छ: बल्लियाँ हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इसका प्रथम अध्याय ही मूल उपनिषद् है, दूसरा अध्याय बाद में जोड़ा गया है, क्योंकि इसमें योग-सम्बन्धी विकसित विचारों एवं भौतिक पदार्थों की असत्यता सम्बन्धी विचारों के कारण परवर्ती सन्निवेश जान पड़ता है। इसमें ऐहिक जगत् की नश्वरता और ब्रह्म की नित्यता को प्रतिपादित किया गया है।

प्रथम अध्याय में नचिकेता और यम के उपाख्यान द्वारा आत्मा और ब्रह्म की व्याख्या की गयी है। नचिकेता पिता की आज्ञा से यम के पास पहुँचता है। यमराज उससे तीन वर माँगने को कहता है। नचिकेता दो वर माँगने के पश्चात् ''क्या आत्मा का अस्तित्व मृत्यु के बाद भी रहता है या नहीं ?'' यह तीसरा वर मांगता है। यम कहता है कि वह एक सूक्ष्मतत्व है, दूसरा वर मांग लो, और उसे नाना प्रकार के सांसारिक प्रलोभन देता है, किन्तु नचिकेता अपने प्रश्न पर दृढ़ रहता है और अन्त में उसके विशेष आग्रह पर यमराज आत्म स्वरूप का विवेचन करता हुआ उसे अर्द्धततत्व का मार्मिक उपदेश देता है और नचिकेता वर प्राप्त कर अपने घर लौट आता है। प्रथम अध्याय को द्वितीय वल्ली में श्रेय एवं प्रेय का विवेचन है। श्रेय एक वस्तु है और प्रेय दूसरी वस्तु है। इनमें जो श्रेय को ग्रहण करता है, उसका कल्याण होता है और जो प्रेय को अपनाता है, वह अपने लक्ष्य से पथभ्रष्ट हो जाता है।

द्वितीय अध्याय में प्रकृति और पुरुष दोनों को ही परमात्मा का स्वरूप बताया गया है। यह आत्मा सर्वव्यापक है और समस्त प्राणियों में उसका निवास है। जिस प्रकार वायु सर्वत्र व्याप्त होकर प्रत्येक स्थान पर उपलब्ध है और जिस प्रकार प्रकाश सब जगह व्याप्त रहते हुए बाह्य दोषों से मुक्त रहता है, उसी प्रकार आत्मा भी सर्वत्र व्याप्त रहते हुए बाह्य दोषों से मुक्त निर्विकार बना रहता है। आत्मा को विभु कहते हैं। उसकी प्राप्ति का साधन योग है।

7. श्वेताश्वतरोपनिषद्—

यह उपनिषद् कृष्णयर्जुवेद से सम्बद्ध श्वेताश्वतर संहिता का एक अंश है। यह कठोपनिषद् के बाद की रचना है, क्योंकि उससे बहुत सा अंश इसमें लिया गया है, यहाँ तक कि कुछ वाक्य ज्यों के त्यों प्रस्तुत हैं। विषय वस्तु से यह प्रतीत होता है कि यह उस समय की रचना है, जब सांख्य और वेदान्त का पार्थक्य नहीं हुआ था। इसमें कुल छ: अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में परमात्मा साक्षात्कार का उपाय ध्यान बताया गया है। द्वितीय अध्याय में योग का विस्तृत विवेचन है। तृतीय से पंचम अध्यायों में सांश्व एवं शैव सिद्धान्तों का विवेचन है। अन्तिम अध्याय में गुरु भक्ति का महत्व प्रतिपादित है। भक्तितत्व का विवेचन भी इस उपनिषद में है। इस उपनिषद् में सांख्य दर्शन के मौलिक सिद्धान्त प्रतिपादित हैं। सत्व, रजस् और तमस् इन तीनों गुणों की

साम्यावस्था ही प्रकृति है। यह प्रकृति ही ब्रह्म की माया का दूसरा रूप है। इसमें प्रकृति को माया और महेश्वर को मायी कहा गया है। क्या वह माया वेदान्त की माया से भिन्न है, वेदान्त के अनुसार जगत् मिथ्या है, किन्तु इस उपनिषद् में जगत् के मिथ्यात्व की कल्पना नहीं है। कल्पान्त में ब्रह्म के द्वारा ही जगत् की सृष्टि और उसका प्रलय होता है। इस उपनिषद् में शिव को परमेश्वर कहा गया है। यह शिव ही समस्त प्राणियों में व्याप्त है और उसके सम्बन्ध में ज्ञान होने पर समस्त बन्धनों से मुक्ति मिल जाती है।

8. मैत्रायणी उपनिषद्—

यह उपनिषद् कृष्णयजुर्वेद की मैत्रायणी संहिता से सम्बन्धित है। प्राचीनतम उपनिषदों की भांति यह गद्यबद्ध है। इसमें वैदिक भाषा के कोई चिà नहीं दिखाई देते। भाषा शैली की दृष्टि से यह महाकाव्यकाल की रचना प्रतीत होती है। इसमें कुल सात अध्याय हैं, जिनमें षष्ठ अध्याय के अन्तिम आठ प्रपाठक और सप्तम अध्याय परिशिष्ट रूप है। इसमें प्राचीन उपनिषदों के सिद्धान्तों का संक्षिप्त विवरण, सांख्य एवं बौद्ध दर्शनों के लिए विचारों का आकलन योग के "षडङ्गों का विवेचन तथा हठयोग के मन्त्र सिद्धान्तों का विवरण प्राप्त होता है। इसका मुख्य विषय आत्मरूप का विवेचन है। इसमें वेद-विरोधी सम्प्रदायों का भी उल्लेख मिलता है।

इस उपनिषद् का विषय विवेचन तीन प्रश्नों के उत्तर के रूप में प्रस्तुत किया गया है। प्रथम प्रश्न है कि 'आत्मा भौतिक शरीर में किस प्रकार प्रवेश पाता है ?' इसका उत्तर दिया गया है कि 'स्वयं प्रजापति ही स्वरचित शरीर में चेतनता प्रदान करने के उद्देश्य से पंचप्राणवायु के रूप में प्रविष्ट होता है।' द्वितीय प्रश्न है कि 'यह परमात्मा किस प्रकार भूतात्मा बनता है ?' इस प्रश्न का उत्तर सांख्य सिद्धान्तों पर आधारित है। 'आत्मा प्रकृति के गुणों से पराभूत होकर अपने को भूल जाता है। तदनन्तर आत्मज्ञान एवं मोक्ष के लिए प्रयास करता है।' तृतीय प्रश्न है कि 'इस दु:खात्मक स्थिति से मुक्ति किस प्रकार मिल सकती है?' इस प्रश्न का समाधान स्वतन्त्र रूप से दिया गया है - 'ब्राह्मण धर्म का पालन करने वाले वर्णाररम धर्म के अनुयायी व्यक्ति ही ज्ञान, तप और निदिध्यासन से ब्रह्मज्ञान और मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। ब्राह्मण युग के प्रधान देवता अग्नि, वायु और सूर्य, तीन भावरूप सत्ताएँ काल, प्राण और अन्न तथा तीन लोकप्रिय देवता ब्रह्मा, विष्णु, महेश ये सभी ब्रह्म के रूप बताये गये हैं। इस उपनिषद् का अन्तिम भाग परिशिष्ट रूप है, जिसमें विश्व को सृष्टि की उपाख्यान वर्णित है। इसमें प्रकृति के तत्व, रजस् और तमस् इन तीन गुणों का ब्रह्मा, विष्णु और रूद्र से बताया गया है। इसमें ऋग्वैदिक एवं सांख्य सिद्धान्तों का समन्वय है।

9. महानारायणोपनिषद्—

कृष्णयजुर्वेद से सम्बद्ध तैत्तिरीय आरण्यक के दशम प्रपाठक को 'महानारायणोपनिषद्' कहा जाता है। यह सायण भाष्य के साथ प्रकाशित है। इसमें द्रविणों के अनुसार 64, आन्ध्रों के अनुसार 80, कर्णाटकों के अनुसार 74 अनुवाक हैं।इस प्रकार इसके तीन विभिन्न पाठ मिलते हैं, किन्तु इनमें आन्ध्र पाठ की ही मान्यता है। इसे 'याज्ञिक्युपनिषद्' भी कहते हैं। कुछ विद्वानों की

धारणा है कि यह तैत्तिरीय आरण्यक में परवर्ती काल में जोड़ा गया है, किन्तु मैत्रायणी उपनिषद् से प्राचीन है। इस उपनिषद् में नारायण का परमात्मा तत्व के रूप में उल्लेख है। इसमें आत्मा का विशद विवेचन है। इस उपनिषद् के अनुसार 'एक ही परमसत्ता है, वही सब कुछ है।'26 इसमें सत्य, तपस्, दया, दान, धर्म, अग्निहोत्र, यज्ञ आदि विविध विषयों की महत्वपूर्ण विवेचना है। इसमें तत्वज्ञानी के जीवन का यज्ञ के रूप में चित्रण है, जिसके अनुसार इसकी 'याज्ञिकी उपनिषद्' नाम की सार्थकता प्रतीत होती है।

10. छान्दोग्योपनिषद्—

सामवेद की तवल्कार शाखा का छान्दोग्य ब्राह्मण है जिसमें दस अध्याय हैं। प्रारम्भ के दो अध्यायों को छोड़कर शेष आठ अध्यायों को 'छान्दोग्योपनिषद्' कहा जाता है। इस उपनिषद् के आठ अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय में अनेक खण्ड हैं। प्रथम अध्याय में तेरह खण्ड, द्वितीय में चौबीस, तृतीय में उन्नीस, चतुर्थ में सत्रह, पंचम में चौबीस, षष्ठ में सोलह, सप्तम में छब्बीस और अष्टम अध्याय में पन्द्रह खण्ड हैं। इसमें गूढ़ दार्शनिक तत्वों का निरूपण आख्यायिकाओं के रूप में किया गया है। इसके प्रथम एवं द्वितीय अध्यायों में ओउम् (ऊँ), उद्गीथ एवं साम के गूढ़ रहस्यों का मार्मिक विवेचन है। द्वितीय अध्याय में आउम् की उत्पत्ति, धार्मिक जीवन की तीन अवस्थाएँ तथा ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य एवं यतिधर्म का विवेचन है।

इस अध्याय के अन्त में ''शैव उद्गीथ'' का विवेचन है। उद्गीथ का अर्थ है 'उच्चस्वर से गाया जानेवाला गीत।' इसमें भौतिक स्वार्थ की पूर्ति के लिए यज्ञ का विधान तथा सामगान करने वाले व्यक्तियों पर व्यङ्ग्य किया गया है।

तृतीय अध्याय में वैश्वानर ब्रह्म का प्रतिपादन है, जिसका व्यक्त रूप सूर्य है। सूर्य की देवमधु रूप में उपासना, गायत्री का वर्णन, आङ्गिरस द्वारा देवकी नन्दन कृष्ण को अध्यात्म-शिक्षा और अन्त में अण्ड से सूर्य की उत्पत्ति का वर्णन है। चतुर्थ अध्याय में सत्यकाम जाबाल की कथा, रैक्य का दार्शनिक तथ्य, उपकौशल को जाबाल द्वारा ब्रह्मज्ञान का उपदेश आदि का विस्तृत विवेचन है। इसमें ब्रह्म को प्राप्त करने के साधन बताये गये हैं।

पंचम अध्याय में बृहदारण्यक के षष्ठ अध्याय के दोनों कथाओं का एक प्रकार से आवर्तन है। इसमें श्वेतकेतु और प्रवाहण जैबलि का दार्शनिक सम्वाद तथा कैकय अश्वपति के सृष्टि विषयक तथ्यों का विशद वर्णन किया गया है, जिनमें छ: दार्शनिक विद्वानों के आत्म विषय चिन्तनों का विवरण है।

षष्ठ अध्याय में श्वेतकेतु का आख्यान वर्णित है, जिसमें उद्दालक आरुणि अपने पुत्र श्वेतकेतु को ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया है। श्वेतकेतु ने वेदों का अध्ययन तो कर लिया, किन्तु ब्रह्मज्ञान नहीं सीखा था, तब उसके पिता आरुणि ने उसे ब्रह्म से ही चराचर जगत् की उत्पत्ति का वृत्तान्त सुनाते हुए अन्न, जल और तेज से मन, प्राण और वाणी की उत्पत्ति बतायी है। तदनन्तर आरुणि ने श्वेतकेतु से वटवृक्ष का फल तोड़ने को कहा। फल तोड़ने पर उसमें से नन्हें-नन्हें बीज निकले, तब पिता ने उस बीज को भी फोड़ने को कहा। बीज के फोड़े जाने पर आरुणि ने कहा पुत्र

''तुमने इसमें क्या देखा है ?'' पुत्र ने कहा कि ''मुझे कुछ भी नहीं दिखायी दे रहा है।'' तब पिता ने पुत्र को समझाया कि ''पुत्र! जिस बीज के भीतर तुम्हें कुछ भी नहीं दिखायी देता है, उसी में वह महान् वटवृक्ष है। इसी प्रकार ब्रह्म में ही सारा चराचर जगत् निहित है। 'तत्त्वमसि' यह महावाक्य उपनिषदों के चार महावाक्यों में एक है।

इस महावाक्य की व्याख्या करते हुए आरुणि श्वेतकेतु से कहता है कि वह अणु जो शरीर में आत्मा है, सत् है, सर्वात्मा है, वही आत्मा है, वही वह सत् है, हे श्वेतकेतो! तू वही है। श्वेतकेतु पुन: प्रश्न करता है कि ''वह आत्मा द्रष्टव्य क्यों नहीं है?'' इसका उत्तर देते हुए आरुणि कहते हैं कि ''जिस प्रकार जल में नमक डाल दिया जाय तो वह उसमें ऐसा घुल जाता है कि वह दिखायी नहीं देता, इसी प्रकार आत्मा सब में व्याप्त है, किन्तु वह इस प्रकार उनमें घुल-मिल गया है कि वह अलग से दिखायी नहीं देती है।''

सप्तम अध्याय में नारद और सनत्कुमार का वृत्तान्त है। नारद ब्रह्मविद्या की शिक्षा के लिए सनत्कुमार के पास जाते हैं। सनत्कुमार ने नाम, वाक्, मन, संकल्पन, चित्त, ध्यान, विज्ञान, बल, अन्न, जल, तेज, आकाश, स्मरण, आशा, प्राण में से प्रत्येक को उत्तरोत्तर बढ़कर बताया और कहा कि सब कुछ प्राण में ही समाहित है और प्राण के न रहने पर मनुष्य का ऐहलौकिक जीवन नहीं रह जाता। अन्त में ब्रह्म के अन्तिम रूप 'भूमन्' (असीम) का महत्व बताते हुए कहते हैं कि ''भूमा ही सब कुछ है, वही शरीर में स्थित आत्मा है, वह अमृत है और अल्प ही मत्र्य है। अन्तिम अध्याय में शरीर और विश्व में स्थित आत्मा की तीन अवस्थाओं जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति का भी निर्देश है। तृतीय अवस्था में ही आत्मा के सच्चे स्वरूप का ज्ञान होता है। इस अध्याय के अन्त में इन्द्र और विरोचन की कथा वर्णित है। इस आख्यान में आत्म प्राप्ति के व्यावहारिक उपायों का संकेत किया गया है।

11. केनोपनिषद्—

इस उपनिषद् का प्रथम श्लोक "केनेषितम्" है, अतः इसका नाम "केनोपनिषद्" पड गया । इसमें चार खण्ड हैं । प्रथम दो खण्डों में ब्रह्म के रहस्यमय रूप एवं अमृतत्व का विवेचन तथा तृतीय एवं चतुर्थ खण्डों में उमा हैमवती के समधुर आख्यान प्रस्तुत किए गए हैं । इस उपनिषद् को "जैमिनीयोपनिषद्" और "तवलकारोपनिषद्" भी कहा जाता है । यह सामवेद की जैमिनीय शाखा से सम्बद्ध है। इसी को 'केनोपनिषद्' और 'जैमिनीयोपनिषद्' भी कहते हैं। इसके दो भाग हैं। प्रथम भाग पद्यमय है। यह वेदान्त के विकास काल की रचना प्रतीत होती है। द्वितीय भाग गद्यमय है और अत्यन्त प्राचीन है। प्रत्येक भाग में दो खण्ड हैं। इस प्रकार कुल चार खण्ड हैं। प्रथम खण्ड में उपास्य ब्रह्म और निर्गुण ब्रह्म में अन्तर बताया गया है। द्वितीय खण्ड में ब्रह्म के रहस्यमय स्वरूप का विवेचन है। तृतीय एवं चतुर्थ खण्डों में उमा हैमवती के रोचक आख्यान द्वारा पर ब्रह्म की सर्वशक्तिमत्ता का विवेचन है।

ब्रह्म के स्वरूप का विवेचन करते हुए हैमवती उमा ने देवताओं को बताया कि ''यही ब्रह्म है जिनके कारण तुम लोगों की इतनी महिमा है।'' वायु, अग्नि आदि उसी ब्रह्म के विकसित

रूप हैं। बिना उसकी इच्छा के ये कुछ भी नहीं कर सकते। सगुण और निर्गुण ब्रह्म का पार्थक्य बताते हुए उमा ने कहा कि ''जिसका वर्णन वाणी से नहीं किया जा सकता, किन्तु जिसकी शक्ति से वाणी बोलती है, वही ब्रह्म है और जिनकी तुम उपासना करते हो, वह ब्रह्म नहीं है।'' ब्रह्म ज्ञान की सीमा से परे असीम है। वह ज्ञेय-अज्ञेय दोनों से भिन्न है। यह जीवात्मा उस पर ब्रह्म का अंश है। सगुण ब्रह्म उपास्य है और निर्गुण ब्रह्म अज्ञेय तथा अनिर्वचनीय है।

12. प्रश्नोपनिषद्—

यह अथर्ववेद की पिप्पलाद शाखा से सम्बद्ध है। इसमें सुकेशा, भार्गव, आश्वलायन, सत्यकाम, सौर्यायणी और कबन्धी ये छ: ऋषि महर्षि पिप्पलाद से अध्यात्मविषयक प्रश्नों का उत्तर पूछते हैं। इसी कारण इसका नाम 'प्रश्नोपनिषद्' है। ऋषियों द्वारा पूछे गये छ: प्रश्न -

प्रथम प्रश्न का सम्बन्ध कात्यायन का है –

समस्त प्रजा की उत्पत्ति कैसे और कहाँ से हुई है ?''

द्वितीय प्रश्न भार्गव का है –

''कितने देवता प्रजाओं को धारण करते हैं, कौन उन्हें प्रकाशित करता है और उनमें कौन सबसे श्रेष्ठ है ?'' .

तृतीय प्रश्न आश्वलायन का है –

''प्राणों की उत्पत्ति कहाँ से होती है? और उसका शरीर में आवागमन एवं उत्क्रमण किस प्रकार होता है ?''

चतुर्थ प्रश्न गाग्र्य सौर्यायणी का है –

''आत्मा की जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओं का आध्यात्मिक रहस्य क्या है ?''

पंचम प्रश्न सत्यकाम का है –

''ऊँ 'आ उम्' की उपासना का क्या रहस्य है ? उसके ध्यान से किस लोक की प्राप्ति होती है ?''

षष्ठ प्रश्न सुकेशा का है –

''षोडशकला सम्पन्न पुरुष का स्वरूप क्या है ?''

इन छहों प्रश्नों का उत्तर महर्षि पिप्पलाद ने छहों शिष्यों को दिया है। उनके उत्तर अध्यात्मवाद के प्राण हैं। इस उपनिषद् की शैली अत्यन्त वैज्ञानिक और महत्वपूर्ण है।

13. मुण्डकोपनिषद्—

मुण्डक" शब्द का अर्थ है-घुटे हुए सिर वाला । यह अथर्ववेद की शौनक शाखा का उपनिषद् है। इसका मुण्डक नाम इसलिए पड़ा कि सम्भवत: इस सम्प्रदाय के लोग अपना शिर मुण्डित रखते थे। इसमें कुल तीन मुण्डक हैं। प्रत्येक मुण्डक में दो-दो खण्ड हैं। इस उपनिषद् में ब्रह्मा के द्वारा अपने पुत्र अथर्वा को ब्रह्मविद्या का उपदेश देने का वर्णन है। इसमें परा और अपरा नामक दो विद्याओं का विवेचन है। जिसके द्वारा अक्षर ब्रह्म का ज्ञान हो सके, उसे पराविद्या कहते हैं और वेद-देवाङ्ग आदि को अपराविद्या कहते हैं। यह अक्षर ब्रह्मज्ञान की सीमा से परे अज्ञेय है। इस अक्षर ब्रह्म से ही जगत् की सृष्टि होती है। इस उपनिषद् में द्वैतवाद का स्पष्ट संकेत मिलता है।

दो पक्षियों के रूपक द्वारा जीव और ब्रह्म का भेद समझाया गया है -''परस्पर सख्यभाव से एक साथ रहने वाले दो पक्षी एक ही वृक्ष पर रहते हैं। उनमें से एक (जीवात्मा) उस पिप्पल के वृक्ष के फलों का स्वाद लेकर उसका भोग करता है और दूसर भोग न करता हुआ केवल देखता रहता है। इसमें याज्ञिक अनुष्ठान और कर्मकाण्ड की हीनता दिखाई गई है, जबकि ब्रह्मज्ञान की श्रेष्ठता प्रमाणित की गई है। सांख्य और वेदान्त के सिद्धान्त भी इसमें प्रतिपादित किया गया है। द्वैतवाद का प्रसिद्ध मन्त्र इसमें दिया गया है---"द्वा सुपर्णा सयुजा सखायः।

14. माण्डूक्योपनिषद्—

इसमें कुल बारह वाक्य हैं, यह गद्यात्मक है। इसमें ओड्कार का रहस्य बताया गया है। इसमें ब्रह्म और आत्मविषयक विवेचन हुआ है। इसमें ब्रह्म (आत्मा, चैतन्य) की चार अवस्थाएँ बताई गई हैं - जाग्रत्, स्वप्न्, सुषुप्ति और तुरीय। जाग्रत् अवस्था में आत्मा इन्द्रिय विषयों का भोग करता है। इसे वैश्वानर कहते हैं। स्वप्नावस्था में अपनी पूर्व अवस्थाओं का ज्ञान रहता है, इसे तेजस् कहते हैं। सुषुप्त अवस्था में उसे कोई इच्छा नहीं रहती, केवल ज्ञानमात्र रहता है। उस अवस्था में आत्मा प्रज्ञानधन और आनन्दमय होता है। इसे 'प्राज्ञ' कहते हैं। तुरीयावस्था में ब्रह्म निर्विकार एवं अद्वैतावस्था में रहता है। इस अवस्था में ब्रह्म शिवरूप हो जाता है। यही चैतन्य आत्मा का विशुद्ध रूप है। इस उपनिषद् के अनुसार 'ओउम्' के अ उ म् - ये तीन वर्ण क्रमश: ब्रह्म की तीन अवस्थाओं के द्योतक हैं और पूरा ओउम् चतुर्थ अवस्था को द्योतित करता है।

अभ्यास प्रश्न:-

1. सबसे बड़ा उपनिषद कौन सा है?

क. बृहदारण्यक उपनिषद्

ख. माण्डूक्योपनिषद्

ग. मुण्डकोपनिषद्

घ. प्रश्नोपनिषद्

2. मुख्य उपनिषद् कितने हैं ?

क. 108

ख. 11

ग. 14

घ. 10

3. वैदिक वाड्.मय के अंतिम भाग कहलाते हैं।

क. संहिता

ख. उपनिषद्

ग. वेद

घ. वेदांग

4. अंतिम पुरूषार्थ क्या है ?

क.धर्म

ख.काम

ग.मोक्ष

घ.अर्थ

5. 'द्वा सुपर्णासयुजा' मन्त्र किस उपनिषद् से सम्बन्धित है -

क. मुण्डोकोपनिषद्

ख. प्रश्नोपनिषद्

ग. ईशावास्पोनिषद्

घ. कठोपनिषद्

6. सर्वप्रथम कौन-सा उपनिषद् आता है।

क. ईशावास्योपनिषद्

ख. केनोपनिषद्

ग. प्रश्नोपनिषद्

घ. कठोपनिषद्

7. उपनिषदों में वर्णित है।

क. ब्रह्मज्ञान

ख. पुराण

ग. ज्ञान

घ. इनमें से कोई नही

8. तैत्तिदयोपनिषद् में कुल कितनी वल्लियाँ है -

क. दो

ख. तीन

ग. चार

घ. पाँच

3.4 सारांश

उपर्युक्त विवेचन द्वारा स्पष्ट हो गया है कि उपनिषदों की संख्या सुनिश्चित नहीं है। इनका 10 से लेकर 223 तक उल्लेख मिलता है। मुक्तिकोपनिषद् के आधार पर सामान्य रूप से भारतीय परम्परा में 108 उपनिषदों की चर्चा की जाती है। मुक्तिकोपनिषद् में ही दस प्रमुख उपनिषदों के नाम भी दिये गये हैं। प्राचीन काल से ही उपनिषदों पर अनेक भाष्य लिखे गये, जिनमें अद्वैतवादी शंकराचार्य का भाष्य प्रमुख हैं जो कि 10 प्रधान उपनिषदों पर लिखा गया है तथा इन्हीं के भाष्य मे तीन और उपनिषद् के नाम आने के कारण 13 प्रमुख उपनिषदें जानी जाती हैं। उपनिषद् ग्रन्थ भारतीय तत्त्वज्ञान और धामिक सिद्धान्तों के मूलस्रोत हैं। इनसे मानव की चेतना ऊर्ध्वगामी होती है। इनका उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति है।

ईशावास्योपनिषद् को सम्पूर्ण गीता का मूल माना जाता है। उपनिषदों का मुख्य विषय ब्रह्मविद्या या आत्मविद्या है। उपनिषदों में ब्रह्म, आत्मा, दोनों की एकता, आत्मप्राप्ति के साधन, आवश्यकता आदि पर विस्तार से विचार किया गया है।

ऐतरेयोपनिषद् का सम्बन्ध ऐतरेय ब्राह्मण से है। ऐतरेय ब्राह्मण के अन्तिम भाग को ऐतरेय आरण्यक कहते हैं। ऐतरेय आरण्यक के द्वितीय आरण्यक में चतुर्थ से षष्ठ अध्यायों को 'ऐतरेय-उपनिषद्' कहते हैं। कौषतकी आरण्यक के तृतीय से षष्ठ अध्याय तक को कौषीतकि उपनिषद् कहते हैं। शुक्लयजुर्वेद की काव्य एवं वासनेयी संहिता का चालीसवाँ अध्याय 'ईशावास्योपनिषद्'के नाम से प्रसिद्ध है, कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा से सम्बद्ध तैत्तिरीय ब्राह्मण का अन्तिम भाग तैत्तिरीय आरण्यक कहलाता है। तैत्तिरीय आरण्यक के दस प्रपाठकों में सप्तम, अष्टम एवं नवम प्रपाठकों को तैत्तिरीयोपनिषद् कहते हैं। कृष्णयजुर्वेद की कठशाखा का 'कठोपनिषद्' है। इसमें कुल दो अध्याय और छः बल्लियाँ हैं। श्वेताश्वतरोपनिषद् कृष्णयर्जुवेद से सम्बद्ध श्वेताश्वर संहिता का एक अंश है। मैत्रायणीयोपनिषद कृष्ण यजुर्वेद की मैत्रायणी संहिता से सम्बन्धित है। कृष्णयजुर्वेद से सम्बद्ध तैत्तिरीयण्य आरण्यक के दशम प्रपाठक को 'महानारायणोपनिशद्' कहा जाता है । सामवेद की तवल्कार शाखा के छान्दोग्य ब्राह्मण में दस अध्याय हैं। प्रारम्भ के दो अध्यायों को छोड़कर शेष आठ अध्यायों को 'छान्दोग्योपनिषद्' कहा जाता है। केनोपनिषद् सामवेद की जैमिनीय शाखा से है। इसी को 'केनोपनिषद्' और 'जैमिनीयोपनिषद्' भी कहा जाता है। इसके दो भाग हैं – प्रथम भाग पद्यमय है। द्वितीय भाग गद्यमय है और अत्यन्त प्राचीन है। प्रश्नोपनिषद् अथर्ववेद की पिप्पलाद शाखा से है। इस उपनिषद् में सुकेशा, भार्गव, आश्वलायन, सत्यकाम, सौर्यायणी और कबन्धी इन छः ऋषियों द्वारा पिप्पलाद से आध्यात्मविषयक प्रश्नों का उत्तर पूछा गया है। मुण्डकोपनिषद् अथर्ववेद की शौनकशाखा का उपनिषद् है। माण्डूक्योपनिषद् में कुल बारह वाक्य हैं, यह गद्यात्मक है। इसमें ओङ्कार का रहस्य बताया गया है। इसमें ब्रह्म और आत्मविषयक विवेचन किया गया है। अतः इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप उपनिषदों का परिचय भली भाँति समझा सकेंगे।

3.5 पारिभाषिक शब्दावली

कालक्रम	-	समय के क्रम में
प्रयनोपिनषद्	-	जिसमें प्रश्नो का उत्तर हो
उपनिषद्	-	गुरू के समीप बैठकर सीखी जाने वाली विद्या
सत्यकाम	-	सत्यकाम नामक ऋषि
आत्मज्ञान	-	आत्मा सम्बन्धित ज्ञान
वेदान्त	-	वैदिक वाड्.मय का अंतिम भाग
रहस्य	-	छिपा हुआ, गुप्त
आश्वलायन	-	नाम विशेष

3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्नोत्तर:-

1.क	2.क	3.ख
4.ग	5.ग	6.क
7.क	8.ख	

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वैदिक साहित्य एवं संस्कृति - आचार्य कपिलदेव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी 2000 ई.।

2. वैदिक वाङ्मय का इतिहास भाग द्वितीय - आचार्य भगवद्दत्त ,अनुसंधान विभाग डी.ए.वी कॉलेज लाहौर 1927 ई. प्रथम संस्करण।

3. वैदिक साहित्य और संस्कृति - पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा संस्थान वाराणसी 1973 ई. प्रथम संस्करण।

4. वैदिक साहित्य और संस्कृति - आचार्य वाचस्पति गैरोला, संवतिका प्रकाशन प्रयागराज (इलाहाबाद) 1969 ई. प्रथम संस्करण।

5. संस्कृत साहित्य का इतिहास - ए.बी. कीथ (अनुवादक - डॉ. मंगलदेव शास्त्री), मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, दिल्ली।

3.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. ऐतरयोपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर।

2. मुण्डक उपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर।

3. तैत्तरीयोपनिषद् - गीता प्रेस, गोरखपुर।

4. ईशादि नौ उपनिषद् - गीता प्रेस, गोरखपुर।

5. ईशावास्योपनिषद् गीताप्रेस, गोरखपुर।

6. प्रश्न उपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर।

7. कठ उपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर।

8. वैदिक साहित्य का इतिहास

9. माण्डूक्य उपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर।

10. छान्दोग्य उपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर।

11. केन उपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर।

12. वैदिक साहित्य

13. बृहदारण्यकोपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर।

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. किन्हीं चार उपनिषदों का परिचय दीजिए।

2. कठोपनिषद् और छान्दोग्य का परिचय दीजिए
3. ईशोपनिषद् पर अपने विचार स्पष्ट कीजिए।
4. आचार्य शंकर द्वारा कृतभाष्य उपनिषदों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
5. निम्नलिखित उपनिषदों पर टिप्पणी लिखिए -

(1) माण्डूक्योपनिषद् (2) कठोपनिषद् (3) छान्दोग्य
(4) ईशावास्योपनिषद् (5) ऐतरेयोपनिषद् (6) केनोपनिषद्
(7) प्रश्नोपनिषद् (8) मुण्डकोपनिषद् (9) बृहदारण्यकोपनिषद्

6. प्रमुख उपनिषद् कौन-कौन से हैं ? नाम लिखो।

खण्ड- तीन (Section-C)
वैदिक सूक्त एवं निरुक्त

इकाई-1 शिवसंकल्पसुक्त एवं सूर्यसूक्त मूलपाठ अर्थ एवं व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 शिवसंकल्प सूक्त

3.3.1 शिवसंकल्प सूक्त मूल (अनुवाद, भावार्थ)

1.4 सूर्य सूक्त

3.4.1 सूर्य सूक्त मूल (अनुवाद, भावार्थ)

1.5. सारांश

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना:-

बी0 ए0 (VAC- 01) खण्ड तृतीय से सम्बन्धित यह प्रथम इकाई है। इस खण्ड में वैदिक सूक्त एवं निरुक्त के विषय का वर्णन किया गया हैं। प्रस्तुत इकाई में हम यजुर्वेद के प्रमुख आध्यात्मिक सूक्त 'शिवसंकल्प सूक्त' एवं ऋग्वेद के सूर्यसूक्त का अध्ययन करेंगे। मनुष्य के शरीर में सभी अंगों के साथ मन का महत्व सर्वाधिक है इसमें विलक्षण शक्ति निहित है। मनुष्य के सुख-दुख तथा बन्धन और मोक्ष मन के ही अधीन है। संसार में कोई ऐसा स्थल नहीं है जो मन के लिए अगम्य हो। मन सर्वत्र विचरण कर सकता है। चक्षु इत्यादि इन्द्रियों के लिए जो स्थान अगम्य है। वही मन के लिए पहुँचना सुलभ है। आत्म-ज्ञान हेतु भी मन नेत्रवत है। कहा भी गया है- **'मनसैवानुदृष्ट्व्यम्'** मन ही समस्त इन्द्रियों का प्रवर्तक है। यदि मन असहयोग कर दे तो स्वस्थ एवं सक्षम इन्द्रियाँ भी अपने विषय को ग्रहण करने मैं समर्थ नहीं रह पाऐंगी। मनुष्य का अभ्युदय मन के शुभसंकल्पयुक्त होने पर निर्भर है अतः प्रस्तुत शिवसंकल्प सूक्त में कामना की गई है कि हमारा मन कल्याणकारी कार्यो में प्रवृत्र हो। हमारा मन शुभ संकल्प वाला हो।

सूर्य सूक्त ऋग्वेद के प्रथम मण्डल का 115 वां सूक्त है। सूक्त के दृष्टा ऋषि कुत्स आंगिरस है देवता सूर्य हैं और छन्द त्रिष्टुप हैं। सूर्य सर्वदृष्टा ओर दूरदृष्टा हैं। इनके उदित होने पर ही सम्पूर्ण जगत अपने कार्यो की ओर प्रवृत्त होता है। सूर्य अन्धकार का विनाश कर प्रकाश को स्थापित करते हैं। वे सम्पूर्ण विश्व के ज्योतिर्मय नेत्र हैं। वे प्रतिदिन नियमानुसार अपने पथ पर चलते है। तथा द्युलोक के पृष्ठ भाग पर निवास करते हैं। सूर्य ही प्रातः काल समग्र सृष्टि को प्रकाशित करते हैं जिससे मनुष्य अपने कार्यों में प्रवृत्त होते हैं। सूर्य का स्वरूप किस प्रकार का है तथा सूर्य देवों के देव क्यों हैं यह हम भी प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत अध्ययन करेंगे -

अतः प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप यजुर्वेद का प्रमुख शिवसंकल्पसूक्त पढ़कर यह जानेंगे कि मन को शुभ संकल्पवान बनाना क्यों आवश्यक हैं साथ ही ऋग्वेद के सूर्यसूक्त का भी अध्ययन करेंगे।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप बता सकेंगे कि -

- शिवसंकल्पसूक्त क्यों महत्वपूर्ण सूक्त है।
- मन को कल्याणकारी कार्यों की ओर क्यों प्रवृत्त करना चाहिये ?
- सूर्य का स्वरूप किस प्रकार का है तथा सूर्य देवों के देव क्यों हैं ?
- मन के अनियन्त्रित होने पर जीवन की दिशा भी अनियन्त्रित हो जाती है।
- सूर्य को सर्वदृष्टा एवं दूरदृष्टा क्यों कहा जाता है, यह बतलाने में समर्थ हो सकेंगे।

1.3 शिवसंकल्प सूक्त:-

शिवसंकल्प सूक्त शुक्ल यजुर्वेद के चौंतीसवे अध्याय के प्रथम सूक्त है। जैसा कि आपको ज्ञात ही होगा कि यज्ञक्रियाओं का सुचारू रूप से सम्पादन करने के लिए गद्यात्मक मन्त्रों का संग्रह ही यजुर्वेद है। यह संहिता यज्ञ के 'अध्वर्यु' नामक पुरोहित के लिए है किस यज्ञ में कौन से मन्त्र का उच्चारण किस समय किया जाना चाहिए यह सारी विधियाँ यजुर्वेद में उपलब्ध होती है। यजुर्वेद की कृष्ण यजुर्वेद व शुक्लयजुर्वेद शाखाऐं हैं प्रस्तुत शिवसंकल्पसूक्त यजुर्वेद की शुक्ल शाखा के अन्तर्गत आता है। इस सूक्त में क्रमशः छह मन्त्र हैं जिनमें मन के महत्व का प्रतिपादन करके मन के शिवसंकल्प होने की उदात्त एवं रमणीय प्रार्थना है। इसका प्रत्येक मन्त्र **'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु'** वाक्य से समाप्त होता है।

1.3.1.शिवसंकल्प सूक्त मूल (अनुवाद, भावार्थ)

मूल 1 - यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदुसुप्तस्य तथैवेति।

दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।।

अन्वयः - यत् मनः जाग्रतो दूरम् उदैति तत् सुप्तस्य एवं तथा एव एति। दूरंगमं एकं ज्योतिषां ज्योतिः तत् मे मनः शिवसंकल्पम् अस्तु।

शब्दार्थः- जाग्रतः -जाग्रत अवस्था में दूरंगमम् -दूरगामी विषय ज्योतिः एकम् -एकमात्र प्रकाशक शिव - कल्याणकारी।

अनुवाद - जो मन जाग्रत अवस्था में (देखे और सुने विषयों से) दूर चला जाता है और सुप्तावस्था में वैसे ही पुनः अपने स्थान पर आ जाता है जो ज्योतिस्वरूप आत्मा को ग्रहण करने का एकमात्र साधन है और दैव कहलाता है जो दूरगामी तथा विशयों को प्रकाशित करने वाली शुभ संकल्पों से युक्त हो।

व्याख्या- मन्त्र का तात्पर्य है कि जो मन मनुष्य की जाग्रत अवस्था से दूर से दूर स्थल तक दौड़ लगाता है अर्थात अनेकों विचारों में मग्न रहता है और सुप्तावस्था में पुनः अपने स्थान पर आ जाता है अर्थात विचारशून्य हो जाता है ऐसा मन जो अत्यधिक चंचल है वह चंचल मन कल्याणकारी संकल्पों से युक्त हो। यह मन भूत भविष्य व वर्तमान के विषयों को ग्रहण करने में समर्थ है तथा दूरगामी विषयो को ज्ञान प्राप्त करने वाले स्रोत्र इत्यादि इन्द्रियों का एकमात्र प्रकाशक और प्रवर्तक है अतः परमात्मा के साक्षात्कार का प्रधान साधन भूत मेरा वह मन शुभ संकल्पों से युक्त हो अर्थात मेरे मन में सदैव कल्याणकारी विचार ही आएँ। मनुष्य के सभी कार्य तभी सम्पन्न होते हैं जब उसका मन निर्मल, श्रेद्धोपेत व उत्साहयुक्त हो भगवान कृष्ण ने गीता में मन को अपनी विभूति बताया है **''इन्द्रियाणां मनश्चास्ति'' (गीता 10/22)** अर्थात इन्द्रियों में मैं मन हूँ।

मूल 2. येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।

यदपूर्व यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

अन्वयः - येन मनीषिणः कर्माणि कृण्वन्ति अपसः विदथेषु धीराः यद् पूर्वं यक्षम् अन्तः प्रजानां तत् मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।

शब्दार्थः - मनीषिणः- विद्वान पुरूष, अपसः- यज्ञ सम्बन्धित विधि- विधान विदयेषु- दक्ष, निपुण यक्षम्-पूज्य।

अनुवाद- सत्कर्मो में संलग्न विद्वान पुरूष जिस मन के द्वारा श्रेष्ठ कर्मो को सम्पादित करते हैं (यज्ञ सम्बन्धित विधि-विधान को पूण्र करते हैं जो मन समस्त प्राणियों के शरीर में पिद्यमान है तथा यज्ञों में जो अपूर्व एवं आदरणीय भावों से सुशोभित होता है वह हमारा मन श्रेष्ठ कल्याणकारी संकल्पों से युक्त हो।

व्याख्या - मन्त्र का तात्पर्य है कि कर्मनिष्ठ एवं धीर विद्वान जिस मन के द्वारा यज्ञ से सम्बन्धि पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करते हैं और यज्ञ के कर्मों का विस्तार करते है अर्थात मन के बिना कोई भी लौकिक-वैदिक कर्म सम्पादित नहीं किया जा सकता। यह मन इन्द्रियों का पूर्वज है अथवा आत्म स्वरूप है यह मन पूज्य है और समस्त प्रजा के हृदय में निवास करता है। यह मन सामान्य और विशेष दोनों प्रकार के ज्ञानों का जनक है और ज्ञान ही मनुष्य की विशेषता है। इसी प्रकार धैर्य भी मन में ही अभिव्यक्त होता है अतः धैर्य का उत्पादक होने से मन को धैर्यरूप कहा गया है। यह लौकिक और वैदिक ज्ञान का जनक रूपी मन शुभ एवं कल्याणकारी कामना से युक्त हो ऐसी ऋषि ने कामना की है।

मूल 3. यत्प्रज्ञज्ञनमुत चेतो धृतिश्च यज्जयोतिरन्तरमृतं प्रजासु ।
यस्मान्न ऋते किं चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसेकल्पमातु ।।

अन्वय- यत् प्रज्ञज्ञनम् उत् चेतो धृतिः च यत् प्रजासु अन्तरम अमृतं ज्योति रूस्मात् ऋते किंचन कर्म न क्रियते तत् में मनः शिवसंकल्पमस्तु ।

शब्दार्थः - प्रज्ञानम् - विशेष रूप से ज्ञान उत्पन्न करने वाला धृति- धैर्यवान ऋते- बिना चेतो- चेतनशील ।

अनुवाद - यह मन प्रखर ज्ञान से सम्पन्न, चेतनशील तथा धैर्य-सम्पन्न है समस्त प्राणियों के अन्तःकरण में अमर प्रकाश ज्योति स्वरूप है जिस के बिना कोई भी कर्म सम्पादन सम्भव नहीं है ऐसा मेरा वह मन श्रेष्ठ कल्याणकारी संकल्पों से युक्त हो।

व्याख्या- प्रस्तुत मन्त्र का तात्पर्य है कि यह मन जो विशेष प्रकार के ज्ञान का कारण है और जो सामान्य ज्ञान का भी कारण है ऐसा प्रकृष्ट ज्ञानवान मन धैर्य रूप है जो समस्त प्राणियों के हृदय में रहकर उनकी समस्त इन्द्रियों को प्रकाशित करता है अर्थात इन्द्रियों को उनके विशिष्ट कार्यो में संलग्न करता है। जो स्थूल शरीर की मृत्यु होने पर भी अमर रहता है तथा जिसके बिना कोई भी कर्म नहीं किया जा सकता ऐसा मन
शुभ संकल्पवान हो।

मूल 4. येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिग्रहीतममृतेन सर्वम् ।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।।

अन्वय - येन इदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतम् यः सर्वम् अमृतेन । येन सप्तहोता यज्ञः तायते तत् मे मनः शिवसंकल्पम् अस्तु।।

शब्दार्थः- परिग्रहीतम् - ज्ञान होता है, गृहण होता है, सप्तहोता - सप्त होताओं वाला अग्निष्टोम यज्ञ।

अनुवाद - जिस अविनाशी मन के द्वारा भूत, भविष्य और वर्तमान से सम्बन्धित वस्तुऐं गृहण की जाती हैं तथा जिस मन के द्वारा सात होता वाला यज्ञ सम्पादित होता है मेरा वह मन कल्याणकारी संकल्पों से युक्त हो।

व्याख्या - प्रस्तुत मन्त्र का तात्पर्य है कि यह मन भूत, भविष्य और वर्तमान सम्बन्धी सभी बातों का परिज्ञान कराता है अर्थात् मन भूतकाल, भविष्यकाल और वर्तमान काल में विचरण करता है तथा सप्त होताओं वाल अग्निष्टोम यज्ञ (अग्निष्टोम यज्ञ में सात होता होते हैं) भी मन के निर्मल व प्रसन्न होने पर ही सम्पन्न होता है अतः वह मेरा मन जो सर्वदृष्टा है और यज्ञ को सम्पादित कराने वाला है शुभ संकल्पों से युक्त हो।

मूल 5. यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः ।
यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।।

अन्वय - यस्मिन् रथना भाविवाराः ऋचः साम यजूंषि प्रतिष्ठिता 'यस्मिन् चित्त सर्वम् प्रजानां ओतं तत् मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।

शब्दार्थः - ओतं - रचा हुआ, विवाराः -रथ चक्र के आरे।

अनुवाद - जिस मने में रथचक्र की नाभि में अरों के समान ऋग्वेद सामवेद और यजुर्वेद प्रतिष्ठित है जिसमें प्रजा का सब पदार्थो से सम्बन्ध रखनेवाला सम्पूर्ण ज्ञान ओत-प्रोत है ऐसा मेरा मन शुभ संकल्पों से युक्त हो।

व्याख्या - मन्त्र का तात्पर्य है कि मन में ज्ञान की प्रतिष्ठा और स्फूर्ति होती है अतः ज्ञान के स्रोत वेदत्रयी ऋक् ,यजु व साम मन में उसी प्रकार प्रतिष्ठित हैं जिस प्रकार रथ के चक्रमें अरे स्थित होते हैं। हमारा जितना भी ज्ञान है वह शब्दराशि में ओत-प्रोत है। शब्दानुगम से रहित लोक में कोई ज्ञान उपलब्ध नहीं होता जैसे आत्मा की अभिव्यक्ति शरीर में होती है वैसे ही ज्ञान की अभिव्यक्ति शब्द रूप कलेवर में होती है। वे शंब्द मन मै ही प्रतिष्ठित होते हैं मन के स्वस्थ होने पर उनकी स्फूर्ति होगी और मन के त्यग्र होने पर वे स्फुरित नहीं होंगे। वेद ज्ञान राशि हैं अतः वेदरूपी ज्ञान का स्फुरण भी मन में ही होता हैं इस ज्ञानवान मन में ही समस्त प्राणियौ का सभी पदार्थविषयक ज्ञान भी कल्याणकारी संकल्पों से युक्त हो।

मूल 6. सुषारथिरश्वानिव थन्मुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं राष्जिररं यत् अजिरं हृत्प्रतिष्ठं जविष्ठं तत् मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।

अन्वय - सुषारथिः अश्वान् इव नीयते मनुष्यान् अभीशुभिः वाजिनः (नेनीयते) यत् अजिरं हृत्प्रतिष्ठं जविष्ठं तत् मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।

शब्दार्थ - सुषारथिः - कुशल सारथि नेनीयते - ले जाता है, अभीशुभिः - मनचाहे स्थान पर ,वाजिनः - घोड़ो को, हृत्प्रतिष्ठम् - हृदय में प्रतिष्ठित ,जविष्ठम् - वेगवान।

अनुवाद - श्रेष्ठ सारथि जैसे अश्वों का संचालन और नियन्त्रण करता है और उन्हें मनचाहे स्थान पर ले जाता है वैसे ही यह मन प्राणियों का संचालन व नियन्त्रण करता है। जो यह मन हृदय में प्रतिष्ठित है जो कभी बूढ़ा नहीं होता और जो अत्यन्त वेगवान् है ऐसा मेरा वह मन शुभ संकल्पवान हो।

व्याख्या - प्रस्तुत मन्त्र का तात्पर्य है मन शरीर का नयन ओर नियमन दोनों ही करता है शरीर के शिथिल होने पर भी मन का वेग कम नही होता जैसे कुशल सारथि अपने नियन्त्रण से अश्वों को नियन्त्रित करता है उसी प्रकार यह मन्त्र भी शरीर व इन्द्रियों का नियन्त्रण करता है। यह मन अत्यधिक वेगवान के वृद्ध होने पर भी यह वृद्ध नहीं होता ऐसा यह मन कल्याणकारी विचारों की ओर प्रवृत हो।

1.4 सूर्य सूक्त 1. 115

ऋग्वेद में सूर्य देवता की स्तुति में 10 सूक्त उपलब्ध होते है। सूर्य द्युस्थानीय देवता हैं। सूर्य सृ गतौ तथा सु प्रेरणे इन दो धातुओं से सूर्य शब्द की निष्पत्ति होती है। सूर्य नाम ही तेज व प्रकाश का द्योतक है। सूर्य किरणों का आश्चर्यजनक समूह है जिससे सम्पूर्ण जगत प्रकाशित हो उठता है वह ही समस्त स्थावर और जंगम का आत्मास्वरूप है। सूर्य सूक्त का अध्ययन करने के पश्चात आप यह जान सकेंगे कि सूर्य विश्व के प्रकाश देव हैं तथा जगत की आत्मा हैं। सूर्यसूक्त ऋग्वेद के प्रथम मण्डल का 115 वा सूक्त है। सूक् के दृष्टा ऋषि कुत्स आंगिरस है देवता सूर्य हैं और छन्द त्रिष्टुप हैं।

सूर्य सर्वदृष्टा एवं दूरदृष्टा हैं। इनके उदित होने पर ही सम्पूर्ण जगत अपने कार्यों की ओर प्रवृत होता है। सूर्य अन्धकार का विनाश कर प्रकाश को स्थापित करते हैं। वे सम्पूर्ण विश्व के ज्योतिर्मय नेत्र हैं। वे प्रतिदिन नियमानुसार अपने पथ पर चलते है। तथा द्युलोक के पृष्ठ भाग पर निवास करते हैं। सूर्य ही प्रातः काल समग्र सृष्टि को प्रकाशित करते हैं जिससे मनुष्य अपने कार्यो में प्रवृत्त होते हैं। सूर्य का स्वरूप किस प्रकार का है तथा सूर्य देवों के देव क्यों हैं यह हम प्रस्तुत सूर्य सूक्त के अन्तर्गत अध्ययन करेंगे -

1.4.1. सूर्य सूक्त मूल (अनुवाद, भावार्थ)

मूल 1. चित्र देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरूणस्याग्नेः ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षँ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ।

अन्वयः - मित्रस्य चित्रं उत्गादनीकं यः वरूणः अग्नेः मित्रस्य चक्षुः । सूर्यः (आप्रा) द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षं आप्रा (सं) सूर्यः जगतः स्थुषः च आत्मा ।

शब्दार्थ - चित्रं - विचित्र, अद्भुत, आप्रा - व्याप्त कर लिया, अनीकम् - समूह ,उद्गात - उदित हुआ है।

अनुवाद - प्रकाशमान रश्मियों के समूह अथवा सूर्यदेव उदित हो रहे हैं ये मित्र, वरूण, अग्नि और सम्पूर्ण विश्व के प्रकाशक ज्योतिर्मय नेत्र हैं। सूर्यदेव ने उदित होकर द्युलोक, पृथ्वी और

अन्तरिक्ष को अपने प्रकाश से सर्वतः परिपूर्ण कर दिया है यह सूर्य देव सम्पूर्ण स्थावर जंगम जगत के आत्मा रूप हैं।

व्याख्या - मन्त्र का तात्पर्य है कि सूर्य जो कि प्रकाशमान रश्मियों का समूह है ज्योर्तिमय है वे उदित होकर सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित करते हैं वे द्युलोक, पृथ्वी लोक और अन्तरिक्ष लोक को अपने प्रकाश से सर्वत्र परिपूर्ण कर देते है ये सूर्यदेव ही चराचर जगत की आत्मा स्वरूप है। सूर्य मित्र, वरूण व अग्नि देव का नेत्र स्वरूप है। सूर्य के उदित होने पर ही समस्त संसार अपने कार्यो की ओर प्रवृत्त होता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - देवानाम् -दीव्यन्ति इति देवाः तेषां, दिव् + अच् । उद्गात - उद् + गा + लुड्. प्रथम पुरूष एक वचन । अनीकम् - अन् + ईकक् , द्यावापृथिवी - द्यौः च पृथिवी च इति द्वन्द समास ,अनीकम् - अन् + ईकक् , सूर्यः - सरति सारयति वा, सृ + क्यप्, चक्षुः - चक्ष + उस् तस्थुषः -स्था + क्वसु ।

मूल 2. सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्त्यो न योषामभ्येति पश्चात् ।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् ।।

अन्वय- सूर्य रोचमानां देवीम् उषसं पश्चात् अभ्येति मर्यः योषाम् न। यत्त देवयन्तः नरः प्रतिभद्राय भद्रं युगानि वितन्वते ।।

शब्दार्थ- रोचमानाम् -चमकती हुई ,अभ्येति - आता है, मर्यः - युवक,वितन्वते - जोतते हैं, योषाम् - सुन्दरी युवती ।

अनुवाद- सूर्य चमकती हुई देवी उषा के पीछे उसी प्रकार आते हैं जिस प्रकार कोई युवक सुन्दर स्त्री के पीछे आता है जिस उषा के उदित होने पर देव सूर्य की उपासना करते हुए , सूर्य देव को अपना बनाने के इच्छुक भक्त जन श्रेष्ठ कल्याणकारी कार्यो को करते हैं अथवा कल्याणकारी फलों की प्राप्ति हेतु हलों के जुओं को जोतते हैं।

व्याख्या- मन्त्र का तात्पर्य है कि सूर्य प्रकाशवती उषा का वैसे ही अनुकरण करता है जैसे मनुष्य नारी का अनुगमन करते हैं ऋग्वेद में उषा का वर्णन सूर्य की पत्नी के रूप में है।

(अब स्यूमेव चिन्वती महोन्युषा याति स्वसरस्य पत्नी) ऋग्वेद 3. 61 .4 जब सुन्दरी उषा प्रकट होती है तब प्रकाश के देवता सूर्य की आराधना करने के लिए कर्तव्यनिष्ठ मनुष्य अपने कर्म का सम्पादन करते हैं। सूर्य कल्याण रूप हैं और उनकी आराधना से कर्तव्य कर्म के पालन से कल्याण की प्राप्ति होती है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- रोचमानः- रूच् + शानच् + टाप् , मर्यः - मृड्. प्राणत्यागे धातु से यत् प्रत्यय ,युगानि - युज् धातु , धञ् प्रत्यय,वितन्वते - वि + तन् + लट् लकार आत्मनेपद प्रथम पुरूष बहुवचन।

मूल 3. भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य चित्रा एतग्वाः अनुमाद्यासः।
नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्थुः परिद्यावा पृथिवी यन्ति सद्यः ।।

अन्वय - भद्राः चित्राः एतग्वाः अनुमाद्यासः हरितः सूर्यस्य अश्वाः नमस्यन्तः दिवः पृष्ठम् आ अस्थुः। सद्यः द्यावापृथिवी परियन्ति।।

शब्दार्थ - चित्राः - विचित्र, रंग-बिरंगे, एतग्वाः - तीव्र गति वाले , हरितः - हरे रंग वाले , दिवः - आकाश के , अस्थुः -स्थित हो गए।

अनुवाद - कल्याणकारी, विचित्र या रंग-बिरंगे, तीव्र गति वाले स्तुति के योग्य, हरे वर्ण के या हरित् नाम वाले सूर्य के अश्व हमारे द्वारा नमन किये जाते हुए आकाश के पृष्ठ भाग पर आरूढ़ हो गए हैं वे शीघ्र ही द्युलोक व पृथ्वी लोक में परिक्रमा करते हैं।

व्याख्या - मन्त्र का तात्पर्य है कि सूर्यदेव की रश्मियाँ उसी प्रकार सम्पूर्ण विश्व में तीव्रता से प्रसारित होती हैं जितनी तीव्रता से अश्व दौड़ते हैं। सूर्य प्रतिदिन अपने पथ पर चलता है तथा अर्चनीय व वन्दनीय है। यह सबको नमन की प्रेरणा देता है और स्वयं द्युलोक के ऊपर निवास करता है। यह सीघ्रता से द्युलोक और पृथ्वी का परिमन्त्रण कर लेता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी- भद्रा - भद् + रक्, अश्वाः - अश् + व्याप्तौ + क्वन् प्रत्यय, एतग्वाः - इण् गतौ धातु , तन् प्रत्यय अनुमाद्यासः- अनु उपसर्ग मद् (स्तुतौ) धातु, ठिाच् प्रत्यय, यत् प्रत्यय, नमस्यन्तः - नमस् + क्यच् + शत् अस्थुः - स्था धातु , लड्. लकार , प्रथम पुरूष बहुवचन।

मूल 4. तत्सूर्यस्य देवत्वं - तन्महित्वं मध्या कर्तोवितंत सं जभार।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै।।

अन्वय - सूर्यस्य तत् देवत्वम् तत् महित्वम् कर्तोः मध्या वितंतम् सम् जभार। यदा इत् हरितः सधस्थात् अयुक्त आत् रात्रि सिमस्मै वासः तनुते।

शब्दार्थ - वितंतम् - फैला हुआ , सम् जभार - समेट लिया, इत् - निश्चय ही अयुक्त - जोता है।

अनुवाद - यह उस सूर्यदेव का ही देवत्व (स्वामी) और यही महिमा है कि वे कार्यो के मध्य में ही फैले हुए किरण जाल को समेट लेते हैं। जिस समय वे सूर्य अपने हरित् नामक घोड़े को या हरे रंग के अश्वों को उनके स्थान से जोतते हैं तब रात्रि सब के लिए अन्धकार रूपी आवरण को फैलाती है।

व्याख्या - मन्त्र में व्यख्या की गई है कि यह सर्वान्तरयामी प्रेरक सूर्य का ईशवरत्व है और महिमा है कि जब वे अस्ताचल की ओर जाते हैं , अपनी किरणों को समेट लेते हैं और अपने हरित् नाम के अश्वों को एक स्थान से खींचकर दूसरे स्थान पर नियुक्त कर देते हैं तब रात्रि इस सम्पूर्ण विश्व में अपना अन्धकार रूपी वस्त्र फैला देती है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी -

देवत्वम् - देव+ त्वल्
महित्वम् - मह + इन् + (महि) + त्वल
संजभार - सम् + ह् धातु + लिट्लकार प्रथम पुरूष एकवचन
अयुक्त - युजिर धातु, लड्. लकार प्रथम पुरूष एक वचन
सधस्थात् - सह् + स्था + क

रात्रि - रात्रि + डीप्

मूल 5. तन्मित्रस्य वरूणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्यौरूपस्थे।
अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृश्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ।।

अन्वय - तत् मित्रस्य वरूणस्य अभिचक्षे सूर्यः द्यौः उपस्थे रूपम् कृणुते। अस्य हरितः अन्यत् रूशत् पाजः सम् भरन्ति, अन्यत कृष्णम्।।

शब्दार्थ- अभिचक्षे - दर्शन के लिए , उपस्थे - गोद में, रूशत् - चमकते हुए पाजः - तेज को।

अनुवाद - उस समय मित्र और वरूण (सम्पूर्ण विश्व का दर्शन करने के लिए) को देखने के लिए सूर्य आकाश के मध्य में अपने तेजोमय रूप को प्रकट करते हैं। इस सूर्य की अनन्त तेजमय किरणें और में एक ओर तो प्रकाश और तेज भरती हैं और दूसरी ओर (कृष्ण वर्ण) अन्धकार अर्थात रात्रि को प्रवर्तित करती हैं।

व्याख्या - प्रस्तुत मन्त्र का तात्पर्य है कि प्रेरक सूर्य प्रातः काल समग्र सृष्टि को प्रकाशित करने के लिए आकाश् में अपना प्रकाशवान रूप प्रकट करते हैं। प्रस्तुत मन्त्र में प्रयुक्त मित्र और वरूण सूर्य और चन्द्र अर्थ को प्रकट कर रहे हैं। ये दोनों ही संसार को ओज और रस प्रदान करते हैं। वरूण की शक्ति रस को एकत्रित करती है और मित्र की शक्ति उसका प्रसार करती है। इस प्रकार मित्र और वरूण ये दोनों सम्पूर्ण जगत के उपलक्षक हैं। इस प्रकार सूर्य की किरणें ही दिन और रात्रि की व्यवस्था करती हैं। दिन में वे प्रकाश की मिमित्त बनती हैं और रात्रि में अन्धकार की।

व्याकरणात्मक टिप्पणी –

अभिचक्षे - अभि + चक्ष + क्विप् + ए प्रत्यय

उपस्थे - उप + स्था + क

रूशत् - रूश् 'दीप्तौ' शतृ प्रत्यय

पाजः - ' पा रक्षणे ' धातु + असुन्

मूल 6. अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरंहसः दिपृता निरवद्यात्।
तन्नो मित्रो वरूणो मामहन्ता मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौ ।।

अन्वय - देवाः । अद्य सूर्यस्य उदिता अंहस निप्पिपृत अवद्यात् निः । नः तत् वरूणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः मामहन्ताम् ।

शब्दार्थ - अंहसः - पाप से , निप्पिपृत - छुड़ाओ, अवद्यात् - अपयश ,मामहन्ताम् - पूर्ण करें ।

अनुवाद - हे देवताओ (सूर्य रश्मियों) आप सूर्योदय होने पर हमें आपत्तियों व दुष्कर्म रूपी निन्दनीय कर्मो से बचाओ। हमारी इस कामना का मित्र (सूर्य) वरूण , अदिति, सिन्धु , पृथ्वी और द्युलोक अनुमोदन करें। अर्थात् हमारी कामना को पूर्ण करें।

व्याख्या - प्रस्तुत मन्त्र में सूर्यदेव से प्रार्थना की गई है कि वे पापकर्मो से हमारी रक्षा करें। सूर्य की प्रकाशमान किरणों हमें शुभ कर्मो की ओर प्रेरित करै जो कुछ भी निन्दनीय है अशुभ है गर्हणीय है, दुख-द्रारिद्रय है, उन सबसे हमारी रक्षा करें। इस प्रकार सभी देव हमारी इस कामना की रक्षा करें अनुमोदन करें व हमारी कामना पूर्ण करें।

व्याकरणात्मक टिप्पणी -

देवाः - दिव् + अच्
उदिता - उत + इण् + क्त
अंहस - अम् + हुक् + असुन् (पच्चमी विभक्ति, एक वचन)
पिपृता - पृ पालन पूरणयोः लोट् मध्यम पुरूष बहुवचन
मामहन्ताम् - मह् धातु लोट् लकार प्रथम पुरूष बहुवचन

1.5 सारांश

प्रस्तुत शिवसंकल्प सूक्त में हमने मन के विषय में अध्ययन किया। सूक्त के प्रत्येक मन्त्र के अन्त में मन को कल्याण के कार्यो की ओर प्रेरित करने की कामना की गई है। **''तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ''।** बुद्धिमान मनुष्य को यह विदित होता है कि मन अत्यन्त चंचल है और वह ही विषय से हटाने वाला भी है। यही उन्हें किसी मार्ग में प्रवृत्त करता है अथवा उससे निवृत्त करता है। यदि मन पवित्र संकल्पवाला होगा तो उत्तम स्थान पर ले जायेगा और सत् प्रवृत्तियों से इसका नियमन करेगा। यदि मन पाप संकल्पों से आक्रान्त होगा तो मनुष्य को बुरे मार्ग में लगाकर उसके विनाश और दुर्गति का कारण बन जाएगा अतः मन को अच्छे और कल्याणकारी संकल्पों की ओर प्रेरित करना चाहिए। प्रस्तुत सूक्त में मन का स्वरूयप बतलाते हुए कहा है कि यह मन सामान्य ज्ञान जनक, धैर्यस्वरूप , तथा इन्द्रियों के विषयों का प्रकाशक है। मन के निर्मल उत्साहयुक्त और श्रद्धावान होने पर बुद्धिमान यज्ञ विधि विधान को जानने वाले कर्मपरायण जन यज्ञों की क्रियाओं को सम्पन्न करते हैं। यह मन ही भूत, भविष्य व वर्तमान काल के विषयों को ग्रहण करता है। यहाँ मन की तुलना उस कुशल सारथि से की गई है जो अपने अश्वों का नियन्त्रण करके उन्हें मनचाहे स्थान पर ले जाता है मन भी इन्द्रियों का नियन्त्रण कर उन्हें मनचाहे स्थान पर ले जाता है। अनियन्त्रित होने पर बलवान व्यक्ति को भी निर्बल कर देता हैं अतः मन को शुद्ध व पवित्र बनाने की सूक्त में कामना की गई है।.सूर्य सूक्त के देवता सूर्य सम्पूर्ण विश्व के प्रकाशक ज्योतिर्मय नेत्र हैं , जगत की आत्मा हैं और प्राणिमात्र को सत्कर्मो में प्रेरित करने वाले देव हैं। देवमण्डल में सूर्य का विशिष्ट स्थान है क्योंकि ये जीवमात्र के लिए प्रत्यक्षगोचर हैं सूर्य सभी के लिए आरोग्य प्रदान करने वाले एवं सर्वविध कल्याण करने वाले हैं अतः कहा गया है 'सूर्य आत्मा जगतः' अर्थात सूर्य इस संसार की आत्मा रूप हैं। सूर्य प्रतिदिन अपने पथ पर चलता है और द्युलोक के सबसे उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित होता है। सूर्य अपनी किरणों से जगत को प्रकाशित करता है सूर्य के स्वर्णिम रथ को सात अश्व खींचते हैं इन अश्वों को ''हरितः'' कहा गया है। सूर्य की किरणें विश्व के जल का हरण करके उसे वाष्प रूप में परिणत कर देती हैं। सूर्य के ये हरित अश्व अन्तरहित क्रम में प्रकाश तथा अन्धकार को जगत में लाते रहते हैं। अतः सूर्य ही प्रत्यक्ष देवता हैं जिनका दर्शन सबको निरन्तर प्रतिदिन होता है। सूर्य देव से यह कामना की है कि सूर्य का उदय हमारे दोष व पाप को दूर करे और मित्र , वरूण , अदिति, पृथ्वी व स्वर्ग सब हमारी इस वाणी का अनुमोदन करें।

1.6 शब्दावली

दूरंगम	-	दूरगामी विषय
उदैति	-	चला जाता है
मनीषिणः	-	विद्वान पुरूष
विदथेषु	-	दक्ष , निपुण
यक्षम्	-	पूज्य
धृतिः	-	धैर्यवान्
ऋते	-	बिना
चेतो	-	चेतनशील
परिगृहीतम्	-	ज्ञान प्राप्त होता है
सप्तहोता	-	सप्त (सात द्येताओं वाला)
अभीशुभिः	-	मनचाहे स्थान पर
वांजिनः	-	घोड़ो को
जविष्ठम्	-	वेगवान्
उद्गात	-	उदित हुआ है
तस्थुषः	-	स्थावर संसार का
अनीकम्	-	समूह
रोचमानाम्	-	चमकती हुई
मर्यः	-	युवक , मनुष्य
एतग्वाः	-	तीव्र गति वाले
अनुमाद्यासः	-	क्रमशः स्तुति के योग्य
वासः	-	वस्त्र को
अभिचक्षे	-	दर्शन के लिए
पाजः	-	तेज को
अंहसः	-	पास से
निष्पिपृत	-	छुड़ाओ

अभ्यास प्रश्न -

अति लघुत्तरीय प्रश्न

1. 'शिवसंकल्पसूक्त' किस वेद का प्रमुख सूक्त है?
2. मन के लिए 'शिवसंकल्पसूक्त' में क्या कामना की गई है?
3. 'सुषारथि' शब्द का क्या अर्थ है?
4. सूर्य सूक्त के दृष्टा ऋषि कौन हैं?
5. सूर्य सूक्त में कौन सा छन्द प्रयुक्त हुआ है?

6. सूर्य के अश्वों को क्या नाम दिया गया है?
7. इन्द्रियों को नियन्त्रित करने वाला कौन है?

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर -

1. यजुर्वेद
2. मन कल्याणकारी कार्यो की ओर प्रवृत्त हो।
3. उत्तम सारथि
4. मधुच्छन्दा
5. त्रिष्टुप
6. हरितः
7. मन

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. कल्याण वेद-कथा अंक
2. वैदिक साहित्य का इतिहास-प्रीति प्रभा गोयल
3. वैदिक साहित्य का इतिहास-वाचस्पति गैरोला
4. यजुर्वेद भाष्य
5. ऋग्वेद भाष्य भूमिका
6. वैदिक साहित्य का इतिहास - ए. बी. कीथ
7. वैदिक साहित्य का इतिहास - मैक्डॉनल

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. शिवसंकल्पसूक्त के अनुसार मन का स्वरूप लिखिए।
2. चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरूणस्याग्नेः ।
   आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्ष सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुः ॥
   उपरोक्त मन्त्र की व्याख्या कीजिए।

इकाई. 2 इन्द्रसूक्त (2.12)

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 इन्द्र सूक्त परिचय
2.4 इन्द्र सूक्त मूल, श्लोक व्याख्या
2.5 सारांश
2.6 शब्दावली
2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

इन्द्र वैदिक काल के प्रमुख एवं प्रिय देवता हैं अन्तरिक्ष स्थानीय इन्द्र देवता की स्तुति ऋग्वेद के लगभग 250 सूक्तों में की गई है। ऋग्वेद में इन्द्र की स्तुति अनेक नामों द्वारा की गई है सैकड़ों क्रियाऐं करने के कारण इन्द्र 'शुतक्रतु' तथा समृद्ध होने के कारण 'वसुपति' तथा 'मधवन्' हैं। इन्द्र को अतुलनीय शक्ति से युक्त माना गया है। इन्द्र के तीन गुण कहे गए हैं- महान् कार्यों को करने की शक्ति, अतुल पराक्रम, असुरों को युद्ध में जीतना। इन्द्र जन्म लेते ही सर्वश्रेष्ठ हो गए और उन्होंने अपने पराक्रम से सभी देवताओं पर आधिपत्य कर लिया। इन्द्र को द्यौ और पृथ्वी का पुत्र माना गया है।

प्रस्तुत इकाई में आप ऋग्वेद के प्रमुख देव इन्द्र की स्तुतिविषयक इन्द्रसूक्त का अध्ययन करेंगे तथा यह जानेंगे कि वेदों में इन्द्र को सर्वाधिक पराक्रमी किन कार्यों को करने से माना गया है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप बता सकेंगे कि -

- वेदों में इन्द्र देव का स्थान क्यों अधिक है ?
- इन्द्र देव ने कौन-कौन से पराक्रमी व साहसी कार्य किए।
- इन्द्र के यजमानों पर क्या-क्या उपकार हैं ?
- इन्द्र के प्रिय कार्य कौन से हैं ?

2.3. इन्द्र सूक्त (परिचय)

इन्द्र सूक्त ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल का बारहवाँ सूक्त है प्रस्तुत सूक्त के ऋषि ग्रत्समद हैं देवता स्वयं इन्द्र हैं तथा छन्द त्रिष्टुप है।

2.4 इन्द्र सूक्त मूल, श्लोक व्याख्या

मूल 1. यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान्क्रतुना पर्यभूषत्।
यस्य शुष्माद्रो दसी अभ्यसेता नृम्णस्य मह्ह स जनास इन्द्रः।।

अन्वय- हे जनास य इन्द्रः प्रथमो जात मनस्वान् देवो क्रतुना देवान् पर्यभूषत। यस्य शुष्मात् रोदसी अभ्यसेता नृम्णस्य सह्ह स इन्द्रः अस्ति।

शब्दार्थ - जात - उत्पन्न होकर , मनस्वान् - मनस्वियों में अग्रगण्य, शुष्मात - शारीरिक बल से, रोदसी - द्यौ और पृथिवी , अभ्यसेता - भयभीत।

अनुवाद - हे मनुष्यो ! उस इन्द्र ने उत्पन्न होते ही अपने पराक्रम के प्रभाव से व अपने श्रेष्ठ कर्मों से देवताओं को अलंकृत कर दिया। जिसकी शक्ति से आकाश व पृथ्वी लोक दोनों ही भयभीत हो गए।

व्याख्या - ऋषि इन्द्र के पराक्रम का परिचय देते हुए कहते हैं कि इन्द्र देव मनस्वियों में अग्रगण्य हैं तथा सर्वप्रथम उत्पन्न हुए हैं उत्पन्न होते ही उन्होंने अपने प्रभाव से सभी देवताओं को अंलकृत किया इनकी शक्ति व पराक्रम से दोनो लोक भयाकृान्त हो गए।

मूल 2. यः पृथिवीं व्यधमानामदृंहद् यः पर्वतान् प्रकुपितां अरम्णात्।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात् स जनास इन्द्रः।।

अन्वयः - हे जनास ! यः व्यथमानाम् पथिवीं अदृहंत यः प्रकुपितां पर्वतान् अरम्णात्। यो अन्तरिक्षं विममे यो वरीयो द्याम अस्तभ्नात स इन्द्रः।

शब्दार्थः- व्यथमानाम - काँपती हुई , अदृहत - स्थिर किया, अरम्णात् - स्थापित किया।

अनुवाद- हे मनुष्यो ! जिसने इस काँपती हुई पृथिवी को स्थिर किया जिसने इधर उधर भटकने वाले पर्वतों को आधार दिया जिसने अन्तरिक्ष का विस्तार किया और जिसने आकाश को मापा वह इन्द्र है।

व्याख्या - इन्द्र की अतुलनीय शक्ति का परिचय देते हुए कहा गया है कि इन्द्र ने ही भूकम्पों द्वारा कॉपती हुई पृथ्वी को स्थिर किया, उपद्रवी पर्वतों को स्थापित किया, अन्तरिक्ष को अधिक विस्तीर्ण किया और आकाश का स्तम्भन किया।

मूल 3.यो हत्वामहिमरिणात् सप्तसिन्धून् यो गा उदाजदपधा वलस्य।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक समत्सु स जनास इन्द्रः ।।

अन्वय- यः अहिम हत्वा सप्तसिन्धू अरिणात बलस्य अपधा गा उदाजन। यश्च अश्मनोः अग्निं जजान समत्सु संवृक स इन्द्र।

शब्दार्थ - अपधा - अपहरण की गई, गा - गायों को , उदाजन - छुड़ाया, अश्मनः - पत्थर।

अनुवाद- हे मनुष्यों ! जिसने वृत्त नामक राक्षस को मारकर (जल वृष्टि करने के द्वारा) सात नदियों को प्रवाहित किया जिसने बल द्वारा अपरूत की गई गायों को छुड़ाया। जिसने दो पत्थरों के मध्य अग्नि को उत्पन किया और जिसने शत्रुओं का संहार किया वह इन्द्र हैं।

व्याख्या- प्रस्तुत मन्त्र में इन्द्र द्वारा किए गये अपरिमित वीरता के कार्यो का वर्णन किया है इन्द्र का सर्वप्रमुख कार्य वृत्त वध है। वृत्त ने जलों को रोककर रखा था इन्द्र ने वृत्त का वध कर जलों को प्रवाहित किया। इन्द्र के लिए मन्त्र में 'अहिम' शब्द का प्रयोग हुआ है। इन्द्र को वृत्तवध के कारण ही 'वृत्रहा' विशेषण की उपाधि प्रदान की गई है। इन्द्र ने अपने विशेष ज्ञान द्वारा दो पत्थरों के बीच अग्नि उत्पन्न करी। इन्द्र ने ही बल नामक राक्षस द्वारा अपहरण की गई गो को छुड़ाया और शत्रुओं का संहार किया।

मूल 4. येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दास वर्णमधरं गुहाकः।
श्वध्नीव यो जिगीवाँ लक्ष्मादर्दयः पुष्टानि स जनासः इन्द्रः।

अन्वय- येन इमा विश्वा च्यवना यश्च दासं वर्ण अधंर गुहाकं कृतानि यश्च लक्षम जिगीवान् श्वहनीव पुष्टानि आददर्यः स जनासः इन्द्रः।

शब्दार्थ - च्यवना - नश्वर जगत को, गुहायां - गुफा में , जिगीवान् - प्राप्त किया श्वध्नी -व्याघ्र,।

अनुवाद- हे मनुष्यो ! जिसने समस्त गतिशील लोकों का निर्माण किया, जिसने दास अथवा शूद्र वर्ण को गुफा में डाल दिया जिसने अपने लक्ष्य को प्राप्त करते हुए व्याघ्र द्वारा पशुओं के समान शत्रुओं की समृद्धि को अपने अधिकार में ले लिया वह इन्द्र है।

व्याख्या- मन्त्र में इन्द्र की अपरिमित शक्तियों का वर्णन करते हुए बताया है कि इन्द्र ने सम्पूर्ण गतिशील लोकों को स्थिर किया और अमानवीय कर्म करने वाले दास लोगों को महान् नरक में स्थान प्रदान किया यह इन्द्र के धन को उसी प्रकार ले लेता है जैसा व्याघ्र अपने शिकार को प्राप्त करता है।

मूल 5. यं स्मा पच्छन्ति कुह सेतिघोर-मुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम् ।
यो अर्यः पुष्टर्भ्विजइवामिनति श्रदस्मै धत्त स जानस इन्द्रः।।

अन्वयः- यं जनाः पृच्छन्ति सः कुह इति घोरम् उत एनम् आहु नः एषः अस्ति इति। यः विजइवाम् अर्यः पुष्टिः इनाति अस्मै श्रद धत्त स जनासः इन्द्रः ।

शब्दार्थः - कुह - कहाँ, घोरम् - भयंकर , अर्य - शत्रु, पुष्टी - समृद्धि , श्रद - श्रद्धा , विश्वास ।

अनुवाद- जिस इन्द्र देव के बारे में लोग पूछा करते हैं कि वे कहाँ हैं ? उस इन्द्र देव के सम्बन्ध में कुछ लोग कहते हैं कि वे हैं ही नहीं। वे इन्द्र देव उनको न मानने वाले लोगों की समृद्धि को वीरता के साथ नष्ट कर देते हैं। हे मनुष्यों उस इन्द्र देवता के प्रति श्रद्धा धारण करो वे इन्द्र ही हैं।

व्याख्या- भयंकर इन्द्र के प्रति लोग पूछते हैं कि वह इन्द्र कहाँ है और कुछ लोग तो कहते हैं कि वह इन्द्र की सत्ता है ही नहीं ऐसे लोगों पर इन्द्र कुपित होकर शत्रुओं की समस्त समृद्धि का हरण कर लेते हैं अतः इन्द्र कुपित न हो इसीलिए इन्द्र पर विश्वास रखने के लिए कहा गया है।

मूल 6. यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्राह्मणो नाधमानस्य कीरेः।
युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः ।।

अन्वयः- यः इन्द्रः रध्रस्य, कृशस्य ब्राह्मणो अधमानस्य कीरेः उदिताः। यो सुशिप्रः सुतसोमस्य युक्तग्राव्णो अविता स जनास इन्द्रः।

शब्दार्थ - रध्रस्य - दरिद्रों कि , कृशस्य - दुर्बलों के ।

अनुवाद- हे मनुष्यों ! जो दरिद्रों, ज्ञानियों तथा स्तुति करने वालों को धन प्रदान करते हैं सोमरस निकालने के लिए पत्थर घिसने वाले यजमान की रक्षा करते हैं वे इन्द्रदेव हैं ।

व्याख्या- मन्त्र का तात्पर्य है कि इन्द्र दरिद्रों व उनकी स्तुति करने वालों की समृद्धि को बढ़ाते हैं सोमरस का इन्द्र के साथ अनेकविध वर्णन है जो यजमान इन्द्र के लिए सोमरस साथ अनेकविध वर्णन है जो यजमान इन्द्र के लिए सोमरस पीसते हैं उनकी इन्द्र निरन्तर रक्षा करते हैं। 'इन्द्र इत्सोमपा एकः' 'सोमपा' इन्द्र का ही विशेषण बन गया है। सोमपान करने के पश्चात इन्द्र विभिन्न बलशाली कार्यो को करने में प्रवृत्त होता है।

मन्त्र 7. यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वेरथासः ।
यः सूर्य य उषसं जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः ।।

अन्वय:- यस्यः अश्वाः यस्य प्रदिशि गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः यः सूर्यं यः उषसं जजान यः अपां नेता स जनास इन्द्रः।

शब्दार्थ: - जजान - उत्पन्न किया, अपां - जलों को।

अनुवाद - हे मनुष्यों ! जिनके अधीन समस्त ग्राम, गौ , घोड़े तथा रथ हैं जिसने सूर्य तथा उषा को उत्पन्न किया जो समस्त प्रकृति को संचालन करने वाले हैं तथा जो जलों को उत्पन्न करने वाले हैं वे इन्द्र हैं।

व्याख्या - इन्द्र की सत्ता बताते हुए कहा गया है कि इन्द्र समस्त ग्राम अश्व, गौ इत्यादि को शासन करने वाले हैं इन्द्र ने ही सूर्य ऊषा इत्यादि समस्त प्रकृति का संचालन करते हैं इन्द्र ही जलों के नेता हैं अर्थात इन्द्र ने ही जलों को भी उत्पन्न किया है।

मूल 8. यं क्रन्दसी संयती विह्वयते परेऽवरे उभया अमित्राः ।
स मानं चिदथमातस्थिंवासा नाना हवेते स जनास इन्द्रः।।

अन्वय:- यं (इन्द्रः) क्रन्दसी संयती विह्वयेते उभया अमित्रा परे अवरे (विह्वयेते) समानं रथम आतस्थिवासां नाना हवेते स जनास इन्द्रः ।

शब्दार्थ - क्रन्दसी - पुकारते हैं, आतस्थिंवासा - बैठे हुए।

अनुवाद - हे मनुष्यों ! परस्पर साथ-साथ चलने वाले द्युलोक और पृथिवी लोक जिन्हें सहायता के लिए बुलाते हैं महान् तथा परम शत्रु भी जिन्हें मदद के लिए युद्ध में बुलाते हैं एक ही रथ आरूढ़ योद्धा जिनकी सहायता चाहते हैं वे इन्द्र हैं।

व्याख्या - मन्त्र का तात्पर्य है कि इन्द्र परम योद्धा हैं अतः जहाँ भी युद्ध अथवा संग्राम होता है सभी लोक इन्द्र को सहायता हेतु बुलाते हैं। और एक ही रथ पर सवार योद्धा अलग-अलग प्रकार से सहायता हेतु उनका आह्वान करते हैं।

मूल 9. यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत्स जनासो इन्द्रः।।

अन्वय:- यस्मात् ऋते विजयत्ते न यं युध्यमाना अवसे हवन्ते। यो अच्युत च्युतः स जनसो इन्द्रः ।

शब्दार्थ:- ऋते - बिना , युध्यमाना - लड़ते हुए

अनुवाद - हे मनुष्यो ! जिनकी सहायता के बिना योद्धा युद्ध में विजय प्राप्त नहीं करते और जो युद्ध में लगे वीर जन हैं अपनी रक्षा के लिए उन्हें पुकारते हैं जो इस सम्पूर्ण जगत के प्रतिनिधि हैं तथा अपरिमित शक्ति वाले असुरों का संहार करने में समर्थ हैं वे ही इन्द्र हैं।

व्याख्या - प्रस्तुत मन्त्र मैं भी इन्द्र की महिमा बताते हुए कहा है कि इन्द्र अपरिमित व अतुलनीय शक्ति से सम्पन्न हैं अतः युद्ध में निरत योद्धागण सदैव अपनी सहायता व रक्षा हेतु इन्द्र का गुणगान करते रहते हैं।

मूल 10.यः शश्वतो मध्योनो दधानान् अमन्यमानाञ्छर्वा जघान।
यः शर्घते नानुददाति शृध्यां यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः

अन्वयः- यः शर्वा अमन्यमानान् शश्वतो एनम् दधानान्। यः शृध्य। शर्धते न अनुददाति यो दस्योः हन्ता स जनास इन्द्रः।

अनुवाद - हे मनुष्यो ! जिसने अपने वज्र से महान दुष्ट शत्रुओं का हनन किया। जो अहंकारी मनुष्यों के अहंकार को नष्ट करने वाला है जो दूसरों के पदार्थो को चोरी करने वाले दुष्टों के नाशक हैं वे ही इन्द्रदेव हैं।

व्याख्या- मन्त्र में इन्द्र के विशिष्ट आयुध वज्र की चर्चा की है जिससे इन्द्र ने अनेक पापियों व दुष्टों का संहार किया इन्द्र का विलक्षण अस्त्र वज्र है जो कि देवशिल्पीत्वष्टा द्वारा बनाया गया है यह वज्र धातु अथवा स्वर्ण का बना हुआ है वज्र शतपर्व (सौ जोड़ो वाला) तथा सहस्रभृष्टिः (सहस्त्र नोकों वाला) कहा गया हैं। वज्र का इन्द्रसे इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि वज्र से बने विशेषण इन्द्र के लिए ही प्रयुक्त होते हैं जैसे वज्रहस्त, वज्रबाहु, वज्रिन इत्यादि। अतः इन्द्र अपने वज्र द्वारा दुष्ट राक्षसों का संहार करते हैं अहंकारियों के अहंकार को नष्ट करते हैं साथ ही दूसरों के धन का हरण करने वाले दुष्ट का भी संहार करते हैं।

मूल 11. यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिश्यां शरद्यन्वविन्दत् ।
ओजायानं यो अहिं जघान दानुं शयानं स जनास इन्द्रः।।

अन्वयः- यः चत्वारिश्यां शरदि पर्वतेषु क्षियन्तं शम्बरं अन्वविन्दत्। यो ओजायानं शयानं दानुं अहिं जघान स जनास इन्द्रः ।।

शब्दार्थः- क्षियन्तं - छिपे हुए , अन्वविन्दत् - खोजा, शयानं - सोता हुआ

अनुवाद - हे मनुष्यो ! जिसने चालीस वर्ष तक पर्वतों मे छिपे हुए शंबर नामक राक्षस को ढूँढ निकाला और जिसने जल को रोककर रखने वाले सोये हुए असुर वृत्र को मारा वह इन्द्र है।

व्याख्या - मन्त्र में इन्द्र के शौर्यपूर्ण कार्य वृत्र वध का वर्णन है। वृत्र के लिए ही शम्वर, नमुचि व अहि आदि नाम प्रयुक्त हुए हैं। इन्द्र ने चालीस वर्ष से गुफा में छिपे शंबर नामक असुर को ढूँढा और जलों को प्रवाहित किया। निरुक्त कार यास्क ने इन्द्र को विद्युत व वृत्त को मेघ माना है तथा इन्द्रवृत्र युद्ध को विद्युत एवं मेघ का संर्घष कहा है। इस प्रकार इन्द्र ने वृत्र को खोजकर उसे मारा तथा नदियों की धारा प्रवाहित करी।

मूल 12. यः सप्तरश्मिभिर्वृषभस्तुविष्मानवासृजत्सर्तवे सप्त सिन्धून्।
यो रौहिणमस्फुरद्वज्रबाहुर्द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्र ।।

अन्वयः- यः सप्त सिन्धून सप्त रश्मिभिः वृषभस्तततु विष्मान वा सृजत् सर्तवे। यो द्याम आरोहन्तं रौहिणम वज्र बाहुः अस्फुरत स जनास इन्द्रः।

शब्दार्थः- सर्तवे - प्रवाहित किया, आरोहन्तं - चढ़ती हुई, अस्फुरत - रोक दिया

अनुवाद- हे मनुष्यो ! जिसने सात नदियों को सूर्य की सप्त रश्मियों के समान बलपूर्वक प्रवाहित किया और जिसने द्युलोक की ओर चढ़ती रोहिणी को अपने हाथ के वज्र से रोक दिया वह ही इन्द्र है।

व्याख्या- प्रस्तुत मन्त्र में भी इन्द्र के पराक्रम का वर्णन है इन्द्र ने सप्त नदियाँ गंगा, यमुना, कावेरी, नर्मदा, सरस्वती सिन्धु, गोमती इत्यादि को उसी प्रकार संसार में प्रवाहित किया जिस प्रकार सूर्य अपनी सप्तरश्मियों का प्रसार करता है। (ऋग्वेद के नदी सूक्त में 10 नदियों के नाम प्राप्त होते हैं गोमती, क्रुमी, कुभ, सवत्सु, सिन्धु, सरस्वती, शतुद्रि, विपाशा, पुरूश्नी, अश्विनी, वितस्ता, यमुना, गंगा) इन्द्र ने ही द्युलोक की ओर जाती हुई रोहिणी को अपने वज्र द्वारा रोका था।

मूल 13. द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते।
यः सोमपा निचितो वज्रबाहुर्यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्र।।

अन्वय:- अस्मै द्यावा पृथिवी च नमेते अस्य शुष्मात् चित पर्वतो भयन्ते। यः सोमपा निचितो यः वज्रबाहुः वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः।

शब्दार्थ- शुष्मात् - पराक्रम , निचितो - पान करने वाले ।

अनुवाद- हे मनुष्यो ! जिनके प्रति यह द्युलोक और पृथ्वी लोक नमनशील हैं जिनके पराक्रम से पर्वत भी भयाक्रान्त रहते है जो सोम का पान करने वाले हैं वज्र के समान भुजाओं वाले हैं तथा वज्र के समान ही हाथ वाले हैं वे ही इन्द्र हैं।

व्याख्या- इन्द्र की स्तुति करते हुए इन्द्र की विशेषताओं का वर्णन करते हुए ऋषि कहते हैं कि सम्पूर्ण संसार इन्द्र के प्रति नतमस्तक है उनके बल से पर्वत भी डरकर रहते हैं इन्द्र को सोमरस अत्यधिक प्रिय है अतः इन्द्र सोमरस का पान करने वाले हैं उनकी भुजाऐं वज्र नामक अस्त्र जैसी बलशाली हैं।

मूल 14. यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यं शसन्तं यः शशमानमूती।
यस्य ब्रह्मा वर्धनं यस्य सोमो पस्येदं राधः स जनास इन्द्र ।।

अन्वय:- यः सुन्वन्तम् यः पचन्तं, शंसन्तं यः शशमानम् अवति यस्य बह्मा यस्य सोमो यस्य इदं राधः वर्धनं स जनास इन्द्रः।

शब्दार्थ:- सुन्वन्तम् - सोमरस निकालने वाले , शसन्तम् - स्तुति करने वाले , शशमानम् - साधन से, राधः - ऐश्वर्य ।

अनुवाद - हे मनुष्यो ! जो सोमरस निकालने वाले उसे शुद्ध करने वाले को स्त्रोतों के द्वारा स्तुतियाँ करने वाले को संरक्षण देते हैं जिनकी स्तुतियाँ एवं सोम हमारे ऐश्वर्य को बढ़ाने वाला है वे ही इन्द्रदेव हैं ।

व्याख्या - मन्त्र में बताया गया है कि इन्द्र देव अपने यजमान की सुख समृद्धि व ऐश्वर्य को बढ़ाने वाले हैं जो कि इन्द्र के लिए सोमरस निकालते है और उसे पवित्र करते हैं साथ ही वे इन्द्र देव की अनेकों प्रकार से स्तुतियाँ करते हैं अर्थात उन्हें प्रसन्न करने की चेष्टा करते हैं। ऐसे यजमानों के लिए इन्द्र भी ऐश्वर्य बढ़ाते हैं।

मूल 15. यः सुन्वते पचते दुध्र आ चिदाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः।
वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वेदेम।।

अन्वयः- यः सुन्वते पचते दुध्र आ चित् वाजं दर्दर्षि स सत्यः किल असि इन्द्र वयं प्रियासः सुवीरासो विश्वह विदथमा वदेम॥

शब्दार्थ - दुर्ध -शुद्ध करने वाले , वाजं - धन , किल - निश्चित रूप से , विदथमा - यशोगान ।

अनुवाद- जो सोमयज्ञ करने वाले तथा सोमरस को शुद्ध करने वाले यजमान को धन प्रदान करते हैं वे ही निश्चित रूप से इन्द्र हैं हम अपनी समस्त प्रजा के साथ और प्रियजनों के साथ सदा ही आप इन्द्र देव की यशगाथा का गान करें।

व्याख्या- मन्त्र का तात्पर्य है कि इन्द्रदेव जो कि अपने यजमानों की कामना पूर्ति करने वाले एवं समस्त ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हैं उस पराक्रमी देवों के देव की हम समस्त प्रिय जनों के साथ स्तुति करते हैं तथा उनके यश एवं कीर्ति का गुणगान करते हैं।

2.5 सारांश

उपरोक्त इन्द्र सूक्त के अन्तर्गत हमने इन्द्र के बलशाली व पराक्रमी कार्यो के विषय में पढ़ा। साथ ही इन्द्र का स्वरूप भी जाना। इन्द्र को वृत्तासुर का विनाशक, शम्बर नामक दैत्य का हननकर्ता, शत्रुओं का विनाशक बताया गया है। इन्द्र ने आकाश में द्युलोक को स्थिर किया, उपद्रवी पर्वतों को स्थापित किया अन्तरिक्ष का विस्तार किया। इन्द्र की शक्ति अतुलनीय है वह अपने शस्त्र वज्र से पापियों का संहार कर देते हैं। सोमरस इन्द्र का विशेष प्रिय पेय है सोमपा विशेषण इन्द्र के सोमपान करने पर ही प्रयुक्त किया गया है। इन्द्र अपने उपासकों की सहायता करते हैं और उन्हें धन धान्य इत्यादि से सम्पन्न करते हैं। इस प्रकार इन्द्र वज्रबाहु ,वज्रहस्त, सुशिप्र हैं। अतः इन्द्र समस्त संसार का एकमात्र शासक है।

2.6 शब्दावली

पर्यभूषत	-	अलंकृत किया
रोदसी	-	द्यौ और पृथ्वी लोक
शुष्मात्	-	शारीरिक बल
अभ्यसेताम्	-	भयभीत
व्यथमानाम्	-	काँपती हुई
अदृंहत	-	स्थिर किया
प्रकुपितानाम्	-	कुपित हुए
अरम्णान्	-	स्थापित किया
अश्मनः	-	पत्थर
समत्सु	-	युद्ध में
च्यवना	-	विश्व में
गुहायां	-	गुफा में, नरक में

श्वध्नीव	-	व्याघ्र के समान
घोर	-	भयंकर
कृशस्य	-	दुर्बल का
सुशिप्रः	-	सुन्दर हनु वाले
अविता	-	रक्षक
जजान	-	उत्पन्न करने वाला
ऋते	-	बिना
दस्योः	-	शूद्र , दास वर्ण
दानुं	-	असुर
तुविष्मान	-	वृष्टि करते हुए
शुष्मात्	-	बल से
सोमपा	-	सोमरस का पान करने वाला

अभ्यास प्रश्न -

1. 'सोमपा' किस देवता का विशेषण है-

(क) अग्नि (ख) विष्णु (ग) इन्द्र (घ) वरूण

2. 'वृत्तवध' किसका प्रमुख कार्य है-

(क) रूद्र का (ख) सोम का (ग) विष्णु का (घ) इन्द्र का

3. इन्द्र सूक्त के ऋषि कौन है-

(क) ग्रत्समद (ख) शुनः शेष (ग) मधुच्छदा (घ) विश्वामित्र

4. सुशिप्रः शब्द का अर्थ क्या है-

(क) सुन्दर हनु वाले (ख) तीव्र गति वाले (ग) सोमरस का पान करने वाले

2. लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. इन्द्र के तीन विशेषण नाम लिखिए।
2. इन्द्र ने किस प्रमुख असुर का संवर किया था
3. इन्द्र का शस्त्र कौन सा है?

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. (ग)
2. (घ)
3. (क)
4. (क)

2. -1. सोमपा , वज्रहस्तः , सुशिप्र
2. शम्बर, वृत्त
3. वज्र

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वैदिक साहित्य का इतिहास - राममूर्ति शर्मा
2. कल्याण वेद कथा अंक
3. वैदिक साहित्य का इतिहास - प्रीतिप्रभा गोयल

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. इन्द्र के स्वरूप का वर्णन कीजिए।
2. इन्द्र के पराक्रम कार्यों का वर्णन कीजिए।

इकाई-3 उषस् सूक्त एवं नासदीय सूक्त मूलपाठ अर्थ एवं व्याख्या

इकाई की रूपारेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 उषस् सूक्त मूलपाठ अर्थ एवं व्याख्या
3.4 नासदीय सूक्त मूलपाठ अर्थ एवं व्याख्या
3.5 सारांश
3.6 शब्दावली
3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.8 सन्दार्भ ग्रन्थं सूची
3.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1.प्रस्तावना:-

प्रिय शिक्षार्थियों !

वैदिक अध्ययन से सम्बन्धित यह तृतीय खण्ड (VAC- 01) की यह तृतीय इकाई है। इसके पूर्व की इकाई में आपने इन्द्र सूक्त के माध्यम से वैदिक देवता इन्द्र की समस्त विशेषताओं का अध्ययन किया है। इस इकाई के अन्तर्गत आप उषासूक्त एवं नासदीयसूक्त के स्वरूप एवं उसके कार्यों का अध्ययन करेगें। उषस् सूक्त ऋग्वेद के तृतीय मण्डल का इकसठवाँ सूक्त है। इसके ऋषि विश्वामित्र तथा देवता उषस् हैं। सम्पूर्ण सूक्त में त्रिष्टुप् छन्द का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत सूक्त में वर्णित उषस् को सत्य एवं असत्य का उच्चारण करने वाली तथा विशेष रूप से शोभायमान बताया गया है। सूर्य को उषा का प्रेरयिता बताया गया है। रात्रि तथा उषा को दो बहनों के रूप में चित्रित किया गया है। नासदीय सूक्त के अन्तर्गत देवता सृष्टि, सृष्टि के कर्ता, स्थिति एवं प्रलय के विषय में अत्यन्त गूढ़ विवेचन किया गया है। इस सूक्त के ऋषि परमेष्ठी प्रजापति तथा देवता परमात्मा हैं। नासदीय सूक्त की अपनी एक अलग दार्शनिक महत्ता है।

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप उषा के विभिन्न स्वरूपों एवं उसके पराक्रम को बतायेगें साथ ही सृष्टि की प्रलयावस्था में जगत की स्थिति आदि की जानकारी प्राप्त कर यह बता सकेंगे कि विविध प्रकार की सृष्टि कैसे हुई।

3.2. उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप—

- ऋग्वेद में वर्णित उषा के स्वरूप को निरूपित कर सकेंगे।
- उषस् के विभिन्न रूपों की महत्ता को जान सकेंगे।
- उषस् सूक्त में उषा की स्तुतियाँ कितने मंत्रों के माध्यम से की गयी ?
- उषा के विशिष्ट कार्यों का उल्लेख कर सकेंगे।
- सृष्टि के स्वरूप को रेखांकित कर सकेंगे।
- सम्पूर्ण जगत् जलमय रूप में किस प्रकार था, इसका उल्लेख करने में समर्थ हो सकेंगे।
- विविध प्रकार की सृष्टि का उपादान कारण क्या है, इसे बतलाने में सक्षम हो सकेंगे।
- विभिन्न रूपों वाली सृष्टि का निमित्त कारण से अवगत को सकेंगे।

3.3. उषस् सूक्त मूलपाठ अर्थ एवं व्याख्या

ऋषि-विश्वामित्र , देवता - उषस् छन्द- त्रिष्टुप्, मण्डल -3, सूक्त -69

मूलपाठ

उषो वाजेन । वाजिनि प्रचेत: स्तोमं जुषस्व गृणतो मघोनि।
पुराणी देवि युवति: पुरंधिरनु व्रतं चरसि विश्ववारे।।1।।

पदपाठ:

उषः। वाजेन वाजिनि ।प्रऽचेताः।
स्तोमम् जुषस्व। गृणतः। मघोनिः।
पुराणी। देवि। युवतिः। पुरंऽधिः।अनु। व्रतम्। चरसि। विश्वऽवारे।।1।।

अन्वय-वाजेन वाजिनि मघोनि उषः। प्रचेताः गृणतः स्तोमम् जुषस्व। विश्ववारे देवि। पुराणी युवतिः
पुरन्धिः व्रतम् अनुचरसि।

सायण- वाजेन वाजिनि अन्नेन अन्नवति। मघोनि धनवति हे उषः। प्रचेताः प्रकृष्ट ज्ञानवती सती गृणतः तव सतोत्रं कुर्वतः स्तोतु: स्तोमं स्तोत्रं जुषस्व सेवस्वि। यद्वावाजेन हविर्लक्षणेनान्नेन सह स्तोमं जुषस्वेति सम्बन्धः।विश्वःवारेसर्वैर्वरणीये हे उषो देवि पुराणी पुरातनी युवति तरणीत्युषपमा । तद्वच्छोभना। सुसंकाशा मातृमृष्टेच योषेतिवत्। (ऋग् 01/123/2) पुरन्धिः पुरू बहु धी स्तोत्रलक्षणं कर्म यस्याः सा। बहुस्तोत्रवती पुरूधिर्बहुधीरिति यास्कः। पुरन्धि शोभमाना वा। एवंविघगुणोपेता त्वमनुप्व्रतं यज्ञकर्माभिलक्ष्यय चरसि यष्टव्यतया वर्तते।

अर्थ- अन्न से अन्नवती तथा धन से सम्पन्न हे उषा देवी। तुम प्रकृष्ट ज्ञान वाली होती हुई स्तुति करने वाले के स्तोत्र को ग्रहण करो। सम्पूर्ण विश्व के द्वारा वरणीय, दिव्य गुणों से सम्पन्न हे उष देवी तुम पुरातनी युवती के समान हो अथवा सनातन काल से युवती ही बनी हुई हो, बहुत अधिक बुद्धिशालिनी हो और तुम हमारे यज्ञ आदि नियम व्रत को लक्ष्य करके विचरण करती हो अर्थात उनका पालन करती हो।

व्याख्या- उषा को सदा नवीन रहने के कारण " पुराणी युवतिः'' भी कहा जाता है। वाज शब्द के अनेक अर्थ है- Swiftness, Race, Prize of Race gain, treasure, food, oblation, strength, strife, contest, booty आदि। मैक्समूलर ने तो वाजेन वाजिनि का अर्थ 'Wealthy by wealth or booty' किया है। यहाँ पर 'वार' का अर्थ सब वरणीय धनों से सम्पन्न हो सकता है। वार का मतलब दिन से भी होता है अतः विश्ववारे का अर्थ प्रतिदिन भी हो सकता है। व्याकरणीय दृष्टि से हम उषा सूक्त के इस मन्त्र के एक-2 शब्दों को इस पर समझ सकते हैं -

व्याकरण- जुषस्व-जुष् धातु, लोट लकार, मध्यम पुरूष एक वचन वजिनि-वाजः अस्य अस्ति अर्थ में वाज+इनि+ङीप। सम्बोधन एकवचन। गृणत:-गृ+श्ना,+शतृ षष्ठी विभक्ति एक वचन। मघोनि-'मघ' शब्द से 'मतुप्' के अर्थ में वैदिक, 'वनिन् प्रत्यय। व को 'उ' सम्प्रसारण और 'ऋन्नेभ्यो ङीप्' से ङीप्- मघोनी। सम्बोधन का एकवचन। युवतिः-युवन्ति = युवतिः। न का लोप। विश्ववारे- विश्वनृण (अ) टाप्। सम्बोधन का एकवचन। चरसि-विचरण करती हो।स्तोमम्-स्तोत्र को। प्रचेताः-प्रकृष्ट ज्ञान वाली। पुरंधिः-पुरम् धी यस्या अर्थ में 'पृषोदरा- दिव्वात् नियम से पुरू को पुरम् आदेश हुआ तो पुरंधि शब्द बना।

मूलपाठ

उषो देव्यमर्त्या विभाहि चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती।

आ त्वा वहन्तु सुयभासो अश्वा हिरण्यवर्णा पृथुयाजसो ये।।2।।

पदपाठ

उषः। देवि। अमर्त्या। वि। भाहि।

चन्द्रऽरथा। सूनृताः। ईरयन्ती।

आ। त्वा। वहन्तु। सुऽयमासः। अश्वाः।

हिरण्यवर्णा पृथुऽपाजसः। ये।।2।।

अन्वय- उषः देवि। अमर्त्या चन्द्ररथा सूनृताः ईरयन्ती विभाहि।पृथुपाजसः सुयमासः ये अश्वाः हिरण्यवर्णाम् त्वा आवहन्तु।

सायण- हे उषो देवि अमर्त्या मरणधर्मरहिता चन्द्ररथा सुवर्णमयारथो-पेता सूनृताः प्रियसत्यरूपा वा च ईरयन्ती उच्चारण-पृथुपाजसः प्रभूत बलयुक्ता अरूणवर्णा येऽश विद्यन्ते सुयमासः सुष्णु नियन्तु शक्या रथे योजितास्तेऽश्वा हिरव्यवर्णा त्वा त्वामावहन्तु सुयमासः यमेरकृच्छ्रार्थे रवल्।

अर्थ- हे उषा देवी! दिव्य गुणों वाली तुम मरण धर्म से रहित होती हुई, सुवर्णमय रथ पर आरूढ होती हुई, प्रिय और सत्य वाणियों का उच्चारण करती हुई, सूर्य किरणों के सम्बन्ध में विशेष रूप से शोभायमान बनो। अत्यधिक बलशाली और अच्छी प्रकार से नियन्त्रित जो तुम्हारे अरूण वर्ण घोड़े हैं, वे स्वर्ण के समान दीप्तिमान तुमको हमारे सम्मुख लायें।

व्याख्याय- दिव्यगुणवाली मरणधर्म से रहित आदि जो भी विशेषणयुक्त बातें बतलायी गयी है, ये उषा के विभिन्न गुणों को रेखांकित करती है। घोड़ो की विशेषता बतलाते हुए यह कहा गया हे कि ये प्रतिभाशाली और अच्छी प्रकार से नियंत्रित है और ये घोड़े स्वर्ण के समान दीप्तिमान है ये ही तुमको हमारे सम्मुख लायें। उषा की प्रशंसा करते हुए विश्वामित्र ऋषि कहते है कि हे उषा देवी तुम मरण धर्म से रहित हो तथा तुम विशेष रूप से सुशोभित हो जाओ मेरी यही कामना है। तुम्हारी वाणी प्रिय है तथा तुम सत्य वाणी का उच्चारण करती हो।सूर्य की-किरणों के सम्बन्ध को रेखांकित कर ऋषि विश्वामित्र कहते है कि तुम इनके सम्बन्ध से विशेष प्रकार से शोभायमान हो जाओं। घोड़ो की विशेषता बतलाते हुए कहते हैं कि ये तुम्हारे अरूण वर्ण के घोड़े सब तरह से नियंत्रण में हैं।

व्याकरण- भाहि -भा धातु, लोट लकार, मध्यम पुरूष एकवचन। ईरयन्ती-ईरणिच्शतृङीप्। सुनृता-सुऋतटाप् (यहाँ पर नुत् का आगम तथा दीर्घ हुआ) सुयमासः-सुयमखल्=सुयम। प्रथमा विभक्ति के बहुवचन का वैदिक रूप।पृथुयाजसः-पुथुपाजः येषांते। याजुत् (ज्) असुन् (अस्) याजस्। पीटर्सन ने 'पृथुयाजसः 'का अर्थ 'अत्यधिक चमक वाला' बताया है। यहाँ पर सुयमासः का अर्थ 'सुख पूर्वक जोते जा सकने वाला' भी हो सकता है।

मूलपाठ

उषः प्रतीची भुवनानि विश्वोर्ध्वा तिष्ठस्यमृतस्य केतुः।

समान्मर्थ चरणीयमाना चक्रर्मिक नण्यस्या ववृत्स्व।।3।।

पदपाठ

उषं। प्रतीची। भुवनानि विश्वा।
उर्ध्वा। निष्टसि। अमृतस्य। केतुः।
समानम् अर्थम्। चरणीयमाना।
चक्रमिक नण्यसि। आ। ववृत्स्व।।3।।

अन्वय- उषः। विश्वा भुवनानि प्रतीची अगृतस्य केतुः उर्ध्वा निष्टसि। नण्यसि। समानम् अर्थम् चरणीयमाना चक्रम् इव आंनृवत्स्व।

सायण- हे उषो देवी! थ्वश्वा भुवनानि सर्वाणि प्रतीची। प्रति आभिमुचयेन अञ्चति प्राप्नोती प्रतीची। अमृतस्य मरणधर्म रहितस्य सूर्यत्य केतुः प्रज्ञाययित्रीति त्वमूर्ध्वा नभस्युन्नता तिष्ठसि। नण्यसि पुनः पुनर्जायमानतया नवतरे हे उषो देवी! अर्थम् अर्थते गम्यतेऽस्मिन्नित्यर्थो मार्गः समानमेकं मार्गमुदयात्प्राचीनकाललक्षणं चरणीयमाना चरितुमिच्छन्ती, त्वमस्यावनृत्सव पुनस्तस्मिन्मार्गम् आवृता भाव। तत्र दृष्टान्तः। चक्रमिव यथा नभसि चरितृः सूर्यस्थ रथाऽऋग पुनः पुनरावर्तते तद्वत्।

अर्थ- हे उषा देवी! तुम सम्पूर्ण लोकों के तरफ जाती हुई मरण धर्म से रहित सूर्य की ध्वजा अर्थात उसका बोधन कराने वाली उपर आकाश में स्थित होती हो। सदा नवीन रहने वाली हे उषा। तुम एक ही मार्ग पर विचरण करती हुई सूर्य के पहिये के चक्र के समान पुनः पुनः घूमती रहो।

व्याख्या- उषा देवी के बारे में यशगान करते हुए विश्वामित्र ऋषि का कहना है कि हे उषा देवी! सम्पूर्ण या जितने भी लोक है इस सृष्टि में आप उन सभी के सम्मुख अर्थात् सामने जाती है। आप सूर्य के ध्वजा अर्थात् उनकी सत्ता का बोध कराती है और आप आकाश में स्थित हैं। आप कभी प्राचीन नही हो सकती है। आप सर्वथा चिरस्थायी रहेगी। सूर्य का पहिया जिस प्रकार घूमता रहता है आप उसी प्रकार पुनः पुनः अर्थात बार-बार घूमती रहे।

व्याकरण- प्रतीची-प्रति अञ्चुकिवन्। "अञ्चतेश्चोपसंख्यानम्'' से ड़ीप्। 'अञ्च्' के अं औरञ् तथा प्रति के इ को दीर्ध ई हुआ है। यहाँ पर विश्वा भुवनानि प्रतीची का अर्थ है-'In the Face of all Creatures' चरणीयमाना-'चरणम् इच्छति' अर्थ मे चरण क्यच्शानच्टाप्। केतुः- 'चाय् पूजायाम्' धातु से चाय् तुन्। 'चाय' को ही 'की' आदेश हुआ और गुण होकर केतु बना। ववृत्स्व- यड् लुगन्त वृत् धातु, लोट्लकार, मध्यमपुरूष एकवचन। नण्यसि- नवईयसुनड़ीप्। नव के 'अ' और प्रत्यय के ई का वैदिक लोप = नण्यसि। सम्बोधन एकवचन यहाँ पर समानम् अर्थ चरणीयमाना का अर्थ है-'Pressing Forward to the Same Mark' अर्थात् As in Former daysA आप के सामने एक मंत्र प्रस्तुत है जिसकी तुलना ऋग्वेद से करनी चाहिए-

समानो अध्वा स्वत्रोरनन्तस्यमन्यान्या चरतोदेव शिष्टे।
न मेथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तोषासा समनसा विस्पे।।

रात्रि और उषा को दो बहनें माना जाता है। ये न कभी रूकने वाली है न कभी ठहरने वाली हैं बल्कि अबाध गति से घूमती रहती हैं। इनके विचार एक दूसरे के प्रति सहानुभूतिपूर्ण रहते हैं और एक दूसरे से मिलता जुलते हैं परन्तु इनके स्वरूप परस्पर भिन्न हैं। यहाँ पर छन्द के अनुरोध से

'विश्वोर्ध्वा ' को 'विश्वा 'उर्ध्वा' 'तिष्ठकत्यमृतस्य' को 'तिष्टसि अमृतस्य तथा' नण्यस्या' को 'नण्यसि आ' पढ़ना चाहिए।

मूलपाठ

अव् स्युमैव चिन्वती मघोन्युषा याति स्वसरस्य पत्नी ।
स्वर्जनन्ती सुभमा सुदंसा आन्तादिदवः प्रपथ आपृथिव्या ।।4।।

पदपाठ

अव। स्यूमऽइव। चिन्वती मघोनी।
उषाः। याति। स्वसरस्य। पत्नी।
स्वः। जनन्ती। सुऽभागा। सुडदंसाः।
आ। अन्तात्। दिवः। पप्रथे। आ। पृथिव्या।।4।।

अन्वय- मघोनी स्वसरस्य पत्नी उषाः स्यूम इव अवचिन्वती याति। स्वः जनन्ती सुभगा सुदंसाः दिवः आ अन्तात् पृथिव्याः आ पप्रथे।

सायण- येयभुषाः वस्त्रमिव विस्तृतं नमः अवचिन्वती अवचयमपक्षयं प्रापयन्ती माघोनी धनवती। स्वसरस्य सुष्ठु अस्यति सिपति तम इति स्वसरः सूर्यो वासरो वा तस्य। पत्नी सती याति गच्छति। स्वः स्वकीयं तेजः जनन्ती जनयन्ती सुभागा सुघना सौभाग्ययुक्ता वा सुदंसाः शोभनाग्निहोत्रकर्म सेयमुषा दिवः द्युलोकस्य आ अन्तात् पृधिव्याश्च आ अन्तात् अवसानात्प्रपथे प्रकाशत इत्यर्थः।

अर्थ- धनसम्पत्ति से परिपूर्ण सूर्य की या दिन की पत्नी होती हुई यह उषा देवी वस्त्र के समान आच्छादित करने वाले अन्धकार का विनाश करती हुई अथवा अपने वस्त्र के अहंकार को फैकती हुई चली जाती है। अपने तेज को उत्पन्न करती हुई अथवा स्वर्ग को सजीव करती हुई, सुन्दर यज्ञरूपकर्म वाली यह उषा द्युलोक के अन्तिम किनारे से लेकर पृथ्वी के अन्तिम किनारे तक फैल जाती है।

व्याख्या- प्रस्तुत मंत्र में पीटर्सन नें 'स्यूम' का अर्थ वस्त्र बताया है और 'स्यूमेव चिन्वती' का अर्थ है- asting aside as it were, her के विषय में वस्त्र का उदाहरण देकर बताया गया है कि जिस प्रकार शरीर को वस्त्र ढकते हैं उसी पर प्रकार उषा देवी अन्धकार का विनाश करती है। ये धन-सम्पत्ति से परिपूर्ण है। ये सुन्दर यज्ञ रूपी कर्मो वाली है जो द्युलोक से लेकर पृथ्वी के अन्तिम किनारे तक फैली हुई है। रॉथ ने ऋग्वेद के 1/113/7 वें मंत्र में'स्यूमन' को Hymen नामक ग्रीक देवता के समानार्थक माना है। 'स्यूम' का अर्थ है- The mistress o the house bestirs herself, drawing back the Strap that closes the door। ग्रासमान के अनुसार 'अवस्यूमेव चिन्वती' का अर्थ है- 'Unloosening her girdle। लुडविग ने इस प्रकार बताया है- 'Shaking reins in order to urge on her horses, or throwing reins away alto-gather in order to alight. सायण ने 'स्वरस्य पत्नी' का अर्थ बताया है उसे पीटर्सन ने अशुद्ध माना है और कहा है कि-

'Queen of all World' होना चाहिए। पीटर्सन के अनुसार 'स्वर्जनन्ती ' का अर्थ 'Bringing

heaven to life' जव सपमिष् होना चाहिए और 'सुदंसाः' का अर्थ Doing wonderful and glorious deed होना चाहिए। इसका अर्थ सुन्दर रूपवाली भी हो सकता है।

व्याकरण- चिन्वती- चि (सु) शतृड़ीप=चिन्वतीमघोनी-मघवनिन् ङीप्= मघोनीस्यूम- 'षिवुतन्तुसन्ताने' धातु से मन् प्रत्यय। सिवम । सिव् के 'व' को 'च्छवोः शूडनुनासिके च से 'उठ' और 'इ' को यण आदेश हुआ तो स्यूम बना। द्वितीया विभिक्त एकवचन वैदिक रूप। स्वसरस्य- 'सुष्ठु अस्यति सिपति तमः' अर्थ में'सुअस् से अरक्' प्रत्यय=स्वसर। षष्ठी विभक्ति एकवचन।जनन्ती- णिजन्त 'जन' धातु से शतृ। 'छन्दस्यु- भयथा'' से णिच् का लोप होकर जनन्ती बना।

अभ्यास प्रश्न-1

1. उषस् सूक्त के ऋषि हैं-

(i) वशिष्ट (ii) कपिल

(iii) विश्वामित्र (iv) भर्तृहरि

2. उषस् सूक्त में छनद का प्रयोग किया गया है-

(i) त्रिष्टुनप् (ii) वंशस्थ

(iii) मालिनी (iv) बसन्ततिलका

3. उषस् सूक्त-61 ऋग्वेद के किस मण्डल से गृहीत है-

(i) चतुर्थ (ii) तृतीय

(iii) प्रथम (iv) षष्ट

4. "गृणतः'' शब्द किस विभक्ति एवं किस वचन का रूप है-

(i) षष्टी एकवचन (ii) सप्तमी बहुवचन

(iii) चतुर्थी द्विवचन (iv) तृतीया एकवचन

5. "नण्यसि'' शब्द किस विभक्ति एवं किस बचन का रूप है-

(i) सम्बोधन द्विवचन (ii) सप्तमी बहुवचन

(iii) सम्बोधन बहुवचन (iv) सम्बोधन एकवचन

6. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

क. उषो वाजेन वाजिनि प्रचेतः.....गृणतो मघोनि।

ख. आत्वा नहन्तु सुयमासो.....पृथुयाजसो ये।

ग. समानमर्थ चरणीयमाना.....नण्यस्या ववृत्स्व।

घ. पीटर्सन ने.....का अर्थ अत्यधिक चमकवाला बताया है।

ङ. सदा नवीन रहने के कारण उषा को .....की कहा जाता है।

च. उषा और .....को दो बहने माना जाता है।

छ. पीटर्सन ने स्यूम का अर्थ.....बताया है।

ज. रॉथ ने स्यूम का अर्थ.....नामक ग्रीन देवता के समानार्थक माना है।

मूलपाठ

अच्छा वेा देवी युषसं विभाती प्र वो भरध्वं नमसा सुवृक्तिन्।
ऊर्ध्व मधुधा दिवि पाजो अश्रेत प्ररोचना रूरूचे रण्वसंदृक्।।5।।

पदपाठ

अच्छा। व देवीम्। उषसम्। विडभातीम ।
प्र। वः भरध्वम। नमसा । सुडवृक्तिम्।
ऊर्ध्वम। मधुधा। दिवि। पाजः। अश्रेत।
प्र। रोचना। रूरूचे। रण्वसंदृक्।।

अन्वय- वः अच्छ विभातीम् देवीय् उष्सम वः नमसा सुवृक्त्म् प्रभरध्वम् गधुधा दिवि ऊर्ध्वम् पाजः अश्रेत् रण्वसंध्क् रोचना प्ररूरूचे।

सायण- हे स्तोतारो व युष्माननश्च अभिलक्ष्य विभाती शोभमान मुषसं देवी प्रति यो युष्माकं सम्बन्धिनान मसा नमस्कारेण सह सुवृक्ति शोभनां स्तुति प्र भरध्व यूयं कुरूत। मधुआ मधुराणि स्तुति लक्षणानि वाकयानि दधातीति मधु सोमः तं धारयतीति वा। यद्धा मधुधा आदित्यधात्री। यद्धा अवग्राहा-भावादन्ययुन्त्पन्नावयवमरखण्डभिदमुषो नाम। सेयमुषाः दिविनभसि ऊर्ध्व उर्ध्वाभिमुखं पाजः तेजः अश्रेत् श्रयति। तथा रोचना रोनशीला रण्वसंध्य रमणीयदशना उषा प्र रूरूचे प्रकर्षेण दीप्यते। यद्धा रोचनालोकान्प्ररूरूचे प्रकर्वेण स्वतेजसा दीप्यति।

अर्थ- हेस्तुति करने वालो! अपने सामने स्वच्छ रूप् से प्रकाशित होती हुई देवी उषा के प्रति तुम सब नमस्कार के साथ उत्तम सुन्दर स्तुति करो । मधु अर्थात् स्तुतियों को या सम को अथवा आदित्य को धारण करेने वाली यह उषा देवी द्युलोकमें उर्ध्वाभिमुख होकर तेज या बल का आश्रय लेती है और रमणीय दर्शन वाली होती हुई प्रकाशित होने वाले लोको को अपने तेज से अतिशय रूप से
प्रकाशित करती है।

व्याख्या- प्रस्तुत मंत्र में विश्वामित्र ऋषि सभी स्तुति करने वालों से यह कहते है कि हे स्तुति करने वालों आपके सामने जो स्वच्छ रूप् से भली-भाँति अच्छी प्रकार से प्रकाशित होती हुई उषा देवी को तुम सभी नमस्कार करो तथा तुम सभी उत्तम तरीके से इनकी स्तुती करो। उषा देवीमधु तथा आदित्य को धारण करने वाली है। ये लोक को प्रकाशित करने वाली देवी है। द्युलोक में उर्ध्वाभिमुख तेज या बल का आश्रय (सहारा) लेती हो।

प्रस्तुत मंत्र में वः का दो बार प्रयोग हुआ है। यहाँ पर पहले व को द्वितीयान्त मानकर इसका सम्बन्ध देवी उषस् के साथ जोड़ा गया है। द्वितीय 'वः' में षष्टी विभक्ति मानकर इसका सम्बन्ध 'नमसा' के साथ जोड़ा गया है। ग्रासमान, लुडविग और कोलबुक ने इसका सम्बन्ध 'सुवृक्तिम्' के साथ किया है। 'सुवृक्तिम्' का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ साफ करना या काटना (Cleaning of Trimming) पीटर्सन ने माना है। इस प्रकार यहाँ अर्थ होगा- Cleaning and trimming of

grass on which as on a small altar, the oblation, is offeredA"अपने प्रकाश को फैलाती है'' ऐसा माना है।

व्याकरण-1.विभातीम्- विभाशतृड़ीप । द्वितीया विभक्ति एकवचन। यहाँ पर लोक में विभान्तीम् रूप भी बल सकता है।

2.भरध्वम्- भृ धातु (आत्मनेपद) लोट् लकार, मध्यम् पुरूष एकवचन

3.श्रोचना- रचपुन (अन)टाप्।

4.स्वृक्तिम्-सु पूर्वक 'वृजी वजर्ने धातु' धातु से 'किन' प्रत्यय ।

5.अश्रेत- 'श्रिञ्' धातु, वर्तमान के अर्थ में लड़् लकार, प्रथम पुरूष, एकवचन (वैदिक रूप)

6.रूरूचे- रूच् धातु (आत्मनेपद) लिट् लकार, प्रथम पुरूष, एकवचन। लट् के अर्थ में लिट्

7.मधुधा- मधु दधाति अर्थ में मधु+ध+क्विप्।

8.रण्वसध्क्- रवि (एव्) +अच् =एवं। समध्श क्विय्=संहक् एवं संहक् यस्याः सा=एवसंहक्।

मूलपाठ

ऋतावरो दिनो अर्कैरबोध्या रेवती रोद्सी चित्रमस्थात्।
आयतीमग्न उषसं विभाति वाममेषि द्रविणं भिसमाणः।।

पदपाठ

ऋत्यडवरी। दिवः।अर्कै। अबोधि। आ।
रवती। रोदसी इति। चित्रम्। अस्थात।
आडयतीम्। अग्ने। उषसम्। विडभातीम्।
वामम् एषि। द्रविणम्। भिसमाणः।।6।।

अन्वय-ऋतावरी दिवः अर्कैः अबोधि रेवती रोदसी चित्रम् आ अस्थात्। अग्ने। आयतीम् विभातीम् उषसम् भिसमाणः वामम् द्रविणम् एषि।

सायण- ऋतावरी सत्यवती मेयमुषा दिवः द्यालोकादर्कैस्तेजोभिस्बोधि सर्वैर्ज्ञायते। ततो रेवती धनवती सेयं रोदसी द्यावापृथिव्यों चित्रं नानाविधरूपयुक्तं यथा आ+अस्थात् सर्वतो व्याप्य तिष्टति। हे अम्ने। आयती त्वदभिमुखमागच्छन्ती विभाती भासमानामुषसमुषोदेवी मिसमाणो हवींषि याच मानस्टवं वामं वननीयं प्रविणमग्निहोत्रादिलसणं धनमेषि प्राप्नोषि।

अर्थ-सत्य से युक्त अथवा सत्य नियमों का पालन कराने वाली उषा देवी द्युलोक से आने वाले अपने तेज पञ्ज से जानी जाती है। धन से युक्त होती हुई यह उषा द्युलोक और पृथिवीलोक को नाना प्रकार के रूपों से युक्त होकर व्याप्त करके स्थित होती है। हे अग्नि देवता अपनी ओर आती प्रकाश मान उषा देवी से हवि की याचना करते हुए तुम अभीष्ट या बॉटने योग्य धन को प्राप्त करते हो।

व्याख्या-उषा देवी सत्य से परिपूर्ण है तथा इन्हे सत्य नियमों का पालन कराने वाली के रूप में जाना जाता है। नाना प्रकार रूपों से युक्त तथा धन से युक्त उषा द्युलोक और पृथ्वी लोक व्याप्त करके स्थित होती है। उषा की प्रशंसा करते हुए विश्वामित्र ऋषि अग्नि देव से कहते है कि हे अग्नि

देव तुम अपनी ओर आती हुई प्रकाशमान देवी से हवि की याचना करते हुए तुम अभीष्ट या बॉटने योग्य धन को प्रापत करते हो।

प्रस्तुत मंत्र में पीटर्सन ने इस मंत्र का अर्थ भिन्न प्रकार से बताया है- पवित्र उषा देवी आकाश से आने वाले गानों द्वारा जगाई गयी है। उसकी महिमा आकाश के ऊपर फैल रही है। हे अग्ने! चमकती हुई उषा आ रहीं है। तुम उसके पास जाओ और उससे वह धन माँगो जो अभीष्ट है।यहाँ पर छनद के आग्रह से 'अबोध्या' को 'अबोधि आ' पढ़ना चाहिये।

व्याकरण-1.ऋतावरी -ऋतवृज (अ) टाप। 'त' के 'अ' को वैदिक दीर्घ अथवा ऋत्वनिन्ड़ीप्। "वनो र च'' से 'न' को 'र' आदेश।

2.अबोधि, अस्थत्-बुध और स्था धातु, लुङ लकार, प्रथम पुरूष, एकवचन।

3.रेवती-रयि मतुप्ड्ीप् 'रयेर्मतौ छन्दसि ''सूत्र से 'य' को सम्प्रसारण पूर्वरूप और गुण होते है।'मतुप्' के 'म्' को 'व' आदेश 'छन्दसीरः'' (पा0 8/2/15) से हुआ।

4.आयतीम्-आइण् गतौशतृङीप् 'इ' को 'य' आदेश।

5.विभातीय-विभाशतृङीप् =विभाति। द्वितीया का एकवचन

6.भिस्माणः-भिस् (शप्) (मुक्)शानच् (आन) = भिसमाण

मूलपाठ

ऋतस्य बुध्न उषसामिषण्यन्वृषा मही रोदसी आ विवेश।
मही मित्रस्य वरूणस्य माया चन्द्रेव भानु विदधे पुरूत्रा।।7।।

पदपाठ

ऋतस्य। बुहने। उषसाम्। इबण्यन।
वृषा। महीइति। रोदसी इति। आ। विवेश।
मही। मित्रस्य। वरूणस्य। माया।
न्द्राऽइव। भानुम्। विदधे। पुरूत्रा।।7।।

अन्वय-वृषा ऋतस्य बुध्ने उषसाम् इषण्यन मही रोदसी आ विवेश। मित्रस्य वरूणस्य मही माया चन्द्रा इव भानुम् पुत्रा विदधे।

सायण- वृषा वृष्टिद्वारा प्रेरक आदित्यः ऋतस्य अग्निहोत्रादिकर्मकरणसत्यभूतस्य अह्नः बुध्ने मूले उषसाभिषण्यन प्रेरणं कुर्वन् मही महत्यौ रोदसी धावपृपिण्यौ आवा विवेष सर्वतः प्रविष्टवान। यद्धा वृषा वर्षिता इषण्यन सर्वतो गच्छन्नुषसां सम्बन्धी रश्मिसमूहः रोदसी धावपृथिव्यौ विष्टवानिति योजनीयम् ततः उषाः मही महती मित्रस्य वरूणस्य मित्रवरूणयोर्माया प्रभारूपा सती चनद्रेव सुवर्णानीव भानुं स्वप्रभां पुरात्रा बहुषु देशेषु विदधे विदधति सर्वत्र प्रसारयति।

अर्थ-वर्षा करने वाला सूर्य प्राकृतिक नियमों के अथवा अग्नि होत्र आदि नित्य नियमों के ज्ञापक सत्यभूत दिन के मूल में उषा को प्रेरित करता हुआ या उसको चाहता हुआ महान द्युलोक और पृथ्वी लोक में सब ओर से प्रविष्ट हो गया। मित्र देवता और वरूण देवता की महती माया अर्थात

विचित्र शक्ति रूपा उषा देवी सुनहली कान्ति के समान स्वर्णिम सूर्य को अधिक स्थानो से प्रसारित करती है।

व्याख्या-प्रस्तुत मंत्र में'ऋतस्यबुध्ने' की व्याख्या अनेक प्रकार से की गई है। इस विषय में सायण ने अर्थ किया है कि- अग्नि होत्र आदि कर्मो को करने में सत्यभूत दिन के मूल में। 'वृषा' को अर्थ वर्षा करने वाला सूर्य किया है किन्तु ऋतस्य बुध्न उषसा-मिषण्यन् वृषा का मैक्समूलर ने अर्थ किया है- The hero in the depth of Heaven, yearning for the dawns, has entered the great sky and the earth. प्रासमान ने 'रोदसी' का अर्थ पवित्र भूमि (Holy ground) और लुडविक ने यज्ञ भूमि की पवित्र भूमि (the ground of the haiy rite) किया है राध ने ऋग्वेद के 9/10/999 मंत्र में'बुहन' का अर्थ 'मध्य और अन्त' किया है। सूर्य जो वर्षा करने वाला है तथा प्राकृमिक नियमों के, दिन के मूल में उषा को प्रेरित करता है। यह विभिन्न शक्ति रूपा उषा ही सुनहली कान्ति वाले सूर्य को बहुत स्थानों पर प्रसारित करती है। लुडविग ने 'उषसाम्' को प्राचीन और अप्रयुक्त कहकर इसमें तृतीया विभक्ति मानी है तथा विशेल ने इसे , द्वतीयान्त माना है। सायण के अनुसार 'महि मित्रस्य वरूणस्य माया' में उषा का वर्णन है, परन्तु ग्रासमान ने इसको सूर्य का विशेषण माना है ।

व्याकरण-

1.ऋतस्य-ऋक्त=ऋत। षष्ठी एकवचन।

2.बुध्ने – बुधनङ् = बुध्न। सप्तमी विभक्ति का एकवचन

3.इषण्यन-इच्छति इति एषन। इषन्तमात्मानम् इच्छति अर्थ में निर्यातित 'इषण्य' धातु से शतृ प्रत्यय।

4. वृषा वृष् कनिन् (अन्) = वृषन्।

5.विवेश- विश् धातु, लिटलकार, प्रथम पुरूष एकवचन।

6.दधे-धा धातु (आत्मनेपद), लिट्लकार, प्रथम पुरूष, एकवचन।

7.मही- महत्ङीप् ('अत' का वैदिक लोप)।

8.पुरूत्रा- 'पुर' शब्द से "देवमनुस्य पुरूष'' सूत्र से 'वा' प्रत्यय।

अभ्यास प्रश्न-2

1.सुवृक्तिम् का व्युत्तपत्तिमूलक अर्थ पीटर्सन ने माना है-

(i) साफ करना (ii) फेंकना

(iii) नमस्कार करना (iv) उपयुक्त सभी

2."विभातीय'' की व्युत्पत्ति है-

(i) विभाशतृ (ii) विभाशतृङीप्

(iii) वीभाङीप् (vi) विशतृभा

3."विभातीय' किस विभक्ति एवं वचन का रूप है-

(i) प्रथमा एकवचन (ii) पंचमी बहुवचन

(iii) तृतीया एकवचन (iv) द्वितीया विभक्ति एकवचन

4.'अश्रेत्' किस लकार एवं किस विभक्ति का रूप है-

(i) लङ् लकार प्रथम पुरूष एकवचन (ii)लोट्लकार मध्यमपुरूष एकवचन

(iii) लृट् लकार मध्यमपुरूष एकवचन (iv) उपर्युक्त में से कोई नही

5.''विवेश'' शब्द किस लकार में बनता है-

(i) लिट् लकार (ii) लोट् लकार

(iii) लृट् लकार (iv) लड़ लकार

6.रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

क.अच्छा वो देवी मुषसं विभाती.....नमसा सुवृक्तिम्

ख. ऋतावरो दिवो अर्कैरबोध्या.....चित्रमस्थात्।

ग. यहीं मित्रस्य वरूणस्य .....भानुं विदधे पुरूत्रा

घ. पवित्र उषा देवी आकाश से आने वाले .....जगाई गयी है।

ड. उषा देवी .....विनाश करती है।

3.4 नासदीय सूक्त मूलपाठ अर्थ एवं व्याख्या

सूक्त-129, मण्डल-10, ऋषि-परमेष्ठी प्रजापति, देवता-सृष्टि-स्थिति-प्रलय-कर्ता परमात्मा, छन्द-त्रिष्टुप्

संहिता पाठ

। । ।

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परोयत्

। । । ।

किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम् ।।1।।

पद पाठ

। ।

न । असत् । आसीत । नो इति । सत् ।

। । । ।

आसीत । तदानीम् । ना । आसीत् । रजः । नो इति । विऽओम । पुरः । यत् । किम् ।

। । । । । ।

आ अवरीवरिति कुह । कस्य। शर्मन्। अम्भः। किम्। आसीत् । गहनम् । गभीरम् ।।1।।

अन्वय-तदानीम् असत् न आसीत् सत् नो आसीत् राजः न आसीत् व्योम नो यत् परः। किम् आवरीवः कुछ कस्य शर्मन् गहनम् गभीरम् अम्भः किम् आसीत्।।1।।

व्याख्या- सृष्टि से पूर्व प्रलय के समय असत् अर्थात् अभावात्मक तत्व नहीं था सत् तत्व भी नहीं था। पृथ्वी से लेकर पाताल पर्यन्त रजः तत्व भी नहीं था। पृथ्वी से लेकर पाताल पर्यन्त रजः तत्व भी नहीं थे अन्तरिक्ष नहीं था और उस अन्तरिक्ष से परे भी कुछ नहीं था। पुनः आवरण करने वाला

तत्व क्या था? वह आवरण कहाँ और किसकी सुरक्षा में था? वह आवरण कहाँ और किसकी सुरक्षा में था? उस समय दुष्प्रवेश और अत्यधिक गहरा जल क्या था? अर्थात् ये सब नहीं थे।।1।।

शब्दार्थ-तदानीं- उस समय, असत्-अभावात्मक तत्व आसीत-नहीं था, सत्-सत्तात्मक, नो नहीं था, रज-पृथ्वी से लेकर पाताल पर्यन्त लोक न आसीत् नहीं था व्योम नो-अन्तरिक्ष नहीं था, रज-यत् परः-उससे भी परे, किम् आवरीव-आवरण करने वाला तत्व क्या था, कुछ कस्य कहाँ किसकी, शर्मन्-सुरक्षा में, गहनम्-दुष्प्रवेश से, गम्भीरम्-अत्यधिक गहरा, अम्भः जल, किम् आसीत्-क्या था।

संस्कृत-प्रलयकाले अभावात्मंक तत्वं नाभूत् भावात्मकं पृथिव्यन्ता लोकाः न आसीत् अंतरिक्षं नासीत्। तत्परं किमपि नासीत् आवरणीयं तत्वम् कृत्र कस्य जीवस्य शर्माणि दुष्प्रवेशं अत्यगाधम् -सलिलं किम् आसीत्

व्याकरणगतटिप्पणी- असत्-नसत् सत्-अस्तीति सत्-असशतृ यहाँ अकार का लोप हो जाता है। कुछ-किमह किम् को कु आदेश। आवरीवः- आवृणोति इति आवरणों व आवरीः। औणादिक ई प्रत्यय, आवृई-आवरी, मतुप् के अर्थ में व प्रत्यय होकर आवरीव बनता है। अथवा आ+वृ (यड्लृगन्त) लङ् प्र0पु0 एक वचन का वैदिक रूप।मैक्डानल आवरीवः का अर्थ अपने अन्दर किसे रखता था। (What did it contain)अर्थ करते हैं, जबकि सायण आवरण करने वाला तत्व यह अर्थ करते हैं। यहां त्रिष्टुप छन्द है।

संहितापाठ

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः।

आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्नपरः किं च नास ।।2।।

पद पाठ

न। मृत्युः। आसीत्। अमृतम्। न। तर्हि।न। रात्र्यः।

अह्नः। असीत्। प्रडकेतः। आनीत्। अवातम्। स्वधया।

तत्। एकम्। तस्मात्। ह। अन्यत्। न। परः।

किम्। चन्। आस्।।2।।

अन्वय- तर्हि मृत्युः न आसीत् न अमृतम् रात्र्याः अह्नः प्रकेतः न आसीत् तत् आनीत् अवातम् स्वधया एकम्। ह तस्मात् अन्यत् किन्चन् न आस न परः ।।2।।

व्याख्या- उस समय, अर्थात् प्रलय काल में मृत्यु नहीं, अभाव नहीं था, रात्रि और दिन का ज्ञान भी नहीं था। वह ब्रह्मतत्व प्राण से युक्त क्रिया से शून्य और माया के साथ अविभक्त अर्थात् बिना

अलग हुए, एक रूप से विद्यमान था। उससे भिन्न कुछ थी नहीं था और उससे परे भी कुछ नहीं था ।।2।।

शब्दार्थ -तर्हि- उस समय, मृतयु न आसीत् मृत्यु नहीं थी न अमृतम नहीं था रात्र्याः रात्रि का अह्नः -दिन का प्रकेतः ज्ञान, न आसीत् नहीं था आनीत्- प्राण से युक्त अवातम्- क्रिया से शून्य स्वधया- माया से, एकम्-एक रूप में था, ह-निश्चय ही, अस्मात्-उससे, अन्यतः भिन्न किन्चन-कुछ, न आस नहीं था, न परः-न उससे परे कुछ था।

संस्कृत- तदानीं मरणं न। भूत्, न अमरणमपि निशायाः दिवसस्य ज्ञानं नाभूत् ब्रह्मतत्वमेव प्राणिवत् क्रियाशून्यं मायाया ब्रह्म एकमेव ब्रह्म आसीत्, निश्चयेन् ब्रह्मतत्वात् भिन्नं किन्चन न बभूव, न तस्मात् परस्तात् किमपि आसीह् ।।

व्याकरणगत टिप्पणी- मृत्यु- मृव्युक् प्रत्यय प्रकेतः -प्रकित् ज्ञाने घञ् प्रत्यय। आनीत्-अन्लृड़ प्र0 पु0 एक वचन मैक्डानल आनीत् का अर्थ श्वास लेने वाला (one breathed)अवात् का अर्थ वायु से रहित (windless) स्वधया का अर्थ अपनी शक्ति से (By its awon power) अर्थ करते हैं जबकि सायण इनका अर्थ क्रमशः प्राण से युक्त, क्रिया से शून्य और माया से करते हैं।

संहिता पाठ

। । । ।

तम आसत्तिमसा गूढमग्रेडप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।

। । ।

तुच्छयेनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिनाजायतैकम् ।।3।।

पदपाठ

। । ।

तमः आसीत् तमसा। गूलहम्। अग्रे। अप्रऽकेतम्।

। ।

सलिलम् सर्वम्। आः। इदम्। तुच्छयेन। भु।

। । ।

अपिंऽहितम्। यत्। आसीत्। तपसः। तत्।

महिना। अजायत्। एकम् ।।3।।

अन्वय- अग्रे तमसा गूढ़म् तमः आसीत्। अप्रकेतम् इदम् सर्वम् सलिलम् आः। यत् आभु तुच्छयेन अपिहितम् आसीत् तत् एकम् तपसः महिना अजायत् ।।3।।

व्याख्या- सृष्टि से पूर्व प्रलयावस्या में यह जगत् अंधकार से आच्छादित अपने तमस् रूप मूलकारण में विद्यमान था। अज्ञायमान यह सम्पूर्ण जगत् सलिल रूप में था, उस समय कार्य और कारण दोनों एक रूप में थे। जो यह जगत् व्यापक एवं तुच्छ अभाव रूप अज्ञान से आच्छादित था तो वह कारण के साथ एकीभूत हुआ। जगत् ईश्वर के संकल्प रूप तप की महिमा के द्वारा उत्पन्न हुआ।

शब्दार्थ- अग्रे-सृष्टि से पूर्व, तमसा- अंकार से गूढ़म् आच्छादित, तमः-तमस रूप, अप्रकेतम्- आज्ञायमान, इदं-यह, सर्वमं सब सलिलं -जल रूप में आः था, यत् जो आभु- व्यापक, तुच्छादित, एकम् एकीभूत हुआ (एक रूप हुआ), तपसः- तप की महिना- महिमा से, अजायत- उत्पन्न हुआ।

संस्कृत-सृष्टेः प्राक्, अन्धकारेण समावृतं भाव-रूपाज्ञनम् अभूत् अप्रज्ञायमानम् एतत् सर्वम् जलम आसीत् तत् एकीकृतं संकल्प-यपतपसः महिना उत्पन्नभूत।।3।।

व्याकरणगतटिप्पणी- गूढ़म्- गुहक्त प्रत्यय अप्रकेतम्- न प्रकेतम्।प्रकेत- प्रकित्द्यय् प्रत्यय सलिलम्। सल् गतौ धातु से इलच् प्रत्यय। अविहितम्-अपि उपसर्ग पूर्वकधा धातु क्त प्रत्यय। अजायत्-जन् धातु लड् लकार प्र0 पु0 एक वचन। मैक्डानल- आः इदम् का अर्थ अस्तित्व में आने वाला (coming into being)]तपसः महिना का अर्थ गर्मी की शक्ति से (Through the power of heat)करते हैं। जबकि सायण इसका अर्थ संकल्प रूप की महिमा से' करते हैं।

संहिता पाठ

। । । ।

काम। तत्। अग्रे। सम्। अवर्तत। अधि। मनसः। रेतः। प्रथमम्। यत्। आसीत्।

। । ।

सतः। बन्धुम् असति। निः। अविन्दन्। हृदि। प्रतिडइष्य। कवयः। मनीषा। ।।4।।

अन्वय- अग्रे तत् कामः सम् अवर्तत यत् मनसः अधि प्रथमम् रेतः आसीत्। सतः बन्धुम् कवयः मनीषा हृदि आसति निरविन्दन्।।

व्याख्या-सृष्टि के समय सर्वप्रथम वह काम उत्पन्न हुआ, अर्थात् सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा, उत्पन्न हुई। जो परमेश्वर के मन में सबसे पहला सृष्टि का बीज रूप् कारण हुआ । स्तित्व रूप से स्थित जगत् के बन्धन के कारण को क्रांतदर्शी ऋषियों ने अपनी बुद्धि से हृदय में विचार कर अभाव (अर्थात् भाव से विलक्षण) में उसे प्राप्त किया।

शब्दार्थ-अग्रे सृष्टि के समय, कामः -काम सम् अवर्तत-उत्पन्न हुआ, मनसः अधिमन में प्रथमम् सबसे पहला, रेतः- सृष्टि का बीज रूप धारण, सतः अस्तित्व रूप से विद्यमान् जगत के , बन्धुम- बन्धन के कारण को कवयः -क्रान्तदर्शी ऋषियों ने, मनीषा-बुद्धि से हृदि -हृदय में, प्रतीष्य-विचार कर, असीत-अभाव में निरविन्दन् खोज कर पाया।

संस्कृत-प्राक् तत् इच्छा समजायत यत् अंतः करण सम्बन्धि अधि प्रथमं बीजभूतम् अभूत् सत्तव जगतः बंधनहेतुकं क्रान्तदर्शिनः धिया विचार्य अभावे अलभन्त।

व्याकरण टिप्पणी- कामः- कमघञ् प्रत्यय, प्रथमा, एक वचन अवर्तत-√वृत् धातु लड्लकार प्र0 पु0 एक वचन रेतः रीअसुन तृट् आगम। प्रतीष्य-प्रतिइष् क्त्वाल्यप्। निरविंदन-निर् विदलृ धातु लड्लकार प्र0 पु0 बहुवचन मैक्डानल -रेतस् का अर्थ से साम्य रखता है।

अभ्यास प्रश्न-3

निम्नलिखित बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

1. सृष्टि के समय सर्वप्रथम क्या उत्पन्न हुआ।

क. सृष्टि करने वाला ख. सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा

ग. जल घ. इनमें से कोई नहीं।

2. 'प्रतीष्य' की व्याकरणिक व्याख्या है-

क. प्रतिइष्क्त्वतयप् ख. प्रतिइष्कत्वातयप

ग. प्रतिइषक्त्वाजपय घ. प्रतिइष्क्त्वात्यप

3. नासदीय सूक्त के ऋषि हैं-

क. गृत्दसमद ख. विश्वामित्र

ग. प्रजापति घ. परमेष्ठी प्रजापति

4. 'आवरीव' का अर्थ है-

क. आवरण ख. आवरण करने वाला तत्व

ग. आवरण से युक्त घ. आवरण से विमुक्त

5. 'तपसः महिना' का अर्थ 'संकल्प रूप की महिमा' किसने किया?

क. मैक्समल्ल ख. मैक्डानल

ग. सायण घ. शंकराचार्य

ख. निम्नलिखित रिक्त स्थानों की पूर्ति करें

1. हृदि प्रतीष्या.....मनीष।
2. अपि.....क्त।
3. मैक्डानल रेतस का अर्थ.....करते हैं।
4. 'अवातम्' का अर्थ वायु से रहित.....ने किया।
5. बुद्धि से.....में विचार कर.....में उसे प्राप्त किया।

संहिता पाठ

। । । ।

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासी ३दुपरि स्विदासी ३त्।

। । ।

रेतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात्।।5।।

। । ।

पदपाठ

। ।

तिरश्चीनः। विडततः। रश्मिः। एषाम्

।

अधः। स्तित्। आसीत ३त्। उपरि। स्वित्।

।

आसीत3त्। रेतःऽधा। आसन्। महिमानः

। । ।

आसन्। स्वधा। अवस्तात्। प्रऽयतिः। परस्तात्।

अन्वय- एषाम् रश्मिः विततः तिरश्चीनः अधः स्त् आसीत् उपरि स्वित् आसीत? रेतोधाः आसन् महिमानः आसन् स्वन्धा अवस्तात् प्रयतिः परस्तात् ॥5॥

व्याख्या-अविधा, संकल्प तथा सृष्टि का बीज रूप ये तीनों कारण सूर्य की किरणों के तुल्य अत्यधिक व्यापकता युक्त अतिविस्तृत थे। क्या यह सब पहले तिरछा था? क्या नीचे विद्यमान था? अथवा क्या ऊपर विद्यमान था अर्थात् वह सब स्थानों पर समान भाव से उत्पन्न हुआ था। इस उत्पन्न जगत् में कुछ पदार्थ बीज रूप कर्म कों धारण करने वाले जीवरूप में प्रकृति रूप में थें। इस नियमित करने वाले भोग्य सृष्टि में भोग्य पदार्थ समझे जाते है, और नियमित करने वाले भोक्ता पदार्थ

उत्कृष्ट माने जाते हैं।**।5।।**

शब्दार्थ- एषाम् इन तीनों कारणों का रश्मिः सूर्य की किरणों के समान व्यापकता रूप कार्य वर्ग, विततः-विस्तृत- तिरश्चीनः तिरछा थाअधः स्वित्-क्या वह नीचे, उपरि स्वित्-क्या वह उपर, रेतोधाःबीजरूप कर्म को धारण करने वाले, आसन थें, महिमानः-आकाशादि महान् रूप में प्रकृति रूप, स्वधा भोग्य पदार्थ, अद्यसतात्-निकृष्ट, प्रयतिः-भोक्ता, परस्तान-उत्कृष्ट।

संस्कृत-अविधा कामकर्मणं व्यापकता रूप् कार्य वगः विस्तृतः तिरश्चां किं वा अधस्तात् किमु आसीत् उपरिष्टात् किं वा आसीत् बीजरूपकर्मविधातारः आसन् आकाशादयो महान्तः आसन् भोग्यपदार्थाः निकृष्टः भोक्ता च उत्कृष्टः आसीत् !!5!!

व्याकरणगत टिप्पणी-तिरश्चीनः-तिरस्अन्चख (ईन) विततः-वितन्क्त प्रयति-प्रयम्क्तिन्। रेतोधाः-रेतस्क्विय्। महिमानः-महत्इमनिच् प्र0ब0व0 स्वधा-स्व-धाअटाप्। मैक्डानल तिरश्चीनः का अर्थ 'आर पार ¼across½ करते हैं जबकि सायण 'तिरछा' अर्थ करते हैं। इसी प्रकार मैक्डानल विततः का अर्थ 'फैला हुआ था' (was extended)करते हैं सायण भी विस्तृत अर्थ करते हैं। मैक्डानल इस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार करते है There cord was there above? There was impregnators there was powers there was energy below, There was impulse above.

संहिता पाठ

। । । । ।

को अद्धा वेद क इह प्रवोचत्कुत आजाता कुतं इयं विसृष्टिः।

। ।। ।

अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव ।।6।।

पदपाठ

कः। अद्धा। वेद। कः। इह। प्र। वोचत्।

। । । ।

कुतः। आऽजाता। कुतः। इयम्। विऽसृष्टिः।

। ।

अर्वाक्। देवाः। अस्य। विऽसर्जनेन।

। । ।

अथ। कः। वेद। यतः। आऽबभूव ।।6।।

अन्वय-कः अद्धा वेद, कः इह प्र वोचत् इयम् विसृष्टिः कुतः कुतः आ जाता। देवाः अस्य विसर्जनेन अर्वाक्। अथ कः वेद यतः आ बभूव।।6।।

व्याख्या- कौन इस विषय को वास्तविक रूप से जानता है, और कौन लोक में यह बतला सकता है, कि यह विविध प्रकार की सृष्टि किस उपादान कारण से और किस निमित्त कारण से सब ओर उत्पन्न हुई है। देवता भी इस विविध प्रकार की सृष्टि के उत्पन्न होने के बाद के हैं, अतः वे भी नहीं बतला सकते। इस लिए कौन जानता है, जिस कारण से यह समस्त संसार उत्पन्न हुआ है।

शब्दार्थ- कः कौन, अद्धा, वास्तविक रूप से वेद-जानता है, कः कौन इह-इसलोक में प्रवोचत्-बतला सकता है, विसृष्टि-विविध प्रकार की सृष्टि कुतः-किस उपादान कारण से कुतः किस निमित्त कारण से आ जाता- उत्पन्न हुई देवाः देवता भी, विसर्जनेन-सृष्टि के उत्पन्न होने से, आबभूव-उत्पन्न हुआ है।

संस्कृत -पुरूषः वास्तविक रूपेण जामति कः अस्मिन् लोके प्रवक्तुं शक्नुयात् दृश्यमाना विविधा सृष्टि कस्मादुपादान, कस्मान्नि कारणाच्च समन्तात् प्रादुर्भूता। देवताः सृष्टेः विविधपृष्ट्या अर्वाचीनाः कृताः एवं सति कः जानाति यस्मात् समाजायत ।।6।।

व्याकरणगत टिप्पणी-वेद √विद्लट् प्र0 पु0 एकवचन, विसृष्टिः विसृज् क्तिन्। जाता-जन्क्तटाप। दिवाः दिवअच् प्रथमा बहुवचन विसर्जनेन विसृजल्युट् तृतीया एकवचन।प्रस्तुत मंत्र में यह बतलाया गया है कि देवताओं की उत्पत्ति भी बाद की है, अतः इस सृष्टि के विषय में कोई भी मनुष्य बतलाने में असमर्थ है।

संहिता पाठ

। । ।

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन् सो आङ्ग वेद यदि वा न वेदे।।7।।

पदपाठ

। । ।

इयम्। विडसृष्टि । यतः आऽबभूव।

। ।

यदि । वा। दधे। यदि । वा । न।

। ।

यः। अस्य। अधिऽयक्षः। परमे। विऽओमन्।

।

सः। अङ्ग। वेद। यदि। वा। न। ।वेद ।।7।।

अन्वय- इयम् विसृष्टिः यतः आबभूव यदि वा दधे यदि वा न। अस्य यः अध्यक्षः परमे व्योमन् अङ्ग

सः वेद यदि वा न वेद।

व्याख्या- यह विविध प्रकार की सृष्टि जिस उपादान और निमित्त कारणों से उत्पन्न हुई है। वह कारण ही इस सृष्टि को धारण किए हुए है, अर्थात् ईश्वर ही सृष्टि को धारण किस हुए है उसके अतिरिक्त अन्य कोई धारण नहीं हुए है। इस सृष्टि का स्वामी उत्कृष्ट सत्य रूप आकाश के समान अपने प्रकाश या आनन्द स्वरूप् में प्रतिष्ठित है, हे प्रिय श्रोताओं। वह परमात्मा ही उसको जानता है,

उसके अतिरिक्त इसे कोई नहीं जानता है।।7।।

शब्दार्थ- इयम्-यह विसृष्टि-विविधि प्रकार की सृष्टि, यतः जिससे आबभूव उत्पन्न हुई यदि वा-अथवा दधे-धारण किए हुए है, यदि वा न-अथवा नहीं अध्यक्षः स्वामी परमे व्योमन्-उत्कृष्ट सत्यरूप आकाश के समान अपने प्रकाश में या स्वरूप में, अङ्ग-प्रिय श्रोताओं, सः वह, वेद-जानता है, वा न वेद-अथवा नहीं जानता है।

संस्कृत-एषाः विविधा सृष्टिः यस्मात् संजाता यदि वा चारयति यदि वा न । जगतः प्रसिद्ध ईश्वरः उत्कृष्टे सत्यरूपे आकाशवत् स्वप्रकाशे। प्रियश्रोतारः सः जानाति अथवा न जानाति। सर्वज्ञः सर्वासाक्षी परमेश्वरः एव तां जानाति।

व्याकरणगत टिप्पणी- विसृष्टिः विसृजक्तिन् आबभूव-आ उपसर्ग पूर्वक √भू-धातु लिट्लकार प्र0पु0 एक वचन। दधे √धा धातु लिट्लकार प्र0पु0 एकवचन।मैक्डानल 'दधे' का अर्थ निर्मित किया था (Founded)करते हैं जबकि सायण इसका अर्थ 'धारयति' करते है। 'परमेव्योमन का अर्थ मैक्डानल' उच्चतम अन्तरिक्ष में करते है, (in the highest heaven)जबकि सायण 'उत्कृष्ट-सत्यरूप आकाश के सदृश अपने प्रकाश में या स्वरूप में यह अर्थ करते है। मैक्डानल 'अध्यक्षः का अर्थ ' खोजने वाला ;(Surveyor) करते है जबकि सायण इसका अर्थ 'अध्यक्ष' करते है।

अभ्यास प्रश्न -4

क. निम्नलिखित बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

1. विसृजक्तिन् यह किस की व्याकरणिक व्याख्या है?

क. विसृजन ख. विश्रुत

ग. विसृष्टि घ. विश्रवण

2. प्रस्तुत नासदीय सूक्त गृहीत है-

क. ऋग्वेद 10 मण्डल ख. ऋग्वेद 02 मण्डल

ग. ऋग्वेद 03 मण्डल घ. ऋग्वेद 04 मण्डल

3. महिमानः की व्याकरणिक व्याख्या होगी-

क. महत्तिकन् ख. महत् इमनीच्

ग. महत्इमनिच घ. महत्इमनिच्

4. विततः का अर्थ ' फैला हुआ था' किसने किया है?

क. सायण ख. मैक्डानल

ग. मैक्समूलर घ. कीथ

5. इस सूक्त का देवता है-

क. नासद ख. सृष्टि-स्थिति-प्रलय-कर्ता

ग. नारद घ. विष्णु

ख. निम्नलिखित रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. वह कारण ही इस.....को किए हुए है।
2. एषाम् रश्मिः .....तिरश्चनि.....स्वित् आसीत।
3. मैक्डानल तिरश्चीन का अर्थ.....करते हैं।
4. सायण देधे का अर्थ .....करते हैं।
5. देवता भी इस सृष्टि के .....के हैं।

3.5. सारांश

वैदिक अध्ययन से सम्बन्धित यह तृतीय इकाई है। प्रस्तुत इकाई में उषस् की स्तुति ऋषि विश्वामित्र द्वारा की गयी है जिसमें उषा को अन्नधन से सम्पन्न सम्पूर्ण विश्व के द्वारा वरणीय एवं मरणधर्म से रहित सूर्य के ध्वज का बोध कराने वाली आकाश में स्थित बताया गया है। उषा सूर्य की पत्नी है। वह अपने तेज से स्वर्ग को सजीव बनाती है। द्युलोक से पृथ्वी तक इसका अन्तिम विस्तार है। रात्रि एवं उषा दो बहने है जो सम्पूर्ण कालावधि में कभी रूकने वाली नहीं होती। ये दोनों अबाध गति से चलती रहती है। अग्नि भी अपनी ओर आती हुयी उषा देवी से हवि की याचना करता है जो सबको व्याप्त कर स्थित रहती हैं। सूर्य भी जो प्राकृतिक नियमों के पालन के मूल में उषा को प्रेरित करता है। उषा मित्र और वरूण की विचित्र शक्ति रूपा देवी है। नासदीय सूक्त में आप ने जाना की प्रलय की स्थिति में असत् और सत् तत्व नहीं थे। रज और अन्तरिक्ष से परे भी कुछ नहीं था। अतः समग्र जलमय था। प्रलय काल में मृत्यु भी नहीं थी दिन और रात का ज्ञान नहीं था एक रूपता से ब्रह्म तत्व ही विद्यमान था। सृष्टि के पूर्व यह जगत् अंधकार से आच्छादित होकर मूल कारण तमस् में विद्यमान था। जगत् की उत्पत्ति ईश्वर के संकल्प मात्र से हुयी। सर्वप्रथम सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा से उत्पन्न हुआ जो परमेश्वर के मन में सबसे पहला कारण था। विविध प्रकार की सृष्टि का उपादान और निमित्त कारण क्या है, इसे कोई नहीं बता सकता। नासदीय सूवत्त की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके अनुसार देवताओं की उत्पत्ति

भी बाद में हुयी। अतः इस इकाई के अध्ययन से आप उषस् की समस्त विशेषताओं का ज्ञान पाकर उसके स्वरूप एवं नासदीय सूक्त की दार्शनकिता से पूर्ण परिचित हो सकेंगे।

3.6. पारिभाषिक शब्दावली

1. वाजेन वाजिनि -मैक्समूलर ने इसका अर्थ 'wealthy wealth are boaty' माना है।
2. पुरंधि-बहुत अधिक शक्तिशाली
3. विभाहि-विशेष रूप से शोभायमान
4. सुयमासः-सुखपूर्वक रथ में जोते जा सकने वाले अथवा अच्छी प्रकार से नियंत्रित।
5. प्रतीची-सम्मुख जाती हुई।
6. चरपीयमाना-विचरण करती हुई।
7. अववृत्स्व-पुनः-पुनः घूमती रहो।
8. नण्यसि- सदा नवीन रहने वाली।
9. अवचिन्वती-आच्छादित करने वाले अन्धकार का विनाश करती हुई।
10. सुभगा-सुन्दर धनों वाली
11. अन्तात-द्युलोक लोक के अन्तिम किनारे से
12. अपप्रथे-फैल जाता है।
13. स्युमैव-वस्त्र के समान।
14. स्वसरस्य-सूर्य की अथवा दिन की।
15. विभातीम्-प्रकाशित करती हुई
16. प्रभरध्वम्-करो
17. प्रसूपे-अतिशय रूप प्रकाशित करती है।
18. रेवती- छन्दासि'' सूत्र से 'य' को सम्प्रसारण, पूर्वरूप और गुण होते है। यहाँ पर 'मतुप्' के 'म्' 'व' आदेश 'छन्दसीरा' सूत्र से हुआ। रेवती का अर्थ धन से मुक्त होता है।
19. इषण्यन्-प्रेरित करता हुआ, चाहता हुआ।
20. आविवेश- सभी ओर से प्रविष्ट हो गया है।
21. तिरश्चीनः-तिरस्अन्चख (ईन) विततः-वितन्क्त प्रयति-प्रयम्क्तिन्। रेतोधाः-रेतस्क्विय्।
22. विसृष्टि-विविध प्रकार की सृष्टि
23. कुतः-किस उपादान कारण से कुतः किस निमित्त कारण से आ
24. जाता- उत्पन्न हुई देवता
25. विसर्जनेन-सृष्टि के उत्पन्न होने से
26. आबभूव-उत्पन्न हुआ है।

3.7. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न-1

1.(iii) विश्वामित्र 2. (i) त्रिष्टुप्

3. (iii) तृतीय 4. (iv) षष्ठी एक वचन

5. (iv) सम्बोधन एक वचन

6. (क) स्तोमं जषस्व (ख) अश्वा हिरण्यवगों

(ग) चक्रमिव (घ) पृथुपाजसः

(ड़) पुराणी भवतिः (च)रात्रि

(छ) वस्त्र (ज) HYMEN

अभ्यास प्रश्न-2

1.(i) साफ करना 2. (ii) वि भा शतृ ड़ीप्

3.(iv) द्वितीया विभक्ति एकवचन

4. (i) लड़्लकार मध्यम् पुरूष एकवचन

5.(i) लिट्लकार

6.(क) प्र वो भरध्वं (ख) रेवती रोदसी

(ग) माया चन्द्रेव (घ) गानों द्वारा

(ङ) उषा देवी अन्धकार का विनाश करती है

अभ्यास प्रश्न-3

क.1-ख, 2-क, 3-घ, 4-ख, 5-ग

ख.1-कवयो, 2-धा, 3-बीज 4. मैक्डानल, 5. हृदय, अभाव

अभ्यास प्रश्न-4

क.1-ग, 2-क, 3-घ, 4-ख, 5-ख

ख.1-सृष्टि, 2-विततः, अधः, 3-आरपार, 4- धारयति, 5-बाद

3.8.सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.डॉ0 हरिदत्त शास्त्री, डॉ0 कृष्ण कुमार-ऋक्सूक्त संग्रह साहित्य भण्डार, शिक्षा साहित्य प्रकाशन सुभाष बाजार, मेरठ

2.वेदचयनम्- डॉ0 विश्वम्भर नाथ त्रिपाठी प्रयाग पब्लिकेशन, इलाहाबाद

3.9. सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. वैदिक सूक्त संकलन-डॉ0 उमेश चन्द्र पाण्डेय प्राच्य भारती प्रकशन गोरखपुर

2. वेदचयनम्-डॉ0 विश्वम्भर नाथ त्रिपाठी प्रयाग पब्लिकेश्न, इलाहाबाद

3.10.निबन्धात्मक प्रश्न

1. उषस् के स्वरूप का वर्णन कीजिए ?
2. उषो वाजेन वाजिनिप्रचेतः स्तोमं जुषस्व गृणतो मघोनि। उक्त मंत्र की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए ?

3. पुराणी देवि युवतिः पुरंधिरनु व्रतं चरसि विश्ववारे। उक्त मंत्र की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए
4. उषः प्रतीची भुवनानि विश्वोर्ध्वा तिष्ठस्यमृतस्य केतुः। मंत्र की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए ?
5. समानमर्थं चरणीयमाना चक्रमिव नव्यस्या ववृत्स्य। मंत्र की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए ?
6. उषस् सूक्त का सारांश अपने शब्दों में लिखिए ?
7. उषा की विशेषताओं का उदाहरण सहित वर्णन कीजिए ?
8. नासदीय सूक्त का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।
9. नासदीय सूक्त का महत्त्व लिखिए।
10. नासदीय सूक्त पर एक निबन्ध लिखिए।

इकाई 4: निरुक्त परिचय एवं महत्त्व

इकाई की रूपरेखा
4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 निरुक्त का महत्त्व
    4.3.1 वेदांगों में निरुक्त
    4.3.3 निरुक्त तथा निघण्टु
    4.3.4 मन्त्रों की सार्थकता का उपपादन
    4.3.5 कौत्स की अन्य युक्ति का खण्डन
    4.3.6 ज्ञानरूपी प्रशंसा के विषय में अन्यवचन
4.4 सारांश
4.5 शब्दावली
4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.8 उपयोगी पुस्तकें
4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रिय शिक्षार्थियों !

वैदिक अध्ययन से सम्बन्धित यह चतुर्थ इकाई है। इसके पूर्व की इकाइयों में आपने उषस् सूक्त एवं नासदीय सूक्त का विस्तृत अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई में निरुक्त का महत्त्व आपके अध्ययनार्थ प्रस्तुत है। यास्काचार्य द्वारा रचित निरुक्त में वेद के मन्त्रों के अर्थ का महत्त्व विशेष रूप से बताया गया है। वेद के मन्त्रों के उच्चारण मात्र में फल होता है या उच्चारण के साथ अर्थ का भी महत्त्व होता है। प्रस्तुत इकाई में इन सबके बारे में भली भाँति बताया गया है, किन्तु वेद मन्त्रों के उच्चारण के साथ-साथ अर्थों को भी जानना आवश्यक है। उक्त इकाई के माध्यम से उनके उदाहरण सहित प्रयोजनों को बताया गया है। इस इकाई के अध्ययन से आप कुछ वैदिक शब्दों के साथ वेदार्थ के महत्त्व के बारे में भी भली भाँति परिचित होंगे।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप—

- निरुक्त किसे कहते है इनका परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- निरुक्त का महत्त्व क्या है ? इनके बारे मे आप परिचित होंगे।
- निरुक्त तथा निघण्टु में क्या अन्तर है इसके बारें में आप समझ सकेंगे ।
- कौत्स के मत में मन्त्रार्थ की आवश्यकता है कि नहीं इसके बारे में समझ सकेंगे ।
- यास्काचार्य के मत में मन्त्रार्थ की आवश्यकता है कि नही इसके बारे मे समझ सकेंगे।
- वेदार्थ को न जानने से हानि क्या है ? इसके बारे में आप परिचित होंगे

4.3 निरुक्त का महत्त्व

किसी शब्द के अर्थ ज्ञान में दूसरे व्याकरणादि की अपेक्षा के बिना स्वयं जिससे अर्थ प्रगट होता हो, उसे निरुक्त कहते हैं। जैसा की निरुक्त ग्रन्थ में गौः, ग्मा, क्ष्मा, क्षा, क्षमा, इत्यादि पदों से लेकर वसवः देवपत्न्यः, इन पदों तक का समाम्नाय (निघण्टु) जो कहा गया है, उसके अर्थ ज्ञान के लिए दूसरे व्याकरणादि की अपेक्षा नही है, क्योंकि पृथिवी के इतने नाम और सुवर्ण के इतने नाम इस प्रकार स्पष्ट रूप में कहा गया है।

4.3.1 वेदांगों में निरुक्त

अभी तक अनेक ग्रन्थ पूर्णतया उपलब्ध नहीं हैं। तथापि इस विपुलकाय साहित्य को देखकर हम लोगों को उस समय के ज्ञान एवं परिश्रम पर आश्चर्य करना पड़ता है इन सबों को ठीक से समझने एवं तदनुसार कार्य-कलाप का सन्चालन कराने के लिए वेदांग ग्रन्थों की आवश्यकता होती है, जो शरीर के अंगों के समान ही वेद के अनिवार्य भाग है, वेद के अंग है। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द, ज्योतिष, और निरुक्त इन सबों का विभाजन पाणिनि शिक्षा मे इस प्रकार कहा गया हैं।

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठयते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरूक्तं श्रोत्रमुच्यते।।
शिक्षा घ्राणं त वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात्सागंमधीत्यैव ब्रह्म लोके महीयते।।

इस प्राकर वेद के छः अंग बताये गये हैं। इन छः अंगों में भी निरुक्त अपनी कई विशेषतायें रखता है। इनमें मुख्यतया वैदिक शब्दों के अर्थ जानने के प्रक्रिया बतायी जाती है। जैसा कि सायणाचार्य ने इसका लक्षण अपने ऋग्वेद भाष्य भूमिका में किया है। अर्थ जानने के लिए स्वतन्त्र रूप से जहाँ पदों समूह कहा गया है वही निरुक्त है। निरुक्त प्रत्येक वैदिक शाखा के अलग-अलग हैं।
वेद के अर्थ ज्ञान के लिये यास्क द्वारा रचित निरुक्त का महत्त्वपूर्ण स्थान हैं। निरुक्त के सिवा कोई ऐसा शास्त्र नहीं है,जो तात्पर्यानुसार सभी वेद के शब्दों का ज्ञान करा सके। जैसे शास्त्रों में शब्द ज्ञान व्याकरण शास्त्र से होता है, उसी प्रकार वेद के शब्दों के अर्थ का निर्वचन निरुक्त से ही होता है। अर्थ परिज्ञान में कारणीभूत होने के कारण निरुक्त वेद का सर्वप्रधान अंग है।

4.3.2 निरुक्त की उपयोगिता

निरुक्त के प्रथम अध्याय में केवल उसकी उपयोगिता के बारे में बताया गया है। श्री यास्काचार्य के अनुसार निरुक्त की उपयोगिता कई विषयों के लिए है-

(1) निरुक्त के प्रथम अध्याय प्रथम पाद में'समाम्नायः समाम्नातः, स व्याख्यातव्यः लिखा है इस का अर्थ यह है कि निघण्टुर के शब्दों की व्याख्या करना निरुक्त का काम है, अर्थात निरुक्त भाष्य है। दुर्गाचार्य भी निरुक्त को भाष्य कहते हैं । विन्ट्रनित्ज! यास्काचार्य को प्रथम भाष्यकार मानते हैं तथा पतन्जलि को वे अपली अलंकृत शैली में भाष्यकारों का राजकुमार कहते हैं । इस प्रकार शब्दों का अर्थ बोध कराना निरुक्त का प्रथम कार्य है । इस लिए निरुक्त को निघण्टुक का व्याख्या ग्रन्थ माना गया है । मूल ग्रन्थ निघण्टु कहलाता है। वह मुख्यतः ऋग्वेद के शब्दों का संग्रह रूप वैदिक शब्दकोश है।

(2) 'इदमन्तरेण मन्तुषु अर्थप्रत्ययो न विद्यते' निरुक्त शब्दों के अर्थ का निर्णय करता है और यास्काचार्य उनका प्रयोग दिखलाने के लिये वैदिक मन्त्रों का उदाहरण देकर उनकी व्याख्या करते हैं (3) प्राचीन काल के चौदह विद्यास्थानों मेंनिरुक्त द की गणना है यह व्याकरण शास्त्र का पूरक भी है क्योंकि व्याकरण शब्दों की रचना (बहिरंगं) की व्याख्या करता है तो निरुक्त उनके अर्थ अन्तरंग की खोज करता है इसके लिये वह शब्दों की प्रकृति का पता लगाकर उसके अर्थ से संगति दिखाते हुए पुरे शब्द के अर्थ का अनुसन्धान करता है। किन्तु व्याकरण शास्त्र में सर्वस्व अर्पण नही कर देता, क्योंकि व्याकरण की बनावट शब्द सस्कार या वृत्तिया अपवाद (वियष) से भरी होती है फिर भी व्याकरण शास्त्र और निरुक्त में अविच्छिन्न सम्बन्ध है

(4) यज्ञ में भी निरुक्त से काफी सहायता मिलती है। क्योंकि इसके द्वारा ही किस मन्त्र में कौन देवता है - इसका निर्णय किया जा सकता है और तभी किसी देवता को हविष देने के लिए किसी विशेष मन्त्र का उच्चारण सम्भव है। कभी-कभी किसी विशेष मन्त्र में कई देवता रहते है जिसका

पता निरुक्त ही लगाता है कि किसे प्रधानता दी गई । इस गुण के कारण निरुक्त कर्मकाण्ड और पूर्वमींमासा का भी पूरक कहा जा सकता है

(5) ' इदमन्तरेण विभागो न विद्यते (ज्ञायते)' - निरुक्त के द्वारा ही किसी पद को उसके विभिन्न खण्ड़ो मे बाटा जा सकता है क्योंकि अर्थ न जानने वाला यह नही समझ सकता है कि किसी पद में एक ही शब्द है या दो शब्द, जैसे अवसाय पद्वते = पैर वाले भोजन के लिए, अवस् = भोजन - इसमे

पुराण न्यायमीमांसा धर्मशास्त्राअगंमिश्रिता:

वेदा, स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश। (या 0 स्मृति)

अर्थात् पुराण, न्याय, मीमांसा धर्मशास्त्र, ६ वेदांग, ४. वेद = १४ विद्यास्थान है।अर्थात रक्षा करना, जाना, इच्छा करना और अस् प्रत्यय है दोनो मिलकर ही पद बना है इसलिये अवस एकपद है जिसका चतुर्थी एकवचन में रुप अवसाय होता है जिसका अर्थ होता है भोजन के लिए। किन्तु अवसाय का भिन्न अर्थ होता है अश्वान्त्र घोड़ो को खोलकर यहाँ अव उपसर्ग है, तथा स्यो (खोलना) धातु से ल्ययप् प्रत्यय होकर बना है, इसलिए दो पद होने को कारण इसमे पद विभाग करना पड़ता है तथा पद पाठकार 'अवऽसाय' ऐसा इसका पद पाठ करते हैं। एक ही तरह के पद में, कभी एक शब्द, कभी दो शब्द हो जाते हैं, इसे निरुक्त को नही समझने वाले नहीं समझ सकते हैं।

(६) अर्थ ज्ञान का महत्त्व भी निरुक्त के द्वारा जाना जा सकता है क्योंकि जिसके पास ज्ञान है उसकी प्रशंसा तथा जिसके पास ज्ञान नहीं है उनकी निन्दा होती है वेदों का अर्थ बिना जाने हुए उन्हें रट जाना निष्फल है। कहा भी है- **यदधीमविज्ञातं निगदेनैव शब्दते।अनग्नाविव शुष्कैधो न तन्नवति कर्हिचित।** अर्थात् गुरू से पढ़ा गया जिस वेद वाक्य को अर्थज्ञान से रहित होकर पाठ के रूप में बार बार उच्चारण करते हैं , कभी प्रकाशन नहीं काता, जिस प्रकार अग्नि रहित प्रदेश में सूखा घास या काठ प्रज्वणलित नहीं होता । अर्थात वेदार्थ सहित पाठ करना चाहिए वेदार्थ रहित पाठ करने से कोई फल नही होता है। इसलिए निरुक्त का अध्ययन करना अवश्यक है।

(७) अन्त में हम आधुनिक भाषा विज्ञान की दृष्टि से निरुक्त की उपयोगिता पर विचार कर सकते है भाषा विज्ञान की एक शाखा है - अर्थ विज्ञान जिसकी ओर लोग का ध्यान विगत-शली के अन्त में ही आकृष्ट हुआ जबकि ब्रील ने सन् १८९८ ई में अपना ग्रन्थ एसे दसिमन्तिक फ्रेन्च में लिखा । यास्काचार्य ने इस विज्ञान की नींव विक्रम के कई सौ पूर्व दे चुके थे। अर्थ में किस प्रकार का परिवर्तन होता है इसका निर्देश वे स्पष्ट रूप से करते है लक्ष्मण सरूप निरुक्त की 'व्युत्पत्तिविज्ञान, भाषा-विज्ञान का सबसे प्राचीन भारतीय ग्रन्थ मे कहते हैं। फिर भी व्युत्पत्तिविज्ञान में तो निरुक्त की तुलना ही नहीं है।

मन्त्रों के अर्थ के विषय में यास्काचार्य द्वारा उठायें गये एक और विवाद पर विचार कर लेना उपयुक्त न होगा। मन्त्रों के अर्थ के विषय में बहुत प्राचीन काल से ही शअंकाये उठायी गयी थी।

लोकायतमत के लोग तो मन्त्रों को इसलिए अर्थहीन कहते थे कि इनमें उलजलूल बाते भरी पड़ी है वेदो की कोई सत्ता नही है, इन्हे मानना व्यर्थ है दूसरी और कर्मकाण्डियों का कहना था कि वेदों का कोई वाच्यार्थ नहीं किन्तु उनका पाठ अनिवार्य है, पाठ करने में अर्थ का ज्ञान नहीं रहता। हम निष्ठा से पाठ करते है, क्योंकि यही हमारा धर्म है इनके पक्ष की विशेषता सायणाचार्य ने अपनी ऋग्वेदभाष्यभूमिका के स्वाध्याय प्रकरण में की है, जिसमे 'पुरूषार्थानुशासन (एकअप्रतिमग्रन्थ) से सूत्रों का उद्धरण देकर उन्होंने निष्कर्ष निकाला है। आज के कर्मकाण्डी भी पाठ-मात्रमें ही वेद की सत्ता समझते हैं किन्तु ऐसा नहीं कहा जा सकता कि वेदों के अर्थ में उनका विश्वास नहीं है।

4.3.3 निरुक्त तथा निघण्टु

निरुक्त , निघण्टु का व्याख्या ग्रन्थ है मूल ग्रन्थ निघण्टु ही है, इसमें पाँच अध्याय हैं। पहले तीन अध्यायों में एक एक अर्थ के वाचक अनेक शब्दों का संग्रह किया गया है। 'इत्येक विंशतिः पृथिवीनामधेयानि' अर्थात् गौः इत्यादिरापृथिवी वाचक शब्दों का संग्रह एक सथान पर कर दिया गया है। इसी प्रकार 'इति पच्चविशतिर्मनुष्यानामधेयानि' के द्वारा मनुष्य अर्थ के वाचक पचीस शब्दों का संग्रह कर दिया गया है निघण्टुत के भी पहिने के तीन अध्यायों का संग्रह कर दिया गया है इसीलिए निघण्टु का पहिले के तीन अध्याय वाला भाग एक भाग माना गया है और उसे नैधन्त का यह भाग नैगम काण्ड नाम से कहा जाता है। 'निरुक्त' के चतुर्थ अध्याय के प्रारम्भ में **'एकार्थमनेकार्थमित्युक्तम' अथमान्यनेकार्यानि-एकशब्दानि तान्यतोऽनुक्रमिण्यामोऽनव-गतसंस्कारांश्चनिगमान। तदैकपदिकमित्याचक्षते'** इस प्रकार लिखकर भास्कराचार्य निघण्टु काण्ड तथा नैगम काण्ड का यही शैली-भेद प्रदर्शित करते हैं। इसका अर्थ यह है कि 'नैघन्टुकाण्ड''एकार्थमनेक शब्दम्' अर्थात एकार्थवाचक अनेक शब्दों का संग्रह रूप है और दूसरा 'नैगमकाण्डम' अनेकार्थानि एक शब्दानि अर्थात् अनेकार्थ एक एक पदों का संग्रह रूप है।

'निघन्टु' का तीसरा अध्याय उसका पंचम अध्याय है। इस अध्याय में ऋग्वेंद के देवताओं का संग्रह किया गया है। इसलिए यह भाग दैवतकाण्ड कहा गया। निरुक्त के तीन अध्याय 'नैघन्टुक काण्ड ४-६ तक, अगले तीन अध्याय 'नैगमकाण्ड' और अन्तिम ६ अध्याय 'दैवतकाण्ड' के नाम से कहे जाते हैं। इस प्रकार निरुक्त को तीन काण्डों के रूप में तीन मुख्य विभागों में विभक्त किया गया है।निरुक्त के प्रारम्भिक तीन अध्याय यद्यपि 'नैघन्टुकाण्ड' नाम से कहे जाते हैं, किन्तु उसमेंनिघन्टु पठित पदों की व्याख्या द्वितीय अध्याय के चतुर्थपाद से प्रारम्भिक हुई है वही पर भास्कराचार्य ने 'अथातोऽनुक्रमिण्यामः' लिखकर अनुक्रम से निघन्टु के पदों की व्याख्या की प्रतिज्ञा की है इसके पूर्व प्रथम अध्याय के चार पाद तथा द्वितीय अध्याय के तीन पादों मेंयास्का चार्य ने निरुक्त के सम्बद्ध विषयों का विवेचन किया है। श्री यास्काचार्य का यह 'निरुक्त ' ग्रन्थ वस्तुतः मौलिक नहीं अपितु एक व्याख्या ग्रन्थ है पर उसका सम्मान एवं महत्व मूल ग्रन्थ से भी अधिक है निरुक्त का आधारभूत मूल ग्रन्थ निघन्टु है वह एक प्रकार का वैदिक शब्दकोश है उनमें वेदों के और विशेष रूप से ऋग्वेंद के महत्वपूर्ण एवं क्लिष्ट शब्दों का उच्चारण किया गया है इन शब्दों के अर्थो का परिज्ञान हो जाने पर वेदार्थ का समझना अत्यन्त

सरल हो जाता है। इन शब्दों का संग्रह इस प्रकार से किया गया है कि उनके अर्थ का ज्ञान सरलता से हो सके। जैसे कि वेदों मे पृथिवी अर्थ के बोधन के लिए जितने शब्द होते है उन सबका संग्रह एक साथ कर दिया गया है और उनकी गणना भी (इति एकविशतिः पृथिवीनामधेयानि) इस प्रकार निर्देश उनके अन्त में कर दिया गया है। इसीलिये इन सब शब्दों का अर्थ स्पष्ट हो जाता है। इसलिये ग्रन्थ के आरम्भ में'स व्याख्यातव्यः लिखकर भास्काचार्य ने अपने ग्रन्थ के विषय तथा प्रयोजन रूप दोअनुबन्धी का निर्देश किया है वैदिक शब्द कोश की व्याख्या करना इस ग्रन्थ का मूल प्रयोजन है। इस ग्रन्थ के द्वारा वेदार्थ का परिज्ञान और वेदाध्ययन को सुकर बनाना प्रयोजन है। वेदार्थ के जिज्ञासु उस ग्रन्थ के अध्ययन अध्यापन के अधिकारी हैं। विषय के साथ ग्रन्थ का प्रतिपाद्य प्रतिपादकभाव तथा अधिकारी के साथ उसका बोध्य - बोधक भाव सम्बन्ध है। इस प्रकार इस प्रथम पंक्ति के द्वारा ग्रन्थ के अध्ययन में प्रवृति के चार कारणों का निरूपण भी हो जाता है।

निघण्टु की रचना शैली से यद्यपि उन वैदिक शब्दों के अर्थ का सामान्य रूप से ज्ञान हो जाता हैं, परन्तु उनका विश्लेषण करके उनके अवयवार्थ की विवेचना उसमें नही की गयी है, इसलिए इन शब्दों का विशेष रहस्य उसमें नही खुलता है। इसी कमी की पूर्ति रने के लिए यास्काचार्य ने इस व्याख्या ग्रन्थ निरुक्त की रचना की है। यह प्रक्रिया केवल इस वैदिक - कोश के विषय में ही नही अपितु 'अमर कोश' लौकिक शब्द कोशो के सम्बन्ध में भी पायी जाती है। 'अमर कोश' के उपर भट्टोजिदीक्षित के पुत्र भानुजी दीक्षित ने इसी प्रकार से व्याख्या की रचना की है। निघण्टु जैसे महत्वपूर्ण वैदिक शब्दकोश के उपर तो इस प्रकार की व्याख्या की और भी अधिक आवश्यकता थी। यास्काचार्य ने इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए इस निरुक्त ग्रन्थ की रचना कर वेदाध्ययन मार्ग को अत्यन्त प्रशस्त कर दिया है।

मंत्रों की अनर्थकता—

यास्काचार्य ने मंत्रों के अर्थ बोध करना निरुक्त का दूसरा मुख्य प्रयोजन बतलाया है इस पर'कौत्स' आदि कुछ लोगों का कहना है कि मंत्रों का कोई अर्थ नही होता है। उनका जो कुछ भी फल हैं। इसलिए मंत्रों के अर्थों का बोध निरुक्त का प्रयोजन है तब तो निरुक्त व्यर्थ ही है इसी पूर्वपक्ष को युक्तियों द्वारा पुष्ट करते हैं-इसका अभिप्राय यह है कि लौकिक वाक्य जो सार्थक होते है उनमें न तो शब्द ही निश्चित होते हैं और न उनमें क्रम ही निश्चित होता है। हम उदकम् आनय भी कह सकते हैं और उसके स्थान पर 'जलमाहर' 'तोयमानय' आदि वाक्य भी बोल सकते है। इसलिये सार्थक वाक्य में पदो के निश्चित होने का नियम नही होता है। इस प्रकार 'जलम् आनय' के स्थान पर क्रम को बदल कर 'आनय जलम्' भी बोला जा सकता है।

पर 'आग्निमीले पुरोहितम्' आदि वैदिक मंत्रों में न तो अग्निमीले शब्दों को बदलकर 'वह्निस्तौमि' बोला जा सकता है और न उनके क्रम को बदलकर 'इले अग्निम्' ही बोला जा सकता है। 'अग्निमीले पुरोहितम्' इन्हीं शब्दों को इसी क्रम से बालना अनिवार्य है। इससे यह प्रतीत होता है कि इन शब्दों का कोई अर्थ नही होता हैं अपितु केवल उनके उच्चारण मात्र से

कुछ अपूर्व फल उत्पन्न होता है यह मंत्रों के आनर्थक्य की सिद्धि के लिए प्रथम मुक्ति कौत्स की ओर से दी गयी है। अन्य युक्तियाँ आगे देते हैं।इसका अभिप्राय यह है कि 'उरू प्रथस्व' इत्यादि उरूप्रथा उरूप्रथस्वोरूते यज्ञपतिः प्रथनाम् इत्यादि (यजुर्वेद १-२२) मंत्र से यह टुकड़ा लिया गया है।

(यजुर्वेद १-२२) मंत्र का विनियोग शतपथ ब्राह्मण ने पुरोडोश के फैलाने के कार्य में करते हुवे 'उरू प्रथस्व इति प्रथयति' यह लिखा है। यदि यह मंत्र सार्थक होता तो उसके 'उरूप्रथस्व' पदों का पढ़ते ही यह विदित हो जाना चाहिए था कि इसको पढ़कर पुरोडाश का प्रश्न करना-फैलाना-है उस दशा में ब्राह्मण में'इति प्रथयति' यह लिखा गया है। इसमें यह प्रतीत होता है कि ब्राह्मण ग्रन्थ की दृष्टि में मंत्र मे इस अर्थ का बोध कराने की सामर्थ्य नहीं हैं। क्योकि मंत्र अनर्थक है इसीलिए ब्राह्मण ने उसको 'रूप सम्पन्न्' किया है, उसका विनियोग किया है। अतः मंत्र अनर्थक ही है।मंत्रों को अनर्थक सिद्ध करने के लिए कौत्स की अन्य युक्ति भी निम्न प्रकार से है।

यज्ञ में स्थापित किये जाने वाले यूपके निर्माणार्थ वृक्ष को काटने की क्रिया में इन (यजु0 ४-१/६-१५) मंत्रों को विनियोग किया गया है वृक्ष के उपर कुश को रखकर कुठार द्वारा इसको काटा जाता है। उस समय कुश को सम्बोधन करके 'ओषधे त्रायस्व' इस प्रकार वृक्ष की रक्षा की प्रार्थना की जाती है। और कुठार से काटते समय स्वधिते मैनं हिंसीः' इस प्रकार हिंसा न करने अर्थात् वृक्ष को न काटने की प्रार्थना की जाती है। और कुठार से काटते समय स्वधिते मैनं हिसी:' इस प्रकार हिंसा न करने अर्थात् वृक्ष को न काटने की प्रार्थना की जाती है यदि इन मन्त्रों की सार्थक माना जाय तो जब इन को पढ़कर, वृक्ष को काटा जा रहा है उस समय 'ओषधे त्रायस्व' और 'स्वधितेमैनंहिंसी: इस प्रकार की प्रार्थनाएँ विल्कुल असंगत हो जाती है। इसलिये यह सिद्ध होता है कि मन्त्रों का वास्तव में कोई अर्थ नही है। उस समय इन मन्त्रों के पाठ अथवा उच्चारणमात्र से ही फल होता है उसके साथ अर्थ का कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि मन्त्रों को सार्थक माना जाय तो इन परस्पर विपरीत बातों की कोई सगंति नही लगती है अत एव मन्त्रों मो अनर्थक मानना ही उचित है यह केवलकौत्स का अभिप्राय है।

अभ्यासार्थ प्रश्नः-

लघु - उत्तरीय प्रश्न

1.निरुक्त किसे कहते हैं ?

2.वेद के कितने अंग होते हैं ?

3.विधा कितने प्रकार के होते हैं ?

4.व्याकरण तथा निरुक्त में कौन सा संबंध है ?

5.निरुक्त निघण्टु का कौनसा ग्रन्थ है ?

6.निरुक्त में कितने अध्याय है?

7.यास्काचार्य के द्वारा लिखित निरुक्त कौन सा ग्रन्थ है ?

8.निरुक्त का मूल प्रयोजन क्या है ?

9.किसके मत में मंत्रो के अर्थ की आवश्यकता नही है ?

10.वेदांगों में निरुक्त कौन सा अंग है ?

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. निरुक्त का लेखक कौन है-

(क) सायणाचार्य (ख) भास्कराचार्य

(ग) यास्काचार्य (घ) पाणिनि

2. प्रथम अध्याय में कितने पाद है-

(क) चार (ख) तीन

(ग) छः (घ) एक

3. वेदांगो मे निरुक्त को क्या कहा गया है-

(क) आँख (ख) नाक

(ग) कान (घ) श्रोत्र

4. निरुक्त में मनुष्य अर्थ वाचक कितने शब्दों का संग्रह किया का गया है-

(क) पचीस (ख) दश

(ग) पचास (घ) साठ

5. मंत्रो की सार्थकता का उपपादन किसने किया है-

(क) सायणाचार्य (ख) यास्काचार्य

(ग) शाकटायन (घ) भास्कराचार्य

6. सहिता पाठ के साथ किस पाठ का ज्ञान आवश्यक है-

(क) पद पाठ (ख) जटा पाठ

(ग) धन पाठ (घ) संहिता पाठ

कौत्स का अन्य मत

मन्त्रों के विप्रतिसिद्धार्थ अर्थात् परस्सपर विपरीत अर्थो के प्रतिपादक होने का एक उदाहरण है- एक ही वस्तु माता भी माना जाय पिता भी बन जाय यह नहीं हो सकता है। अदिति कोही द्यौ और अन्तरिक्ष दोनों बतलाना इसी प्रकार का विरूद्ध कथन है । यदि इन मन्त्रों को सार्थक माना जाय तो उनमें विरूद्ध अर्थ का प्रतिपादन भीमानना होगा, जो कि उचित नहीं है इसलिए मन्त्र अनर्थक मानने चाहिए यह कौत्स का अभिप्राय है।

4.3.4 मन्त्रों की सार्थकता का उपपादन

इसके पहले कौत्स ने अनर्थक सिद्ध करने का यत्न किया हैं। अब उसके मत का निराकरण करके ग्रन्थकार मन्त्रों की सार्थकता वाले सिद्धान्त पक्ष की स्थापना करेंगे। इस प्रयोजन के लिए वे पहले सिद्धान्त पक्ष की स्थापना करते हुए लिखते हैं - 'अर्थवन्तः शब्दसामान्यात्' अर्थात् शब्दों की समानता के कारण मन्त्र अर्थवान हैं।

जिस प्रकार सन्तानोत्पादन रूप कार्य के लिए विवाह किया जाता है उसी प्रकार का वर्णन ऋ0 १0-८५-४२मन्त्र में किया गया है। इससे मन्त्रों की सार्थकता सिद्ध होती है। इसलिए मन्त्रों को अनर्थक नही सार्थक मानना चाहिए।

इस प्रकार अपने सिद्धान्त पक्ष की स्थापना के लिए ग्रन्थकार ने 'शब्द सामान्यात्' रूप एक युक्ति और एक ब्राह्मण वाक्य प्रमाण के रूप में उपस्थित किया है। युक्ति का आशय यह है कि जैसे लोक में अग्नि आदि शब्द वेद में भी प्रयोग होते हैं। तब वे लोक में तो सार्थक हो आौर वेद में अनर्थक हो जाय यह तो नही हो सकता है जैसे लोक में अग्नि आदि शब्द सार्थक है इसी प्रकार उनको वेद में भी सार्थक मानना होगा। इसलिए मंत्र भी लौकिक वाक्यों के समान सार्थक ही हैं। युक्ति के द्वारा मंत्रों की सार्थकता को सिद्ध करके उसके समर्थन के लिए ऐतरेय ब्राह्मण (¬१४,१-१३,१-१६,१-१७) तथा गोपथ ब्राह्मण(२-६,४-२) आदि अनेक स्थानों पर आये हुए प्रबल एवं असन्दिग्ध रूप से मंत्रो की सार्थकता को सिद्ध करने वाले ब्राह्मण वचन उद्धृत किये हैं। इस प्रकार की युक्ति और प्रमाणों के द्वारा अपने सिद्धान्त पक्ष की स्थापना के बाद पूर्व पक्षी कौत्स ने मंत्रों की अनर्थकता सिद्ध करने के बाद जो युक्तियाँ प्रस्तुत की थी उन सबका आगे खण्डन कर रहे हैं।

लौकिक शब्दों में भी द्वन्द समास में अनेक स्थानों पर पूर्वनिपातया पर निपात का नियम पाया जाता है, और शब्दों को भी नियम पाया जाता है कि अमुक शब्दों का द्वन्द समास होने पर अमुक शब्द नियम से पहिले आयेगा और अमुक शब्द बाद मे आयेगा। अजाद्य (अष्टा0 २.२.३३) इस सूत्र में अजादि और अदन्त पद के पूर्व प्रयोग का नियम किया गया है। इस नियम के अनुसार 'ईश -कृष्णौ' यह प्रयोग ही होता है कृष्ण इशौ नही हो सकता है। इसी प्रकार इसी सूत्र के अर्न्तगत 'ध्यन्तादजाधन्त विप्रति षेधेन' इस वार्तिक द्वारा 'ईन्द्राग्नी' यह पद नियन्त्रित होता है। इसलिए क्रम या पदों के नियत हेाने से जैसे ये लौकिक प्रयोग अनर्थक नही होते है। इसी तरह वैदिकमंत्र भी अनर्थक नही होते हैं।

इसी तरह कौत्स के अन्य मतो का उत्तर देते हुए यास्काचार्य जी कहते है अथो एतत्' इत्यादि इसका अभिप्राय यह हुआ कि जब वेदमंत्र काटे जाने वाले वृक्ष के लिए यह कहतें है कि 'औषधे त्रायस्व' स्वधिते मैनं हिसीः तो इस वेद वचन से यह प्रतीत होता हैकि वृक्ष के काटे जाने पर भी यह उसकी हिंसा नही है इससे उसका अपकर्ष नही उत्कर्ष ही होता है। बहुजन हिताय - बहु न सुखाय किये जाने वाले किसी महान कार्य में व्यक्ति का आत्मोत्सर्ग भी उसके उत्कर्ष का हेतु मानकर ही उस छेदन को भी रक्षा रूप मानकर वेद ने 'ओषधे त्रायस्व' आदि कहा है। उसी प्रकार 'स्वधिते मैनं हिसीः' हिंसा का अभाव अर्थात् जीवन की सार्थकता सूचित होती है। इसीलिए इस उदाहरण के द्वारा कौत्स ने जो मंत्रो का विरोध दिखाकर उनको अनर्थक सिद्ध करना चाहते हैं, वह उचित नहीं है।

4.3.5 कौत्स की अन्य युक्ति का खण्डन

प्राचीन काल में शिष्टाचार व्यवस्था में जब गुरू आदि को शिष्य प्रणाम करते थे तो उसके साथ सदा अपना नाम लेकर ही प्रणाम करते थे। इसका कारण यह है कि शिष्य के अधिक होने के कारण कदाचित गुरू को शिष्य का नाम विस्मृत हो गया हो, इसलिए शिष्य अभिवादन के समय अपना नाम लेकर ही प्रणाम करते थे। इसी प्रकार जिसको मधुपर्क कर दिया जाता है वह जानता है कि मधुपर्क दिया जा रहा है फिरभी विधान के अनुसार 'मधुपर्को मधुपर्कोमधुपर्कः प्रतिगृहयताम्'तीन बार मधुपर्क पद का उच्चारण कर के मधुपर्क दिया जाता है यह उसकी ओर विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट दिया जाता है इसी प्रकार अपने कर्तव्य को जानने वाला 'होता' को जो 'अग्नये सामिध्यमानायानुब्रूहि' आदि प्रेरणा की जाती है उसका आशय यह है यदि मन को किसीअन्य ओर चले जाने से उसको अपने का ध्यान न रहे तो उसी ओर उसका ध्यान दिलाया जाय। इस आधार पर मंत्रों को अनर्थक नही माना जा सकता है।

वेद मंत्र में 'निऋत्या ' इस प्रकार का संहिता पाठ पाया जाता है, परन्तु पदपाठकार ने उसका पदच्छेद भिन्न भिन्न प्रकार से किया है। यह भेद निरुक्त के ज्ञान के बिना नही किया जा सकता है। निरुक्त के ज्ञान के बिना मंत्रो के अर्थ का ज्ञान नही हो सकता है, इसलिए पहले से ही वेद के दो प्रकार के पाठ पाये जाते है एक संहिता पाठ है और दूसरा पद पाठ। मंत्रो के पद पाठ के कर्ता शाकटायन माने जाते है। पदों को अत्यन्त मिला देने से संहिता बनती है। इसलिए संहिता पाठ के साथ पदपाठ का ज्ञान भी आवश्यक है और सारे वैदिक शाखाओं के पार्षद अर्थात प्रतिशाख्य जो कि उन शाखाओं के व्याकरण रूप है पदो के आधार पर ही चलते है इसलिए पद पाठ का ज्ञान आवश्यक है।वेद को पढ़ने के बाद वेद के अर्थ का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक बताया गया है अर्थ ज्ञान के बिना केवल वेद मंत्रो को कण्ठस्थ कर लेने, मात्र से कल्याण नही हो सकता है। अर्थ न जानकर केवल वेद को घोट लेने वाला व्यक्ति भारवाही गर्दभ के समान है इस प्रकार इसमें मंत्रार्थ को न जानने वाले अत्यन्त निन्दित बताया गया है और ज्ञान की प्रशंसा की गयी है। वेद के अर्थ का ज्ञान निरुक्त के बिना नही हो सकता है, इसलिए निरुक्त का पढ़ना अत्यन्त आवश्यक है । निरुक्त को पढ़कर और वेद के अर्थो को जानकर प्रशंसा प्राप्त करना अत्यंत आवश्यक है।वेद के अर्थ को न जानने वालेकी निंदा निम्नाश्लोक की गयी है- **यद धीतमविज्ञातं निगदेनैव शब्द्यते। अनग्नाविव शुष्कैधो न तज्वलति कर्ह्हिचित्।।** इस श्लोक में वेद के अर्थ को न जानने की निंदा की गयी है ।बिना अर्थ को समझे केवल वेद को कण्ठस्थ कर लेना व्यर्थ है। जैसे बिना अग्नि के सूखी से सूखी लकड़ी प्रज्वलित नही हो सकती हैं उसी प्रकार अर्थ ज्ञान के बिना वेद जैसी महत्वपूर्ण विद्या भी विफल व्यर्थ हो जाती है अतः वेदार्थ का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। अतः अज्ञानी होने की निंदा से बचकर वेदों के अर्थ ज्ञान की प्राप्ति करना निरुक्त शास्त्र का महत्वपूर्ण प्रयोजन है।

4.3.6 ज्ञान की प्रशंसा के विषय में अन्यवचन

अज्ञान की निन्दा एवं ज्ञान की प्रशंसा के विषय में जो उपर प्रमाण उद्धृत किये गये है। वे प्रमाण वेद मन्त्र न होकर कही अन्यत्र के श्लोक है। इसलिए अब वेइ के अर्थ के प्रशंसा के विषय में वे मन्त्र भी प्रस्तुत करते है। उनमे से पहला मन्त्र है -

उतत्त्व: पश्यन् न ददर्श वाचमुतत्व: श्रृण्वन् न श्रृणोत्येनाम्।
उतोत्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्ये उशती सुवासा: ।।(ऋ0 १0-७१-४)

हाथ, पैर, कान, और आँख आदि अंगो वाले सभी व्यक्ति समान रूप् से ही अध्ययन करते हैं परंतु अन्य एक व्यक्ति वाणी को देखता हुआ भी नही देखता है और अन्य (दूसरा) सुनता हुआ भी नही सुनता है सुन्दर वस्त्र धारण करने वाली पति अभिलाषिणी पत्नी के समान यह वाणी इस (वेदार्थ को जानने वाले) के लिए अपने शरीर को अनावृत कर देती है अगोपनीय बना देती है, खोल देती है।

एक (वेदार्थ को न जानने) (इस वाणी का) देखता हुआ भी नही देखता है और एक (वेदार्थ को न जानने वाला व्यक्ति) इस वाणी को सुनता हुआ भी नही सुनता है अर्थात् उसका स्वंय अपनी आँखो से देखकर पढ़ना या गुरू मुख से याद करना सब व्यर्थ है। और जो अर्थ को समझने वाला है उसके लिए वाणी अपने स्वरूप को इस प्रकार से खोलकर रख देती है जैसे (ऋतुकाल में) कामयमान और सुन्दर वस्त्रों से सजी हुई पत्नी अपने पति के लिए सम्पूर्ण स्वरूप (शरीर को) प्रकाशित कर देती है खोल देती है वस्त्र रहित हो जाती है। आधा पद्य कहता है।

4.4 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं कि निरुक्त किसे कहते हैं तथा निरुक्त की आवश्यकता क्या है ? वेदांगों में निरुक्त का महत्वपूर्ण स्थान है। वेदों के अर्थ के ज्ञान के लिए निरुक्त को पढ़ना महत्वपूर्ण माना गया है। कौत्स ने वेदार्थ का खण्डन करते हुए कहा है कि वेद के मंत्रो के उच्चारण करने मात्र से फल की प्राप्ति होती है। वेदों के अर्थ ज्ञान की कोई आवश्यकता नही है किन्तु निरुक्त के रचनाकार यास्काचार्य ने कहा है कि वेद मंत्रो के उच्चारण के साथ अर्थ ज्ञान अत्यन्त आवश्यकता है। निरुक्त तथा अर्थज्ञान की आवश्यकता है। निघण्टुच में क्या अंतर इसे आप बता सकते हैं।

4.5 शब्दावली

इदमन्तरेण मंत्रेषु अर्थ प्रत्ययो न विद्यते = मन्त्रों का अर्थ का ज्ञान निरुक्त के द्वारा होता है। इदमन्तनरेण विभागो न विद्यते (ज्ञायते) = निरुक्त के द्वारा ही किसी पद को विभिन्न खण्डों में बाटा जा सकता है।

यद्धीतम्	जो पढा गया
अविज्ञातम्	न जाना गया
अवसाय	भोजन के लिए
अनग्नाविव	अग्नि रहित

न तज्ज्वलति	सूखी लकड़ी नहीजलती है
जलं	जल
आनय	लाओ
कुठार	कुदाल (मिट्टी खोदने वाला)
ओषधें	हे ओषधि
त्रायस्व	रक्षा करो
यूप	यज्ञ के खम्भा के लिए लकड़ी
पुरोडाश	हवन सामग्री
चक्षु	नेत्र
घ्राण	नाक
श्रोत्र	कान
पश्यन्न्	देखते हुए भी
न ददर्श	देखानही
वाचम्	वाणी के
तन्वं विसस्रे	शरीर को
सुवासा	सुन्दर वस्त्र धारण की हुई

4.6 अभ्या स प्रश्नों के उत्तर

इस इकाई में वर्णित तथ्यों के अध्ययन के पश्चात् आप सभी अभ्यास प्रश्नों के उत्तर देनें का स्वयं प्रयास करें।

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि' निरुक्त म् (यास्क प्रणीतम्) चौखम्भा विद्याभवनचौक (बनारस स्टेट बैकं के पीछे) पो. वा. नं. 1069 वाराणसी 221001

2. गोपाल दत्त पाण्डेय वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी भट्टोजिदीक्षित विरचित चौखम्भा सुर भारती प्रकाशन के 06/117 गोपाल मन्दिर लेनपो. वा0 नं. 1129 वाराणसी 221001

4.8 उपयोगी पुस्तकें

आचार्य विश्वेश्वर निरुक्त म् (श्री यास्काचार्य विरचित) ज्ञान मण्डल लिमिटेड वाराणसी 221001

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वेदार्थ की आवश्यकता एवं उसका फल बताएं।
2. निरुक्त का महत्त्व बताइये।
3. निरुक्त सम्बन्धित आचार्यों के मतों की विवेचना कीजिए।

खण्ड- चार (Section-D)
सृष्टि की वैदिक अवधारणा

इकाई.1 सृष्टि की वैदिक परिकल्पना एवं अवधारणा

इकाई की रुपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 सृष्टि की वैदिक परिकल्पना एवं अवधारणा
    1.3.1वैदिक सृष्टि की विवेचना
    1.3.2 वैदिकवाङ्मय में सृष्टि की परिकल्पना
1.4 सारांश
1.5 पारिभाषिक शब्दावली
1.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रिय शिक्षार्थियों !

वैदिक अध्ययन से सम्बन्धित यह चतुर्थ खण्ड (VAC- 01) की यह प्रथम इकाई है। इसके पूर्व की इकाई में आपने वैदिक सूक्त एवं निरुक्त के बारे में विस्तार से अध्ययन किया। प्रस्तुत इकाई में आप सृष्टि की वैदिक परिकल्पना एवं अवधारणा के विषय में जानेंगे।

संस्कृत साहित्य में वेदों का स्थान सर्वोपरि है । भारत मे धर्म व्यवस्था वेदों से ही है । और वेद धर्म निरूपण मैं स्वतंत्र प्रमाण हैं, स्मृति इत्यादि उसीका अनुसरण करते है। वेद शब्द 'विद्' धातु में 'घञ्' प्रत्यय लगाने से बनता है। इस धातु के बहुत-से अर्थ हैं जैसे 'विद ज्ञाने', 'विद सत्तायाम्', 'विद विचारणे', 'विद्लृ लाभे, 'विद चेतनाख्याननिवासेषु' जिनसे सत्यासत्य, पापपुण्य, धर्माधर्म, तथा विधिनिषेध का विवेक समुद्भूत हो, जिनके द्वारा सब सुखों का लाभ होता है और जिनमें सकलविद्याएँ बीजरुप में विद्यमान रहती हैं- वे ग्रन्थ वेद कहलाते हैं। महर्षि मनु कहते कहते हैं-**" वेदोऽखिलो धर्ममूलम्"** वेद धर्म का मूल है । **"सर्वज्ञानमयो हि सः"** अर्थात् वेद सकलज्ञान से भरपूर है। **" विद्यन्ते धर्मादयः पुरुषार्था यैस्ते वेदाः"** अर्थात् धर्म, अर्थ, काम , मोक्ष इन पुरुषार्थ जिससे है वह वेद है । एक अन्य प्रचलित व्याख्या है के - **"अपौरुषेयं वाक्यं वेद"** अर्थात् जो वाक्य किसी पुरुष से नही कहा है यानी अपौरुषेय है वैसा वाक्य वेद है। वैदिक विज्ञान, राष्ट्रधर्म, समाज-व्यवस्था, पारिवारिक-जीवन, वर्णाश्रम-धर्म, सत्य, प्रेम, अहिंसा, त्याग आदि को दर्पण की भाँति दिखाता है। वेद संसाररूपी सागर से पार उतरने के लिए नौकारूप हैं। वेद में मनुष्यजीवन की सभी प्रमुख समस्याओं का समाधान है। अज्ञानान्धकार में पड़े हुए मनुष्यों के लिए वे प्रकाशस्तम्भ हैं, भूले भटके लोगों को वे सन्मार्ग दिखाते हैं। आचार्य सायण के अनुसार **"इष्टप्राप्त्यनिष्ट-परिहारयोरलौकिकम् उपायं यो ग्रन्थो वेदयति, स वेदः"** अर्थात् इष्ट की प्राप्ति तथा अनिष्ट के निवारण का उपाय जो बतलाएं वे ग्रन्थराशि वेद कहलाते हैं।

वैदिक वाङ्मय में सृष्टि के विषय पर कई स्थानों पर विचार किया गया है। उपनिषदों में इस विषय पर विस्तार से विचार किया गया है। पुराण, महाभारत, मनुस्मृति, दर्शन, ज्योतिषादि ग्रन्थों में भी सृष्टि की अवधारणा का सविस्तार वर्णन प्राप्त होता है। सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में विज्ञान का मानना यह है कि सृष्टि की उत्पत्ति Bing-bang (भयंकर विस्फोट) के साथ ही प्रारमभ हुई और परिवर्तन के कई चरणों से गुजरती हुई वर्तमान स्थिति में पहुँची है। ठपह ठंदह के साथ ही आकाश और समय का कार्य प्रारमभ हुआ। सृष्टि उत्पत्ति का क्रम इस प्रकार रहा- आकाश, ज्वलनशील वायु, अग्नि, जल और निहारिका का मण्डल। निहारिका मण्डल में ही सौर मण्डलों ने स्थान पाया। पृथ्वी की उत्पत्ति सूर्य से छिटक कर अलग होने के बाद धीरे-धीरे परिवर्तित होकर वर्तमान रूप में हुई। श्वास लेने योग्य वायु के बनने, पानी के पीने योग्य होने पर पानी के अन्दर सर्वप्रथम जलचरों को जीवन मिला। फिर क्रमशः जल-स्थलचर, स्थलचर और आकाशचर प्राणियों की उत्पत्ति हुई। सृष्टि उत्पत्ति के पूर्व क्या था? इस विषय में विज्ञान का कहना है कि Bing-bang के बाद ही सृष्टि नियम विकसित हुए हैं। सृष्टि की उत्पत्ति कैसे हुई? इससे पूर्व यह

भी जानना आवश्यक है कि सृष्टि की उत्पत्ति का कार्य कब प्रारम्भ हुआ तथा सृष्टि का प्रारम्भ कब हुआ यह एक अत्यन्त महत्पूर्ण विषय है। वेद सम्पूर्ण ज्ञान विज्ञान के आदि स्रोत हैं। सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन ऋग्वेद के अदिति सूक्त विश्वकर्मा सूक्त, पुरुष सूक्त, प्रजापति सूक्त, नासदीय सूक्त, ऋत् सूक्त तथा अथर्ववेद के कालसूक्त आदि सूक्तों में प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त ब्राह्मणग्रन्थों तथा उपनिषदों में भी सृष्टि विषयक अनेक सन्दर्भ प्राप्त होते है। इस इकाई में आप वेदों में सृष्टि विषयक परिकल्पना एवं वैदिक अवधारणाओं के विषय में विस्तार से पढेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप—

- वेद के अर्थ को बताने में समर्थ होंगे।
- विभिन्न सूक्तों में वर्णित सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन कर सकेंगे।
- शास्त्रपरम्परा के अनुसार सृष्टि की परिल्पना का विवेचन करने में समर्थ होंगे।
- सृष्टि की वैदिक परिकल्पना की व्याख्या कर सकेंगे।
- पुराणों में सृष्टि की परिकल्पना का वर्णन कर सकेंगे
- सृष्टि के अर्थ को बताने में समर्थ होंगे।
- सृष्टि की उत्पत्ति का समय बता सकेंगे।

1.3 सृष्टि की वैदिक परिकल्पना एवं अवधारणा

सृष्टि का शाब्दिक अर्थ है निर्माण रचना अथवा उत्पत्ति। अर्थात् किसी वस्तु की उत्पत्ति अथवा निर्माण सृष्टि कहलाती है। जगत् की सृष्टि एक महत्वपूर्ण विषय है। सृष्टि की अवधारणा के विषय में ज्ञान प्राप्त करने पूर्व यह भी जानना आवश्यक है कि इस चराचर जगत् का निर्माण कार्य कब प्रारम्भ हुआ। इस विषय में सूचना का सन्दर्भ वेदों का नेत्र स्वरूप ज्योतिषशास्त्र है। ज्योतिषशास्त्र सृष्ट्यादि से लेकर प्रलय पर्यन्त काल की गणना की गई है। ज्योतिषशास्त्र के सिद्धान्त ग्रन्थों में कालमानाध्याय में कहा गया है कि सृष्टि की उत्पत्ति ब्रह्मा का दिन प्रारम्भ होने पर हुई। अर्थात् ब्रह्मा का कल्प तुल्य दिन पूर्ण होने पर प्रलय होती है। तदनन्तर एक कल्प तुल्य रात्रि में वह विश्राम करते है। द्वितीय अहोरात्र प्रारम्भ होने पर वह संसार का निर्माण कार्य प्ररम्भ करते है।

इस प्रकार दो कल्प तुल्य ब्रह्मा का एक अहोरात्र होता है। एक कल्प में सन्धि सहित 14 मनु होते है। प्रत्येक मनु में 71 महायुग होते हैं। एक महायुग का मान 12000 दिव्य वर्ष होता है। (दिव्य वर्ष देवताओं से सम्बन्धित वर्ष होता है जिसमें 360 देवताओं के दिन होते है। देवताओं के एक दिन में 360 सौरदिन होते हैं। सूर्य का एक अंश तुल्य भोगकाल एक सौर दिन कहलाता है तथा 360 सौर दिन का एक सौरवर्ष जो देवताओं का एक दिन दिन अथवा दिव्यदिन है।)

एक महायुग में कृतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग तथा कलियुग नामक चारयुग सन्धि सहित होते है। चार हजार दिव्य वर्ष का एक कृगयुग कहा है। इस युग की जितने दिव्य वर्ष की अर्थात् 400 वर्ष की सन्ध्या होती है और उतने ही वर्षों की अर्थात् 400 वर्षों का सन्ध्यांश का समय होता है अर्थात कृतयुग का कुल मान 4800 दिव्यवर्ष है। त्रेता युग का मान 3000 दिव्यवर्ष तथा 300 वर्ष की संध्या 300 वर्ष संध्यांश कुल मान 3600 दिव्यवर्ष है। द्वापर युग का मान 2000 दिव्यवर्ष, 200 दिव्यवर्ष सन्धि एवं 200 दिव्यवर्ष संध्याश कुल मान 2400 दिव्य वर्ष तथा कलयुग का मान 1000 दिव्यवर्ष, सन्धि-संध्यांश 200 वर्ष कुल मान 1200 वर्ष है। इस प्रकार कुल मान 4800+3600+2400+1200=12000 दिव्यवर्ष एक महायुग का मान होता है। अर्थात -

सूर्य का एक अंश तुल्य भोगकाल	=	एक सौर दिन
360 सौर दिन	=	देवताओं का एक दिन (दिव्यदिन)
360 दिव्यदिन	=	1 दिव्य वर्ष।
12000 दिव्य वर्ष	=	1 महायुग
71 महायुग	=	1 मनु
ससन्धि 14 मनु	=	1 कल्प = ब्रह्मा का दिन
2 कल्प	=	ब्रह्मा का एक अहोरात्र।

देव युगों को 1000 से गुण करने पर जो काल परिणाम निकलता है, वह ब्रह्म का एक दिन और उतने ही वर्षों की एक रात समझना चाहिए। यह ध्यान रहे कि एक देव वर्ष 360 मानव वर्षों के बराबर होता है। जो लोग उस एक हजार दिव्य युगों के परमात्मा के पवित्र दिन को और उतने की युगों की परमात्मा की रात्रि समझते हैं, वे ही वास्तव में दिन-रात = सृष्टि उत्पत्ति और प्रलय काल के विज्ञान के वेत्ता लोग हैं। इस आधार की सृष्टि की आयु = 12000 × 1000 देव वर्ष = 12000000 देव वर्ष 12000000×360 = 4320000000 मानव सौरवर्ष। अतः 12000000 देव वर्ष = 4320000000 मानव वर्ष पहले जो बारह हजार दिव्य वर्षों का एक दैव युग कहा है, इससे 71 (इकहत्तर) गुणित अर्थात् 12000×71 = 852000 दिव्य वर्षों का अथवा 852000×360= 306720000 वर्षों का एक मन्वन्तर का काल परिणाम गिना गया है। इस प्रकार वह महान् परमात्मा असंख्य मन्वन्तरों को, सृष्टि उत्पत्ति और प्रलय को बार-बार करता रहता है, अर्थात् सृष्टी प्रवाह से अनादि है। उक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि 4320000000 सौरवर्ष पूर्व ब्रह्मा का दिन प्रारम्भ हुआ तथा सृष्टि की रचना का कार्य प्रारम्भ हुआ।

सृष्टि की रचना का प्रारम्भ कब हुआ ? इस विषय पर विचार करने के पश्चात इस विषय पर विचार करना आवश्यक है कि सृष्टि में मानव की उत्पत्ति कब हुई, क्योंकि मानव के उत्पन्न होने पर ही तो वेद का ज्ञान उसे प्राप्त हुआ है। इससे पूर्व की स्थिति अर्थात् सृष्टि उत्पन्न होने के प्रारम्भ से मानव के उत्पन्न होने तक के समय पर भी विचार करना परमावश्यक है। वास्तव में मनुष्य ने तो अपने उत्पन्न होने के बाद ही समय की गणना प्रारमभ की है। सृष्टि के उस समय की

गणना वह कैसे करता, जब बन ही रही थी? वह कैसे जानता कि सृष्टि उत्पन्न होने की क्रिया के प्रारमभ होने से उसके पूर्ण होने तक सृष्टि निर्माण में कितना समय व्यतीत हुआ है? सूर्यसिद्धान्त में इस विषय पर विचार किया गया है। समस्त वैदिक वांड्मय के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि सृष्टि के रचयिता परब्रह्म हैं। वैदिक वांड्मय में परब्रह्म को ही प्रजापति, विश्वकर्मा, हिरण्यगर्भ, विराट पुरूष आदि के नाम से सम्बोधित किया गया है। ज्योतिषशास्त्र के आर्ष ग्रन्थ सूर्यसिद्धान्त के कालमानाध्याय में वर्णन सृष्टि काल के विषय इस प्रकार से वर्णन आया है -

ग्रहक्ष-देव-दैत्यादि सृजतोक्षस्य चराचरस्य।
कृताद्रिवेदा दिव्याब्दाः शघ्ना वेधसो गताः।

अर्थात् ग्रह, नक्षत्र, देव, दैत्य आदि चर (जघैर्म जीव-जन्तु) अचर (स्थावर वृक्ष पर्वतादि) की रचना करने में ब्रह्मा को कल्पारम्भ से शत गुणित 474 दिव्य वर्ष अर्थात् 474×100 = 47400 दिव्य वर्ष बीत गए। एक दिव्यवर्ष होते है अर्थात 47400 × 360 = 17064000 सौर वर्ष। तथा 4320000000-17064000 = 4302936000 सौरवर्ष। उक्त विवेचन से सिद्ध होता है कि सूर्यसिद्धान्त के काल से 4320000000 सौर वर्ष पूर्व सृष्टि की रचना प्रारम्भ हुई तथा 4302936000 सौरवर्ष पूर्व सृष्टि की सम्पूर्ण गतिविधियों का प्रारम्भ हुआ। अर्थात् ग्रह, नक्षत्र ने चलना प्रारम्भ किया तथा पृथ्वी पर चराचर का प्रारम्भ हुआ।

1.3.1ब वैदिक सृष्टि की विवेचना

वैदिक वांड्मय के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि सृष्टि के रचयिता परब्रह्म हैं। वैदिक सृष्टि का विवेचन प्रायः विभिन्न सूक्तों के माध्यम से हमें दृष्टिगोचर होता है।जिसका वर्णन हम यहा करने जा रहे है।

1. अदिति सूक्त—

अदिति शब्द का अर्थ है- पूर्णता, रचनात्मकता, जो बन्धन रहित हो, तथा जो सीमा से रहित हो। अदिति सूक्त ऋग्वेदीय दशम मण्डल का 72 वाँ सूक्त है। इस सूक्त की दृष्ट्री अदिति दाक्षायणी है। यह प्राचेतस दक्ष प्रजापति तथा आसिकनी की कन्या तथा कश्यप प्रजापति की पत्नी थी। इस सूक्त में अदिति को विश्व सृष्टि की मूर्ति के रूप में प्रतिपादित किया गया है। मन्त्र में कहा गया है कि अदिति ही द्यौ है, अदिति अन्तरिक्ष है, अदिति ही सब भूतों की माता और पिता है। वही पुत्र है, पञ्चजन भूत और भविष्य सब अदिति ही अदिति है। यथा—

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः।
विश्वेदेवा अदितिः पञ्चजना अदितिर्ज्जातमदितिर्जनित्वम्।।

इस मन्त्र में अदिति शब्द अनेक पदों से व्यवहृत होता है। सूक्त के 5 वें मन्त्र में दक्ष को सूर्य कहा गया है औरसूक्त में अदिति को 'प्रकृति' कहा गया है। और इसी प्रकृति से सब पदार्थों की उत्पत्ति कही गई है। ठीक इस सूक्त की भाँति सांख्यदर्शन में भी सृष्टि की उत्पत्ति का मूल कारण प्रकृति को कहा है। सूक्त में दिव्य पदार्थों की सृष्टि प्रक्रिया में परब्रह्म परमेश्वर को उपादान कारण बनाया तथा अव्यक्त प्रकृति को निमित्त कारण। यही महान् ब्रह्माण्ड वा प्रकृति का स्वामी परमात्मा है

और यही परमात्मा इन समस्त लोकों को लौहकार के सदृश अग्नि में डालता और संतप्त करता है। सर्वप्रथम हिरण्यगर्भ रूप परमात्मा अपने अग्निमय तेजस रूप से सबको तप्त करता है। अतएव वहीं से अनेक सूर्य तप्त रूप में उत्पन्न होते हैं, तदनन्तर सृष्टि की प्रागवस्था में सूर्यादि के प्रथम निर्माण वा प्रेरणाकाल में अव्यक्त प्रकृति से सत् अर्थात् व्यक्त जगत् उत्पन्न हुआ। इसके पश्चात् व्यापक दिशाएँ प्रकट हुईं। तदनन्तर उसी से ऊपर की ओर फैलने वाले किरणों वाला इसी प्रकृति अर्थात् अदिति से ऊर्ध्व आकाश में गति करने वाले सूर्य- चन्द्रादि प्रकट हुए, अदिति से ही व्यापन युक्त गुण वाले पञ्च तत्त्वों (आकाश, वायु, जल, अग्नि, पृथिवी) की उत्पत्ति हुई। उस अखण्ड प्रकृति से ही दग्ध करने वाले अग्नि और बलोत्पादक वायु की उत्पत्ति हुई है। सूर्य रूप अग्निमय पिण्ड से खण्ड न होने वाली दृढ यह पृथिवी उत्पन्न हुई। अखण्ड प्रकृति से अग्नि और वायु की उत्पत्ति बताई गई है और एक अन्य सन्दर्भ में इस ऋचा के अनुवाद में कहा गया है कि अदिति दक्ष की माता है अर्थात् अदिति से ही दक्ष की उत्पत्ति हुई है और यह अदिति उस दक्ष से परे है अर्थात् अखण्ड रूप में विद्यमान है। सूक्त के ही अन्य मन्त्र में कहा गया है कि अदिति सूर्य की दुहिता के समान है और (अदिति को मन्त्र में पृथिवी भी कहा गया है) वह दृढ पृथिवी अग्नि रूप से उत्पन्न हुई है। उसके पश्चात् सुख-ऐश्वर्य में रमण करने वाले, अमृत अविनाशी जीवन से बंधे हुए अनेक जीवगण उत्पन्न हुए।

व्यापक अखण्ड प्रकृति से आठ तत्त्व उत्पन्न हुए, जो बहुत से लोकों की रक्षा करते हैं। अर्थात् उत्पादनोन्मुख प्रकृति से महत्, अहंकार, पञ्च तन्मात्र अर्थात् सूक्ष्म भूत वह व्यापक अखण्ड प्रकृति सात ग्रहों के रूप में इन ग्रहों को प्राप्त हुई। उसने सूर्य को इन सातों से दूर फेंका। इनमें आठवाँ मार्तण्ड सूर्य है, उसको दूर ऊपर फेंका जो उदित होता है। सातों पुत्रों के साथ वह अविनाशिनी शक्ति पूर्वकाल में आती है और तत्पश्चात् उत्पन्न होने तथा फिर मृत्यु के लिए तुझसे ही हे प्रकृते ! मृत जड़ तत्त्व के बने अण्ड वा जीवित देह उत्पन्न होते हैं।

अति लघूत्तरीय प्रश्न—

1- अदिति सूक्त ऋग्वेदीय दशम मण्डल का कौन सा सूक्त है?
2- अदिति सूक्त में किसे विश्व सृष्टि की मूर्ति के रूप में प्रतिपादित किया गया है?
3- किस प्रकृति से अग्नि और वायु की उत्पत्ति बताई गई है?
4- व्यापक अखण्ड प्रकृति से कितने तत्त्व उत्पन्न हुए?
5- दृढ पृथ्वी किस रूप से उत्पन्न हुई है?

2. विश्वकर्मा सूक्त—

विश्वकर्मा सूक्त ऋग्वेद के दशम मण्डल का 81वां तथा 82 वां सूक्त है। सूक्त में कहा गया है कि विश्वकर्मा ने समस्त जगत् को यज्ञीय हविष्य के रूप में अग्नि को समर्पित कर दिया। तदनन्तर विश्वकर्मा स्वयमेव अग्नि में प्रविष्ट हो गया। वही दृश्यादृश्य जगत् का निर्माणकर्त्ता था। अतः स्पष्ट हो जाता है कि विश्वकर्मा ने द्विविध शरीर धारण किया था। एक शरीर को अग्नि में याज्ञिक हवि के रूप समर्पित किया और दूसरे शरीर से जगत् की संरचना की। तृतीय मन्त्र में कहा

गया है कि विश्वकर्मा की आँखें, मुख, बाहु तथा चरण चारों और है। अपनी भुजाओं तथा पदों के प्रेरण से वह आकाश तथा पृथ्वी को उत्पन्न करते है। 82 वें सूक्त के प्रथम मन्त्र में कहा गया है कि शरीर के उत्पादयिता तथा अनुपम धीर विश्वकर्मा ने सर्वप्रथम जल को उत्पन्न किया तत्पश्चात जल में इधर-उधर चलने वाली द्यावापृथ्वी की रचना की। द्यावापृथ्वी के प्राचीन तथा अन्त्य प्रदेशों को विश्वकर्मा ने सुदृढ़ किया। द्वितीय मन्त्र में कहा गया है कि, विश्वकर्मा बृहत् हैं तथा वो सब जानते हैं तथा सब कुछ देखते हैं। 82 वें सूक्त में विश्वकर्मा का सर्वोच्चशक्ति के रूप में वर्णन किया गया है। इस सूक्त के अनुसार विश्वकर्मा अपनी संकल्पात्मक बुद्धि के सामर्थ्य से समस्त जगत् को धारण करने वाला है। उस बुद्धिमान ने हिरण्यगर्भ को उत्पन्न किया और तदनन्तर पूर्व से उत्तर परिणाम को प्राप्त होते हुए द्यौ और पृथिवी को जन्म दिया। इन दोनों के जब पर्यन्त भाग, बाहर के सीमा भाग स्थिर हो गए तो पुनः उस बुद्धिमान ने द्यौ और पृथिवी का विस्तार किया अर्थात् उसमें अनेक विकृतियाँ की। सूक्त में विश्वकर्मा की स्तुति बड़े ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत की गई है। विश्वकर्मा को सृष्टि के संहारकर्त्ता और सृष्टि के स्रष्टा उभी रूपों में हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों में विश्वकर्मा का तादात्म्य प्रजापति के साथ स्थापित किया गया है। उपर्युक्त कथन से यह भी स्पष्ट होता है कि अन्य विकृतियों से पूर्व हिरण्यगर्भ की उत्पत्ति हुई और उस गर्भाण्ड से द्यौ और पृथिवी लोकों की उत्पत्ति होती है। इन दोनों लोकों को स्थिर करने के अनन्तर वह बुद्धिमान अन्य विकृतियाँ करके उन लोकों को विस्तृत करता है ।

लघूत्तरीय प्रश्न—

1- विश्वकर्मा के दो प्रकार के शरीर ने क्या कार्य किया ?
2- विश्वकर्मा ने सर्वथम किस को उत्पन्न किया ?
3- विश्वकर्मा सूक्त किस वेद के किस मण्डल का कौन सा सूक्त है।
4- ब्राह्मण ग्रन्थों में विश्वकर्मा का तादात्म्य किस के साथ स्थापित किया गया है।
5- विश्वकर्मा आकाश तथा पृथ्वी को कैसे उत्पन्न करते है।

3. पुरुष सूक्त —

पुरुष सूक्त ऋग्वेद के दशममण्डल का 90वॉं सूक्त है। इस सूक्त के ऋषि नारायण तथा देवता पुरुष है। इस सूक्त में 16 मन्त्रें के माध्यम से जगत की सृष्टि एवं सृष्ट का विकास का कारण विराटपुरुष बताया गया है। वैदिक ऋषि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के सृष्टिक्रम को यज्ञ के रुप में स्वीकार करते हैं। उनके मतानुसार सूक्त में वर्णित विराट् पुरुष ही इस ब्रह्माण्ड रूपी यज्ञ में स्वयं को अर्पित करके अनेक रूपों में प्रकट होता है , तदनन्तर सृष्टि की उत्पत्ति प्रारम्भ होती है। पुरुष के भव्य स्वरूप का वर्णन सूक्त के प्रारम्भिक चार मन्त्रों में किया गया है। यहाँ मन्त्रों में बताया गया है। कि विराट् पुरुष परमेश्वर हजारों सिरों वाला, हजारों आँखो वाला और हजारों पैरों वाला है। वह भूमि के चारों और से व्याप्त करके दस अंगुल प्रमाण में ब्रह्माण्ड को पार करके स्थित है। अर्थात् वह परम पुरुष ब्रह्माण्ड को भीतर और बाहर से व्याप्त किए हुए है। यह सब कुछ दृश्यमान वर्तमान जगत् पुरुष ही है। जो कुछ हो चुका है, भूतकालीन और जो कुछ होगा अर्थात् भविष्यत् कालीन

जगत् भी पुरुष ही है और वह पुरुष देवताओं का अथवा अमरत्व का स्वामी है। पुरुष अन्न अर्थात् प्राणियों के भोग्य पदार्थों के कारण बढ़ता है अर्थात् इस दृश्यमान जगत् रूप अवस्था को प्राप्त करता है। इतनी इसकी महिमा है अर्थात् भूत-भविष्यत् वर्तमान कालत्रयवर्ती यह समग्र जगत् इसकी महिमा मात्र है। सम्पूर्ण प्राणी अर्थात् यह समग्र जगत् इसका केवल पाद (चतुर्थांश) है। इसके तीन पाद अर्थात् तृतीयांश अविनाशी रुप से द्युलोक में अर्थात् स्वप्रकाश रुप में अवस्थित रहते हैं। संसार से ऊपर तीन पादों वाला यह विराट् पुरुष इस जगत् से ऊपर उठा हुआ है अर्थात् विश्व के गुण दोषों से रहित है। इसका एक पाद इस भौतिक जगत् के रुप में बार-बार होता है, अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय होते रहते हैं।

अग्रिम सूक्तों में सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उसी आदि पुरुष महाविष्णु से विराट् हुआ। उस विराट् का अधिपुरुष वही है। वह अधिपुरुष उत्पन्न होकर अत्यन्त दीप्त प्रकाश वाला हुआ। उसने उत्पन्न होने के पश्चात् भूमि तथा शरीरादि उत्पन्न किये। उस पुरुष के शरीर में ही देवताओं ने हविष्य की भावना करके यज्ञ का विस्तार किया। उस यज्ञ में बसंत ऋतु घृत, ग्रीष्म ऋतु ईंधन और शरद ऋतु हवि हुई। उस सर्वहुत यज्ञ से प्रशस्त पोषक पदार्थ घृत आदि उत्पन्न हुआ। उस प्रजापति पुरुष ने वायु में उड़ने वाले पक्षी ग्राम में रहने वाले, वन में रहने वाले आदि पशुओं को उत्पन्न किया। उस सर्वहुत यज्ञ पुरुष से ऋग्वेद तथा सामवेद उत्पन्न हुए। उसी से छन्द उत्पन्न हुए , उसी से यजुर्वेद प्रकट हुआ। उसी यज्ञ पुरुष द्वारा घोड़े उत्पन्न हुए। जिनके ऊपर-नीचे दोनों ओर दांत हैं, ऐसे गर्दभ आदि पशु भी उत्पन्न हुए। उसी से गौएं तथा भेड़-बकरियां भी उत्पन्न हुईं। सृष्टि के पूर्व प्रकट हुए उस यज्ञ साधनभूत पुरुष को कुशाओं द्वारा प्रोक्षण करके उसी पुरुष के द्वारा देवता, साध्यगण तथा ऋषिगण आदि ने उस मानस यज्ञ का यजन किया। इस पुरुष के मुख से ब्राह्मण हुए, बाहुओं से क्षत्रिय हुए। इस पुरुष के जो दोनों ऊरु हैं उनसे वैश्य और पैरों से शूद्र प्रकट हुए । उनके मन से चन्द्रमा हुए, चक्षु से सूर्य हुए, कानों से वायु तथा प्राण हुए और मुख से अग्निदेव हुए। उस यज्ञ पुरुष की नाभि से अन्तरिक्ष लोक उत्पन्न हुआ, शिर से स्वर्ग प्रकट हुआ, पैरों से पृथ्वी और कानों से दिशाएं उत्पन्न हुईं। इसी प्रकार उस पुरुष में ही ये सब लोक कल्पित हुए। जिस पुरुष पशु का यज्ञ में बंधन करके देवताओं ने यज्ञ किया, उस यज्ञ में सात छंद इसकी 7 परिधियां बनाई गई और इक्कीस (12 महीने, पांच ऋतुएं, एक आदित्य तथा तीन लोक) समिधाएं बनीं। देवगण यज्ञ के द्वारा उस यज्ञ पुरुष का यजन करते हैं। इन धर्मों का अस्तित्व प्रथम कल्पों में भी था। जिस स्वर्ग में पूर्व के साध्यगण देवगण रहते थे, उसी में उनके उपासक भी उपस्थित होते हैं।

रिक्त स्थान की पूर्ति —

1- पुरुष सूक्त के ऋषि तथा देवता---------- पुरुष है।

2- पुरुष विराट् परमेश्वर हजारों ------ वाला, हजारों -------वाला और हजारों-------वाला है।

3- विराट पुरुष तीन पाद अर्थात् तृतीयांश ---------रुप से द्युलोक में अर्थात् स्वप्रकाश रुप में अवस्थित रहते हैं।

4- यज्ञ में बसंत ऋतु घृत, ग्रीष्म ऋतु ईंधन और---------- हवि हुई।
5- उनके मन से ---हुए, चक्षु से सूर्य हुए, कानों से वायु तथा प्राण हुए आऔर मुख से अग्निदेव हुए।

4. प्रजापति सूक्त—

प्रजापति सूक्त ऋग्वेद के दशममण्डल का 121 वां सूक्त है। सूक्त के ऋषि हिरण्यगर्भ प्रजापति है। सी भी मान्यता है। कि इस सूक्त का ऋषि प्रजापति का पुत्र हिरण्यगर्भ है। सूक्त के देवता प्रजापति है। जिन्हें सम्पूर्ण सूक्त में क संज्ञा से व्यहृत किया गया है। प्रजापति का शाब्दिक अर्थ- प्रजाओं का स्वामी होता है। सृष्टिकर्ता देव के रुप में प्रजा का अर्थ सम्पूर्ण तथा पति का अर्थ सृष्टा होगा। अतः प्रजापति में सृष्टि तथा सृष्टा दोनों ही अन्तर्भूत हैं। अतएव सूक्त की अन्तिम ऋचा में भी प्रजापति नाम उद्धृत है।

हिरण्यगर्भ सूक्त में दश ऋचाएँ हैं। हिरण्यगर्भ शब्द सूक्त की प्रथम ऋचा का प्रथम पद है। आचार्य सायण 'हिरण्यगर्भ' पद का अर्थ प्रथत अर्थ किया है - 'सुवर्णमय अण्डे को गर्भ में धारण करने वाला प्रजापति' द्वितीय अर्थ किया है - 'जिसके उदर में स्वर्णमय अण्डा गर्भ के समान स्थित है। वह सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ कहा जाता है।' सूक्त की नौ ऋचाओं के चतुर्थ चरण में 'कस्मै देवाय हविषा विधेम' यह वाक्य है। अर्थात् सुख स्वरुप अथवा 'क' संज्ञक गुण सम्पन्न उस हिरण्यगर्भ का हम हवि द्वारा पूजन करते हैं। आचार्य सायण ने कस्मै शब्द के अनेक अर्थ इस प्रकार किए हैं - यथा- अनिति स्वरुप होने से प्रजापति के लिए, सृष्टि के लिए कामना से युत्तफ़, इच्छार्थ 'कम् धातु से 'ड' प्रत्यय के योग से निष्पन्न सुख अर्थ वाला। अतः सुखस्वरुप होने से प्रजापति 'क' है।

सूक्त के प्रत्येक मन्त्र के प्रथम तीन चरणों में उस देवता या ऋषि के गुणों तथा उसके द्वारा किया गये कार्यों का वर्णन किया गया है यथा- सृष्टि उत्पत्ति से पूर्व वह हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुआ, उत्पन्न होते ही सभी प्राणियों का एकमात्र स्वामी हुआ, उसने पृथिवी और चुलोक को धारण किया। जो हिरण्यगर्भ आत्माओं को बल का देने वाला है, अमृतत्व और गृत्युत्व छाया के समान जिसके वशवर्ती हैं जो अपनी महिमा से अकेले ही श्वास लेते हुए तथा पलक झपकाते हुए विश्व का स्वामी हो गया, जो इस दो पैरों वाले मनुष्य तथा चार पैरों वाले गाय, घोड़ा आदि पशुओं का स्वामी हुआ। जिसकी महिमा से ये पर्वत हैं, नदियों के साथ समुद्रों को, जिसका कहते हैं, ये प्रधान दिशायें (पूर्व आदि चार दिशायें) और बाहु के समान कोण दिशायें (आग्नेय आदि चार कोण दिशायें) जिसकी महिमा को कहते हैं, हिरण्यगर्भ प्रजापति ने ही द्युलोक को ऊपर उठाया हुआ है और पृथिवी को स्थिर किया है, जिसने स्वर्ग लोक को ऊपर थामा हुआ है और सूर्य को ऊपर अन्तरिक्ष में थामा है, जो आकाश में जलों को बनाने वाला है। संसार की रक्षा करने के हेतु से निर्माण करने के लिए स्थिर किये गये और प्रकाशमान होते हुये द्युलोक और पृथिवी लोक को वह अपने मन से देखता है, उस प्रजापति को आधार बना कर सूर्य उदय होकर प्रकाशित होता है। जब प्रजापति रुप गर्भ को धारण करती हुई तथा अग्नि को उत्पन्न करती हुई विशाल जलराशि विश्व में

आई, तब देवताओं का एक प्राणभूत वायु उत्पन्न हुआ। वह सृष्टि -उत्पत्ति रुप यज्ञ को उत्पन्न करने वाले और सृष्टि -उत्पत्ति में दक्ष प्रजापति को धारण करने वाले जलों को अपनी महिमा से देखता है, और वही सभी देवताओं के मध्य में उनका स्वामी अद्वितीय देव है। वह पृथिवी को उत्पन्न करने वाला है और सत्य नियमों को धारण करते हुये उसने द्युलोक को उत्पन्न किया, उसने आनन्द प्रदान करने वाले महान् जलों को उत्पन्न किया। उसके अतिरिक्त अन्य कोई भी इन विद्यमान सम्पूर्ण उत्पन्न हुए पदार्थों को और उन सारे भूतकालीन पदार्थों को व्याप्त करने वाला नहीं है। क संज्ञक गुण सम्पन्न उस हिरण्यगर्भ का हम हवि द्वारा पूजन करते हैं।

बहुविकल्पीय प्रश्न -

1- प्रजापति सूक्त ऋग्वेद के दशममण्डल का है -

(क) 128वां सूक्त (ख) 121वां सूक्त

(ग) 125 वां सूक्त (घ) 122वां सूक्त

2- सूक्त की अन्तिम ऋचा में नाम उद्धृत है -

(क) प्रजापति (ख) सूर्य

(ग) इन्द्र (घ) नारद

3- सृष्टि उत्पत्ति से पूर्व उत्पन्न हुआ -

(क) प्रजापति (ख) 121वां सूक्त

(ग) इन्द्र (घ) हिरण्यगर्भ

4- आचार्य सायण ने 'हिरण्यगर्भ' पद का अर्थ किया है -

(क) 'सुवर्णमय अण्डे को सिर पर धारण करने वाला

(ख) 'सुवर्णमय अण्डे को गर्भ में धारण करने वाला

(ग) ब्रह्म को धारण करने वाला

(घ) सोने के अण्डे को वायु में धारण करने वाला

5- किस को आधार बना कर सूर्य उदय होकर प्रकाशित होता है।

(क) प्रजापति (ख) सूर्य

(ग) इन्द्र (घ) हिरण्यगर्भ

5. नासदीय सूक्त —

ऋग्वेद के मण्डल 10 सूक्त 129 को नासदीय-सूक्त कहते हैं। नासदीय सूक्त के रचयिता ऋषि प्रजापति परमेष्ठी हैं। इस सूक्त के देवता भाववृत्त है। यह सूक्त मुख्य रुप से इस तथ्य पर आधारित है कि ब्रह्मांड की रचना कैसे हुई। इस सूक्त में सृष्टि की उत्पत्ति होने से पूर्व आकाश की अन्धकाररुप स्थिति का वर्णन है। परमात्मा के सम्मुख सृष्टि का उपादान कारण द्रव्यभाव से वर्तमान था, आत्माएं भी साधारण और मुत्तफ़ अवस्था की बहुत थीं आदि ऐसे अनेक विषयों का वर्णन इस सूक्त में है। नासदीय का अर्थ है कि सृष्टि की रचना से पूर्व जगत् की स्थिति शून्यमय नितान्त अभावरुप नहीं थी, कुछ अवश्य था परन्तु जो था वह अप्रकट व प्रकाशित था। सूक्त में

कुल 7 मन्त्र हैं। मन्त्रें में कहा गया है कि उस समय अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति से पहले प्रलय दशा में असत् अर्थात् अभावात्मक तत्त्व नहीं था। सत = भाव तत्त्व भी नहीं था, रजः = स्वर्गलोक मृत्युलोक और पाताल लोक नहीं थे, अन्तरिक्ष नहीं था और उससे परे जो कुछ है वह भी नहीं था, वह आवरण करने वाला तत्त्व कहाँ था और किसके संरक्षण में था। उस समय कठिनाई से प्रवेश करने योग्य गहरा क्या था, अर्थात् वे सब नहीं थे। उस प्रलय कालिक समय में मृत्यु नहीं थी और अमृत = मृत्यु का अभाव भी नहीं था। रात्री और दिन का ज्ञान भी नहीं था उस समय वह ब्रह्म तत्व ही केवल प्राण युत्तफ़, क्रिया से शून्य और माया के साथ जुड़ा हुआ एक रुप में विद्यमान था, उस माया सहित ब्रह्म से कुछ भी नहीं था और उस से परे भी कुछ नहीं था। सृष्टिके उत्पन्न होनेसे पहले अर्थात् प्रलय अवस्था में यह जगत् अन्धकार से आच्छादित था और यह जगत् तमस रुप मूल कारण में विद्यमान था, अज्ञात यह सम्पूर्ण जगत् जल रुप में था। अर्थात् उस समय कार्य और कारण दोंनों मिले हुए थे यह जगत् है वह व्यापक एवं निम्न स्तरीय अभाव रुप अज्ञान से आच्छादित था इसीलिए कारण के साथ कार्य एकरुप होकर यह जगत् ईश्वर के संकल्प और तप की महिमा से उत्पन्न हुआ। सृष्टि की उत्पत्ति होने के समय सब से पहले काम अर्थात् सृष्टि रचना करने की इच्छा शत्तिफ़ उत्पन्न हुयी, जो परमेश्वर के मन मे सबसे पहला बीज रुप कारण हुआ। भौतिक रुप से विद्यमान जगत् के बन्धन-कामरुप कारण को क्रान्तदर्शी ऋषियो ने अपने ज्ञान द्वारा भाव से विलक्षण अभाव मे खोज डाला। अविद्या, काम-संकल्प और सृष्टि बीज-कारण को सूर्य-किरणों के समान बहुत व्यापकता उनमें विद्यमान थी। इस प्रकार उत्पन्न जगत् में कुछ पदार्थ बीज रुप कर्म को धारण करने वाले जीव रुप में थे और कुछ तत्त्व आकाशादि महान रुप में प्रकृति रुप थे। कौन इस बात को वास्तविक रुप से जानता है और कौन इस लोक में सृष्टि के उत्पन्न होने के विवरण को बता सकता है कि यह विविध प्रकार की सृष्टि किस उपादान कारण से और किस निमित्त कारण से सब ओर से उत्पन्न हुयी। देवता भी इस विविध प्रकार की सृष्टि उत्पन्न होने से बाद के हैं अतः ये देवगण भी अपने से पहले की बात के विषय में नहीं बता सकते इसलिए कौन मनुष्य जानता है जिस कारण यह सारा संसार उत्पन्न हुआ यह विविध प्रकार की सृष्टि जिस प्रकार के उपादान और निमित्त कारण से उत्पन्न हुयी इस का मुख्या कारण है ईश्वर के द्वारा इसे धारण करना। इसके अतिरित्तफ़ अन्य कोई धारण नहीं कर सकता। इस सृष्टि का जो स्वामी ईश्वर है, अपने प्रकाश या आनंद स्वरुप में प्रतिष्ठित है। वह आनंद स्वरुप परमात्मा ही इस विषय को जानता है उस के अतिरित्तफ़ (इस सृष्टि उत्पत्ति तत्व को) कोई नहीं जानता है। इस सूक्त मे कहा गया है कि यथा- सत-असत, चेतन तत्त्व जो अपनी धारण शत्तिफ़ द्वारा उस अवस्था में भी स्थित था, काम-ईक्षण जिसके द्वारा विविध प्रकार की सृष्टि प्रकट हुई है। अनादि पदार्थ जो सर्वप्रथम उत्पन्न हुए एवं इसके पश्चात् भोत्तफ़ा जीव आए एवं वही चेतन तत्त्व इस सृष्टि को उत्पन्न करके स्वयं ही इसका धारक बन गया । नासदीय सूक्त सत् तथा असत् दोनों सत्ताओं का निषेध करता है। सत् से अभिप्राय है कि यह नामरुपात्मक जगत् अपने अस्तित्व में नहीं था अथवा अस्तित्व से युत्तफ़ अर्थात् प्रत्यक्ष रुप में वर्णनीय नहीं था और असत् से अभिप्राय है कि

यह नामरुपात्नक जगत् तो नहीं था, किन्तु यह नहीं कहा जा सकता के कुछ भी नहीं था, अगर कुछ नहीं था तो पुनः इस सृष्टि की रचना कैसे सम्भव हुई। कथन का भाव है कि मूलतत्त्व - परब्रह्म जिसका कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है, किन्तु वह उस समय भी विद्यमान था। असत् जगत् के मूलकारण का वाचक है और मूलकारण तत्त्व एकमात्र परब्रह्म है तथा सत् कार्यरुप जगत् का वाचक है।

सत्य/असत्य प्रश्न

1- ऋग्वेद के मण्डल 10 सूक्त 129 को नासदीय-सूक्त कहते हैं। सत्य/असत्य

2- इस सूक्त में सृष्टि की उत्पत्ति होने से पूर्व पृथ्वी की अन्धकाररुप स्थिति का वर्णन है। सत्य/असत्य

3- नासदीय का अर्थ है कि सृष्टि की रचना से पूर्व जगत् की स्थिति शून्यमय नितान्त अभावरुप नहीं थी, कुछ अवश्य था परन्तु जो था वह अप्रकट व प्रकाशित था। सत्य/असत्य

4- नासदीय सूक्त सत् तथा असत् दोनों सत्ताओं को स्वीकार करता है। सत्य/असत्य

5- असत् से अभिप्राय है कि यह नामरुपात्नक जगत् तो नहीं था। सत्य/असत्य

6. ऋत्त सूक्त—

ऋत्त सूक्त ऋग्वेद के दशम मण्डल का 190 वॉं सूक्त है। ऋग्वेदीय दशम मण्डल के लघु सूत्तफ़ों में ऋत सूक्त का विशिष्ट स्थान है। इस सूक्त में सृष्टि-प्रक्रिया को बड़ी सूक्ष्मता के साथ प्रस्तुत किया गया है आचार्य यास्क के अनुसार ऋत का अर्थ उदक, सत्य, यज्ञ एवं रेतत् है। सूक्त का ऋषि मधुच्छन्दर का पुत्र अघमर्षण है और इसी कारण सूक्त को अघमर्षण सूक्त भी कहा गया है। और सूक्त का देवता भाववृत्तम है। इस सूक्त के तीन मन्त्र हैं और तीनों मन्त्र अत्यन्त लोकप्रिय हैं। सूक्त में सृष्टि-उत्पत्ति का वर्णन सरल एवं स्पष्ट शब्दों में व्यत्तफ़ किया गया है।

सूक्त के प्रथम मन्त्र में कहा गया है कि तप से ऋत अर्थात् प्राकृतिक प्रवाह अर्थात् द्रव्य और सत्य अर्थात् नित्य तत्त्व सत्ता की उत्पत्ति हुई। तदनन्तर ऋत और सत्य से रात्रि उत्पन्न होती है। उस तप से यह जल से युक्त महान् समुद्र और सूक्ष्म जलों से व्याप्त आकाश प्रकट हुआ । अर्थात् उस से कणों के सागर में गति को धारण करने वाले मूल तत्त्व के विस्तार का उदय हुआ। मंत्र का भावार्थ है कि उस समय काल की शुन्य स्थिति थी, तप ने प्राकृतिक प्रवाह और सत्य स्वरुप प्रकृति को चारों ओर से प्रज्वलित किया। उसी से प्रलय रुपी रात्रि का अविर्भाव हुआ। अर्थात् प्रकृति के कणों में संक्षोभ हुआ। सूक्त के द्वितीय मन्त्र में जल से आपूरित समुद्र की उत्पत्ति का वर्णन है और इस अर्णय समुद्ध अर्थात् जलापूरित समुद्र से संवत्सर प्रकट होता है। संवत्सर के प्रकट होने के पश्चात् अहोरात्र की सृष्टि हुई अर्थात् दिन और रात्रि प्रकट हुए। संवत्सर रुप ईश्वर दिन तथा रात्रि को बनाने वाले हैं। निमेषादि से युक्त वह काल समस्त संसार के स्वामी हैं। सूक्त में रात्रि की उत्पत्ति दो बार बताई गई है- प्रथम गन्त्र में ऋत और सत्य से केवल रात्रि की उत्पत्ति का वर्णन है तथा द्वितीय मन्त्र में रात्रि के साथ-साथ दिन की उत्पत्ति का भी वर्णन प्राप्त होता है। तृतीय मंत्र में उल्लेख है कि उस कालरुप ईश्वर द्वारा सूर्य, चन्द्रमा द्युलोक, पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा स्वर्गलोक

अर्थात् प्रकाश्य तथा अप्रकाश्य समस्त पदार्थों को पूर्व काल के अनुसार बनाया। इस प्रकार ऋत सूक्त में सृष्टि प्रकिया का कम शब्दों में अतीव सारगर्भित वर्णन किया गया है।

7. कालसूक्त —

अथर्ववेद के उन्नीसवे अध्याय का 53वां तथा 54वां सूक्त काल सूक्त है। सूक्त के देवता काल हैं। इस सूक्त के ऋषि ने काल को परब्रह्म माना है। सूक्त के प्रथम मन्त्र में काल के स्वरुप का वर्णन करते हुए कहा है कि -

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः।
तमारोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चका भुवनानि विश्वा।।

वह काल रुपी अश्व शुक्ल, नील पीत, रत्तफ़, हरित, कपिश, चित्र वर्ण सात प्रकार की किरणों वाला सूर्य के समान प्रकाशमान है (अर्थात् सूर्य की भी यह सात किरणें सात घोड़े हैं), सहस्रं नेत्रें वाला है तथा कभी वृद्धावस्था को प्राप्त न होने वाला है। द्वितीय मन्त्र में ही काल को सात पहियों वाला अर्थात् तीन काल (भूत, भविष्य, वर्तमान) और चार दिशाओं (पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण) वाला कहा गया है। कहा है कि वह ही प्रथम दिव्य पदार्थ है जिससे सभी सत्ताएँ उत्पन्न होती हैं। अर्थात् सब भुवनों को प्रकट करता है। काल ने ही स्वयं आकाश और पृथिवी को उत्पन्न किया और परमेश्वर के नियम से भूत और भविष्य भी उस काल के ही भीतर है। यह जगत् उस काल से ही उत्पन्न होकर प्रतिष्ठित है।

बड़े ही रहस्यमय ढंग से काल की महिमा को सूर्य और पृथिवी के छिपने और छुपाने के उदाहरण द्वारा समझाया गया है कि काल के प्रभाव से ही परमात्मा प्रलय के पीछे सब पदार्थों को और नियमों को उत्पन्न करता है और प्रलय के समय में लय कर देता है जिस प्रकार सूर्य जब पृथिवी के सन्मुख आता है तो दिखाई देता है, किन्तु जब पृथिवी की आड़ में होता है तो अदृश्य हो जाता है अर्थात् छिप जाता है। संसार का उपकार करने के लिए अर्थात् जगत् सृष्टि के लिए वायु, पृथिवी, आकाश आदि परमाणु काल के कारण ही संयोग पाकर साकार होते हैं अर्थात् यही परमाणु सृष्टि उत्पत्ति के कारण हैं और इनका संयोग काल के द्वारा ही सम्भव है। काल सूक्त के 53वें सूक्त के चतुर्थ मन्त्र और 54वें सूक्त के तृतीय मन्त्र में काल को सृष्टि का पिता और पुत्र कहा है, जो पिता के समान नित्य वर्तमान काल होने से पहिले और पुत्र के समान पीछे भी विद्यमान रहता है। अर्थात् काल रुपी पुत्र द्वारा ही बीता हुआ भूतकाल और होने वाला भविष्यत्काल पहिले उत्पन्न किया। काल के ही प्रभाव से सब आगे- पीछे की सृष्टि और वेदों का प्रादुर्भाव हुआ। इस प्रकार काल की गति बड़ी ही कल्पनातीत है। अतः सूक्त में बड़े ही रहस्यमयढंग से काल की तुलना सूर्य से अर्थात् सूर्य की सात किरणों-रुपी घोड़े से की गई है। अन्ततः काल ही चराचर प्राणियों को उत्पन्न करने वाला है और भूत, भविष्य, वर्तमान तीन प्रकार के कालों का आधार है और पृथिवी, स्वर्गादि विविध लोकों को सूजन करने वाला है।

1.3.2 वैदिकवाङ्मय में सृष्टि की परिकल्पना

सृष्टि परिकल्पना को लेकर सर्वप्रथम यह विचार उत्पन्न होता है कि यह दृश्य जगत् कहाँ से आया? इसको लाने वाला कौन है? इसका निर्माणकर्ता कौन है? इत्यादि अनेक प्रश्न उत्पन्न होते हैं। इसका समाधान क्या है? यह सृष्टि-क्रम अनन्त है और इसकी जिज्ञासाएँ भी अनन्त है। इस विषय से सम्बन्धित जिज्ञासाएँ वेदों में अनेक स्थानों पर दृष्टिगोचर होती है। विश्वकर्मा सूक्त में जिज्ञासा व्यक्त करतक हुए कहा गया है कि वह कौन सा वन है तथा वन का कौन सा वृक्ष है जिसने आकाश तथा पृथ्वी को बनाया। इसी प्रकार ङ्ग्वेद के नासदीय सूक्त में सृष्टि की जिज्ञासा का वर्णन इस प्रकार आया है। यथा -

को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् कुत अजाता कुत इयं विसृष्टिः।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जने ना अथा को वेद यत आवभूव।।
इयं विसृष्टिर्यत आवभूव यदि वा दधे यदि वा न।
या अस्याध्यक्षः परमे व्योमन् त्सो अंग वेद यदि वा न वेद।।

अर्थात् यह विविध सृष्टि किससे उत्पन्न हई, किसलिए हुई, इस प्रकृत तत्त्व को वस्तुतः कौन जानता है? अथवा इसके विषय में कौन कह सकता है? यह सृष्टि किास उपादान कारण से हुई है? किस निमित्त कारण से हुई है? देवता भी इस सृष्टि के अनन्तर उत्पन्न हुए। यह सृष्टि किससे उत्पन्न हुइ उसे कौन जानता है? यह विविध प्रकार की सृष्टियां कहां से हुई? किसने सृष्टि की तथा किसने नहीं ? वेदों में सृष्टि की अवधारणा के निम्न सिद्धान्त प्राप्त होते है।

विराट पुरूष से सृष्टि की उत्पत्ति —

ऋग्वेद के पुरूष सूक्त में 16 मन्त्रों में जगत की सृष्टि कारण विराटपुरूष बताया गया है। सूत्तफ़ में वर्णित विराट् पुरुष ही इस ब्रह्माण्ड रूपी यज्ञ में स्वयं को अर्पित करके अनेक रूपों में प्रकट होता है और तदनन्तर सृष्टि की उत्पत्ति प्रारम्भ होती है। यह पुरुष विराट् परमेश्वर हजारों सिरों वाला, हजारों आँखों वाला और हजारों पैरों वाला है। वह भूमि के चारों और से व्याप्त करके दस अंगुल प्रमाण में ब्रह्माण्ड को पार करके स्थित है। अर्थात् वह परम पुरुष ब्रह्माण्ड को भीतर और बाहर से व्याप्त किए हुए है। यह सब कुछ दृश्यमान वर्तमान जगत् पुरुष ही है। जो कुछ हो चुका है, भूतकालीन और जो कुछ होगा अर्थात् भविष्यत् कालीन जगत् भी पुरूष ही है और वह पुरुष देवताओं का अथवा अमरत्व का स्वामी है। पुरुष अन्न अर्थात् प्राणियों के भोग्य पदार्थों के कारण बढ़ता है अर्थात् इस दृश्यमान जगत् रूप अवस्था को प्राप्त करता है।ष्इतनी इसकी महिमा है अर्थात् भूत-भविष्यत् वर्तमान कालत्रयवर्ती यह समग्र जगत् इसकी महिमा मात्र है। सम्पूर्ण प्राणी अर्थात् यह समग्र जगत् इसका केवल पाद (चतुर्थांश) है। इसके तीन पाद अर्थात् तृतीयांश अविनाशी रूप से द्युलोक में अर्थात् स्वप्रकाश रूप में अवस्थित रहते हैं। संसार से ऊपर तीन पादों वाला यह विराट् पुरुष इस जगत् से ऊपर उठा हुआ इस पुरुष के मुख से ब्राह्मण हुए, बाहुओं से क्षत्रिय हुए। इस पुरुष के जो दोनों उरु हैं उनसे वैश्य और पैरों से शूद्र प्रकट हुए। उनके मन से चन्द्रमा हुए, चक्षु से सूर्य हुए, कानों से वायु तथा प्राण हुए और मुख से अग्निदेव हुए। उस

यज्ञ पुरुष की नाभि से अन्तरिक्ष लोक उत्पन्न हुआ, शिर से स्वर्ग प्रकट हुआ, पैरों से पृथ्वी और कानों से दिशाएं उत्पन्न हुईं। इसी प्रकार उस पुरुष में ही ये सब लोक कल्पित हुए।

अतिलघूत्तरीय प्रश्न

1. एक कल्प में सन्धि सहित कितने मनु होते है ?
2. एक देव वर्ष कितने मानव वर्षों के बराबर होता है ?
3. एक महायुग में कितने युग सन्धि सहित होते है ?
4. कितने सौरवर्ष पूर्व ब्रह्मा का दिन प्रारम्भ हुआ ?
5. ग्रह, नक्षत्र, देव, दैत्य आदि चर-अचर की रचना करने में ब्रह्मा को कल्पारम्भ से कितने दिव्य वर्ष बीत गए?

विश्वकर्मा से सृष्ट्युत्पत्ति —

ऋग्वेद के विश्वकर्मा सूक्त में विश्वकर्मा को सृष्ट्युत्पत्ति का कारण बतायया बया है। विश्वकर्मा ने सर्वथम जल को उत्पन्न किया तत्पश्चात जल में इधर-उधर चलने वाली द्यावापृथवी की रचना की। द्यावापृथवी के प्राचीन तथा अन्त्य प्रदेशों को विश्वकर्मा ने सुदृढ़ किया। द्वितीय मन्त्र में कहा गया है कि, विश्वकर्मा बृहत् हैं तथा वो सब जानते हैं तथा सब कुछ देखते है। 82 वें सूक्त में विश्वकर्मा का सर्वोच्चशक्ति के रूप में वर्णन किया गया है। इस सूक्त के अनुसार विश्वकर्मा अपनी संकल्पात्मक बुद्धि के सामर्थ्य से समस्त जगत् को धारण करने वाला है। उस बुद्धिमान ने हिरण्यगर्भ को उत्पन्न किया और तदनन्तर पूर्व से उत्तर परिणाम को प्राप्त होते हुए द्यौ और पृथिवी को जन्म दिया। इन दोनों के जब पर्यन्त भाग, बाहर के सीमा भाग स्थि हो गए तो पुनः उस बुद्धिमान ने द्यो और पृथिवी का विस्तार किया।

हिरण्यगर्भ अथवा प्रजापति से से सृष्ट्युत्पत्ति—

सृष्टि उत्पत्ति से पूर्व वह हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुआ, उत्पन्न होते ही सभी प्राणियों का एकमात्र स्वामी हुआ, उसने पृथिवी और चुलोक को धारण किया। जो हिरण्यगर्भ आत्माओं को बल का देने वाला है, अमृतत्व और गृत्युत्व छाया के समान जिसके वशवर्ती हैं जो अपनी महिमा से अकेले ही श्वास लेते हुए तथा पलक झपकाते हुए विश्व का स्वामी हो गया, जो इस दो पैरों वाले मनुष्य तथा चार पैरों वाले गाय, घोड़ा आदि पशुओं का स्वामी हुआ। जिसकी महिमा से ये पर्वत हैं, नदियों के साथ समुद्रों को, जिसका कहते हैं, ये प्रधान दिशायें (पूर्व आदि चार दिशायें) और बाहु के समान कोण दिशायें (आग्नेय आदि चार कोण दिशायें) जिसकी महिमा को कहते हैं, हिरण्यगर्भ प्रजापति ने ही द्युलोक को ऊपर उठाया हुआ है और पृथिवी को स्थिर किया है, जिसने स्वर्ग लोक को ऊपर थामा हुआ है और सूर्य को ऊपर अन्तरिक्ष में थामा है, जो आकाश में जलों को बनाने वाला है। संसार की रक्षा करने के हेतु से निर्माण करने के लिए स्थिर किये गये और प्रकाशमान होते हुये द्युलोक और पृथिवी लोक को वह अपने मन से देऽता है, उस प्रजापति को आधार बना कर सूर्य उदय होकर प्रकाशित होता है। जब प्रजापति रूप गर्भ को धारण करती हुई

तथा अग्नि को उत्पन्न करती हुई विशाल जलराशि विश्व में आई, तब देवताओं का एक प्राणभूत वायु उत्पन्न हुआ।

ब्रह्मा से विश्व की उत्पत्ति—

वेदों के अनुसार ब्रह्म सृष्टि के रचयिता है। ऋग्वेद के सूक्तफ़ों में वर्णन किया गया है कि सृष्टि के आदि में न सत् था और असत् था, न आकाश था, न वायुमण्डल था और न दिन-रात थे। केवल ब्रह्म की ही सत्ता थी। ब्रह्म को किसी ने उत्पन्न नहीं किया, वह स्वयं उद्भूत (स्वयं उत्पन्न) है। ब्रह्मा अनादि है। ब्रह्मा में स्वयं संल्प शक्तिफ़ होती है। ब्रह्मा ने सृष्टि के सृजन का संकल्प किया। उनका यह स ल्प ही जाज्वल्यमान तप था, जो चतुर्दिक व्याप्त था। उस महाज्योति परमतत्त्व से ऋतं और सत्य की उत्पत्ति हुई। यथा-

ऋतं च सत्यं चाभिद्धात्तपसोध्यजायत।
ततो रा=यजायत ततः समुद्रो{र्णवः।।

अर्थात् उस जाज्वल्यमान परमतेज से ऋतं (ज्ञान) तथा सत्यं की उत्पत्ति हुई। उन परमाणुओं के स्थूल होने पर पदार्थ की रचना हुई। दिनरात्रि की रचना हुई तथा जल से परिपूर्ण समुद्र की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार सृष्टि प्रक्रिया का प्रारम्भ हुआ। ब्रह्म से सृष्टयुत्पत्ति की संकल्पना का वर्णन अन्य उपनिषदों, पुराणों तथा दर्शन शास्त्रदि में भी प्राप्त होता है।

लघूत्तरीय प्रश्न

1.ऋग्वेद के पुरूष सूक्त में जगत की सृष्टि कारण किसे बताया गया है।
2.विराट पुरूष के किन अंगों से ब्राह्मण तथा क्षत्रिय उत्पन्न हुए।
3-विश्वकर्मा ने सर्वथम किस को उत्पन्न किया
4-हिरण्यगर्भ आत्माओं किसे बल का देने वाला है।
5-ब्रह्मा का संकल्प कैसा था।

पौराणिक सृष्टि परिकल्पना —

भारतीय चिन्तन परम्परा में पुराणो का विशिष्ट स्थान है। प्रायः सभी पुराणों में सृष्टि की अवधारणा का वर्णन प्राप्त होता है। विष्णु पुराण में पराशर जी कहते हैं कि फ़ इस जगत् की उत्पत्ति का मूल कारण विष्णु हैं। उन्हीं में यह जगत् स्थित है। विष्णु ही इसकी स्थिति और लयकर्ता तथा विष्णु ही जगत् हैं। वह परब्रह्म, विकार-रहित, शुद्ध, अविनाशी परमात्मा, सर्वथा एकरस, भगवान वासुदेव हैं। वे सर्वत्र हैं एवं समस्त विश्व उन्हीं में विद्यमान है। ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव इन त्रिरूपों में विष्णु भगवान् जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करते हैं। एक रूप में प्रतीत होते हैं किन्तु अनेक रूपों वाले हैं। विकाररहित, शुद्धस्वरूप, नित्य, स्थूलसूक्ष्म, अव्यक्तफ़ (कारण), व्यक्तफ़ (कार्य) रूप हैं, किन्तु वास्तव में अत्यन्त निर्मल ज्ञानस्वरूप हैं।

पुराण के अनुसार जगत् के प्रलय के पूर्व कुछ भी नहीं था। सब कुछ करने वाली ब्रह्मसंज्ञक एक ज्योति नित्यमाया रहित, शान्तनिर्मल, नित्यनिर्मल आनन्दसागर अर्थात आनन्द से

पूर्णतः परिपूर्ण तथा नितान्त स्वच्छ थी जिसकी मोक्ष की इच्छा करने वाले पुरुष सदा इच्छा किया करते हैं। वह ज्योतिर्ब्रह्म सर्वज्ञ है, ज्ञान स्वरूप वाला है तथा वही सृष्टि का मूल कारण है।

ब्रह्मवैवर्त पुराण में भी वर्णित है कि विश्व का अधिष्ठाता विराट् स्वरूप वाला स्थूल से भी स्थूलतम को धारण करने वाला है। महत्तत्त्व आदि रूप वाला सृजन की ओर उन्मुऽ होता हुआ अपनी ही कला द्वारा हृदय में नित्य सूक्ष्म को एकचित करके सृजन करने वाला परब्रह्म है। वही प्रकृति- ब्रह्मा-विष्णु और शिव आदि समस्त को प्रकट करने वाला है। वह परमब्रह्म स्वेच्छामय सनातन भगवान् सबका बीज स्वरूप है- सबका आधार और परापर है। ब्रह्मवैवर्त पुराण के अध्ययन से भी यही प्रतीत होता है कि सृष्टि की पूर्व अवस्था में जब विश्व शुन्यता से पूर्व जीव-जन्तुओं से रहित-निर्जल-घोर-वायु रहित अन्धकार से आवृत्त था उस समय निर्धातु शस्यों से वर्जित - बिना तृणों वाला ही था।

विष्णुपुराण के सदृश ही गरूड़पुराण में भी जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय- इन तीनों कार्यों को भगवान विष्णु की पुरातनी क्रीड़ा कहा है। नर, नारायण, वासुदेव, निरंजन परमात्मा तथा परब्रह्म भी भगवान विष्णु ही है। इस जगत् जनिलयादि के कारण भी वे ही हैं। वही व्यत्तफ़ और अव्यत्तफ़ स्वरूप वाले हैं तथा पुरुष और काल रूप से अवस्थित है। व्यक्त विष्णु स्वरूप है तथा पुरूष तथा काल इन्हीं का अव्यक्त रूप है।

मत्स्यपुराण के अनुसार भी महाप्रलय व्यतीत होने के अनन्तर समस्त जगत् की स्थिति अन्धकार में घने तम से आच्छन्न थी, यथा- अन्धकार में सोए हुए चर वा अचर वस्तु की भाँति न तो पता लगने योग्य, न पहचानने योग्य और न ही कहीं कोई वस्तु जानने योग्य थी। निराकार, इन्द्रियों से परे, सूक्ष्म से अति सूक्ष्म, महान् से अत्यधिक महत्ता और अविनाशी अर्थात् अविनाश सत्ता वाले, जगत् में नारायण नाम से प्रसिद्ध, इस महाप्रलय के अनन्तर संसार में पुण्य कर्म के प्रभाव से घने तम का विनाश करते हुए चराचर जगत् के उत्पत्ति कारक स्वयं प्रादुर्भूत हुए।

नारदीय पुराण द्वारा भी समस्त जगत् उसी नारायण में व्याप्त है। नारायण ही परम-तत्त्व अथवा परमब्रह्म का स्वरूप है। नारायण अविनाशी अनन्त एवं सर्वव्यापी है। महाविष्णु, नारायण का अपर अभिधान है।

महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित श्री मद्भागवत पुराण वैष्णव पुराणों में एक अद्वितीय महनीयता से मण्डित है। श्री मद्भागवत पुराण स्पष्ट शब्दों में अद्वैत तत्त्व का प्रतिपादन करता है। इस पुराण के द्वितीय स्कन्ध के नवम अध्याय का अध्ययन करें तो ज्ञात होता है कि परमतत्त्व भगवान् ब्रह्मा को चतुःश्लोकी भागवत का उपदेश करते हुए कहते हैं कि सर्वत्र 'अहम्श् अर्थात् मैं ही हूँ। उस परमतत्त्व का कथन है कि फ् सृष्टि की पूर्वकालीन अवस्था में मेरे अतिरित्तफ़ सत् अर्थात् कार्यात्मक स्थूल तथा असत् अर्थात् कारणात्मक सूक्ष्म कुछ भी न था। स्थूल और सूक्ष्म को अज्ञान कहने वाला कारण भी नहीं था। इन सब सत-असत् का कारणभूत प्रधान भी मुझमें ही अन्तर्मुऽ होकर लीन था। जहाँ यह सृष्टि नहीं है अर्थात् जब प्रलय में सब लीन हो जाते है तो केवल मेरी सत्ता होती है तथा में समस्त चराचरों का सृजन करता हू।

बहुविकल्पीय प्रश्न -

1. विष्णु पुराण के अनुसार इस जगत् की उत्पत्ति का मूल कारण कौन हैं -

(क) ब्रह्मा (ख) विष्णु

(ग) सूर्य (घ) महेश

2. ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार विश्व का अधिष्ठाता कौन है।

(क) परब्रह्मा (ख) विष्णु

(ग) सूर्य (घ) महेश

3. गरूड़ पुराण में भी जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय- इन तीनों कार्यों को किसकी की पुरातनी क्रीड़ा कहा है।

(क) परब्रह्मा (ख) विष्णु

(ग) सूर्य (घ) महेश

4. मत्स्य पुराण के अनुसार चराचर जगत् के उत्पत्ति कारक स्वरूप कौन प्रादुर्भूत हुए-

(क) परब्रह्मा (ख) विष्णु

(ग) सूर्य (घ) नारायण

5. मद्भागवत पुराण स्पष्ट शब्दों में किस तत्त्व का प्रतिपादन करता है -

(क) द्वैत (ख) अद्वैत

(ग) विशिष्टाद्वैत (घ) महाद्वौत

दर्शनशास्त्र में सृष्टि की परिकल्पना —

भारत में श्दर्शनश् उस विद्या को कहा जाता है जिसके द्वारा तत्व का ज्ञान हो सके। श्तत्व दर्शनश् या श्दर्शनश् का अर्थ है तत्व का ज्ञान। मानव के दुखों की निवृति के लिए या तत्व ज्ञान कराने के लिए ही भारत में दर्शन का जन्म हुआ है भारतीयर्शन आस्तिक तथा नास्तिक दो भागों में विभक्त है। वेदोंकी सत्ता को स्वीकार करने वाले दर्शन आस्तिक दर्शन तथा वेदों के अस्तित्व को स्वीकार ना करने वाले दर्शन नास्तिक दर्शन कहलाते है। यह न्याय, वैशेशिक, साख्य, योग, मीमांसा तथा वेद ये छः दर्शन आस्तिक दर्शन की श्रेणी में, चार्वाक बौध तथा जैन नास्तिक दर्शन कहलाते है। प्रायः सभी दर्शनों में सृष्ट्युत्पत्ति के विषय में वर्णन किया गया है। यहां केवल आस्तिक दर्शन में सृष्ट्युित्पत्ति के विषय में विचार किया जा रहा है।

न्याय-वैशेषिक का जगत् विचार —

न्याय-वैशेषिक दर्शन विश्व की उत्पत्ति के सम्बन्ध में सृष्टिवाद के सिद्धान्त को अपनाता है। सांख्य को छोड़कर भारत के प्रत्येक दर्शन में सृष्टिवाद के सिद्धान्त को शिरोधार्य किया गया है। परन्तु वैशेषिक के सृष्टि सिद्धान्त की कुछ विशेषताएँ है, जो इसे अन्य सृष्टि सिद्धान्तों से अनूठा बना देती है। वैशेषिक के मतानुसार विश्व का निर्माण परमाणुओं से हुआ है। परमाणु चार प्रकार के हैं पृथ्वी के परमाणु, जल के परमाणु, वायु के परमाणु और अग्नि के परमाणु। चूँकि विश्व का निर्माण चार प्रकार के परमाणुओं से हुआ है। इसलिए वैशेषिक का सृष्टि-सम्बन्धी मत परमाणुवाद

का सिद्धान्त कहा जाता है। परमाणु शाश्वत होते हैं। इनकी न सृष्टि होती है और न नाश होता है। निर्माण का अर्थ है, विभिन्न अवयवों का संयुत्तफ़ हो जाना, विनाश का अर्थ है विभिन्न अवयवों का बिऽर जाना। परमाणु निरवयव है, इसलिए निर्माण और विनाश से परे है।

सांख्य दर्शन में जगत विचार —

सांख्य दर्शन की मान्यता है कि संसार की हर वास्तविक वस्तु का उद्गम पुरूष और प्रकृति से हुआ है। पुरूष में स्वयं आत्मा का भाव है जबकि प्रकृति पदार्थ और सृजनात्मक शत्तिफ़ की जननी है। विश्व की आत्मायें संख्यातीत है जिसमें चेतना तो है पर गुणों का अभाव है। वही प्रकृति मात्र तीन गुणो के समन्वय से बनी है। इस त्रिगुण सिद्धान्त के अनुसार सत्व, राजस्व तथा तमस की उत्पत्ति होती है। सांख्य दर्शन में सृष्ट्युत्पत्ति का सूत्र निम्नलिखित है-

सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान,
महतौहंकारौहंकारात् पंचतन्मात्रण्युभयमिनिन्द्रियं
तन्मात्रेभ्यः स्थूल भूतानि पुरूष इति पंचविंशतिर्गणः।।

प्रकृति मूल रूप से सत्व,रज तथा तमस की साम्यावस्था को कहते है। तीनो आवेश परस्पर एक दूसरे को निःशेष (दमनजतंसप्रम) कर रहे होते है। परमात्मा का तेज परमाणु (त्रित) की साम्यावस्था को भंग करता है और असाम्यावस्था आरंभ होती है। रचना-कार्य में यह प्रथम परिवर्तन है। इस अवस्था को महत् कहते है। यह प्रकृति का प्रथम परिणाम है। मन और बुध्दि इसी महत् से बनते हैं। इसमें परमाणु की तीन शत्तिफ़या बर्हिमुऽ होने से आस-पास के परमाणुओ को आकर्षित करने लगती है। अब परमाणु के समूह बनने लगते है। तीन प्रकार के समूह देखे जाते है। एक वे है जिनसे रजस् गुण शेष रह जाता है। यह तेजस अहंकार कहलाता है। इसे वर्तमान वैज्ञानिक भाषा में इलेक्टोन कहते है। दूसरा परमाणु-समूह वह है जिसमें सत्व गुण प्रधान होता है वह वैकारिक अहंकार कहलाता है। इसे वर्तमान वैज्ञानिक प्रोटोन कहते है। तीसरा परमाणु-समूह वह है जिसमें तमस् गुण प्रधान होता है इसे वर्तमान विज्ञान की भाषा में न्यूटोन कहते है। यह भूतादि अहंकार है। इन अहंकारों को वैदिक भाषा में आपः कहा जाता है। ये(अहंकार) प्रकृति का दूसरा परिणाम है। तदनन्तर इन अहंकारों से पाँच तन्मात्रएँ (रूप, रस) रस,गंध, स्पर्श और शब्द) पाँच महाभूत बनते है अर्थात् तीनों अहंकार जब एक समूह में आते है, तो वे परिमण्डल कहाते है। परिमण्डलों के समूह पाँच प्रकार के हैं। इनको महाभूत कहते हैं। इन पत्त्चमहाभूतों से समस्त चराचर सृष्टि का निर्माण होता है।

योग दर्शन में जगत् सम्बन्धी विचार —

योग-दर्शन में ईश्वर को विश्व का सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता और संहारकर्ता नहीं माना गया है। विश्व की सृष्टि प्रकृति के विकास के फलस्वरूपही हुई है। यद्यपि ईश्वर विश्व का सृष्टा नहीं है, फिर भी वह विश्व की सृष्टि में सहायक होता है। विश्व की सृष्टि पुरुष और प्रकृति के संयोजन से ही आरम्भ होती है। पुरुष और प्रकृति दोनों एक-दूसरे से भिन्न एवं विरूद्ध कोटी के हैं। दोनों को संयुत्तफ़ करने के लिए ही योग-दर्शन में ईश्वर की मीमांसा हुई है। अतः ईश्वर विश्व का निमित्त

कारण है, जबकि प्रकृति विश्व का उपादान कारण है। इस बात को विज्ञानभिक्षु और वाचस्पति मिश्र ने प्रमाणिकता दी है।

मीमांसा-दर्शन में जगत विचार—

उत्तरमीमांसा (वेदांत) अज्ञान से सृष्टि और आत्मज्ञान से सृष्टि का विनाश (मोक्ष) मानता है। अन्य दर्शनों में द्वयणुकादि क्रम से महाभूत पर्यन्त महासृष्टि और महाभूत से परमाणु पर्यन्त विनाश को महाप्रलय कहा है। अर्थात् संपूर्ण भाव कार्य द्वयणुकादि क्रम से उत्पन्न होते हैं और स्थूल से परमाणु पर्यंत जाकर नष्ट हो जाते हैं। पंच महाभूतों में पृथ्वी, जल, तेज और वायु के परमाणु नित्य हैं। आकाश स्वयं ही नित्य है, किंतु पूर्व मीमांसा के अनुसार दो प्रकार की सृष्टि और तीन प्रकार के प्रलय होते हैं, जिनमें महासृष्टि और ब्रह्माण्ड सृष्टि शब्द से दो सृष्टि कही गई है। ऐसे ही प्रलय, महाप्रलय और ब्रह्माण्ड प्रलय शब्द से तीन प्रलय कहे गए हैं। उनमें ब्रह्माण्ड सृष्टि और ब्रह्माण्ड प्रलय आजकल के समान ही माना गया है। उदाहरणार्थ किसी स्थल विशेष का भूकंप आदि से विनाश हो जाता है और कहीं पर नवीन वस्तु की सृष्टि हो जाती है। महासृष्टि में परमाणुओं से द्वयणुकादि द्वारा पंचमहाभूत पर्यन्त नवग्रहादिकों की सृष्टि होती है। मत्स्यपुराणादि में भी ब्रह्माण्ड प्रलय के अंतर्गत विद्यमान पदार्थों की स्थिति का विवरण प्राप्त होता है, किंतु पूर्व मीमांसा महासृष्टि और महाप्रलय को स्वीकार नहीं करता। उसके अनुसार सभी पदार्थों के नाश में कोई भी प्रमाण उपलब्ध नहीं होता। अतः मीमांसा दर्शन ब्रह्माण्ड सृष्टि और ब्रह्माण्ड प्रलय को ही मानता है।

वेदान्त दर्शन में जगत् विचार —

वेदान्तदर्शन के अनुसार सृष्ट्युत्पत्ति में सर्वप्रथम ईश्वर से पाँच सूक्ष्म भूतों का अविभाव होता है। माया से आकाश उत्पन्न होता है। आकाश से वायु उत्पन्न होती है, वायु से अग्नि उत्पन्न होती है तथा अग्नि से जल उत्पन्न होता है। इस प्रकार आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी से सूक्ष्म भूतों का निर्माण होता है। पाँच स्थूल भूतों का निर्माण, पाँच सूक्ष्म भूतों का पाँच प्रकार के संयोग होने के फलस्वरूप होता है। जिस सूक्ष्म भूत को स्थूल भूत में परिवर्तित होना है, उनका आधा भाग (1/2) तथा अन्य चार सूक्ष्म तत्त्वों के आठवें हिस्से (1/8) के संयोजन से पाँच स्थूल भूतों का निर्माण होता है। पाँच सूक्ष्म भूतों से पाँच स्थूल भूतों का अविर्भाव का क्रम इस प्रकार होता है

स्थूल आकाश = 1/2- आकाश , 1/8- वायु, 1/8- अग्नि ,1/8- जल, 1/8- पृथ्वी।
स्थूल वायु= 1/2 वायु,1/8 आकाश ,1/8 अग्नि ,1/8 जल ,1/8 पृथ्वी।
स्थूल अग्नि = 1/2 अग्नि ,1/8 आकाश ,1/8 वायु , 1/8 जल , 1/8 पृथ्वी।
स्थूल जल = 1/2 जल ,1/8 आकाश ,1/8 वायु ,1/8 अग्नि , 1/8 पृथ्वी।
स्थूल पृथ्वी = 1/2 पृथ्वी ,1/8 अकाश ,1/8 वायु ,1/8 अग्नि ,1/8 जल।

इस क्रिया को पंचीकरण कहा जाता है। प्रलय का क्रम सृष्टि के क्रम से प्रतिकूल है। प्रलय के समय पृथ्वी का जल में, जल का अग्नि में, अग्नि का वायु में, वायु का आकाश में तथा आकाश का ईश्वर की माया में लय हो जाना है।

रिक्त स्थान की पूर्ति—

1- न्याय-वैशेषिक दर्शन विश्व की उत्पत्ति के सम्बन्ध में ----------के सिद्धान्त को अपनाता है।

2- सांख्य दर्शन की मान्यता है कि संसार की हर वास्तविक वस्तु का उद्गम ---------- हुआ है।

3- योग-दर्शन में --------- को विश्व का सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता और संहारकर्ता नहीं माना गया है।

4. मीमांसा ---------- से सृष्टि और------- से सृष्टि का विनाश (मोक्ष) मानता है।

5. वेदान्तदर्शन के अनुसार सृष्ट्युत्पत्ति में सर्वप्रथम ईश्वर से ------सूक्ष्म भूतों का अविभाव होता है।

1.4 सारांश

भारतीय चिन्तन परम्परा में वेद सभी विद्याओं के मूलाधार है। वैदिक वाड्मय में सृष्ट्युत्पत्ति के विषय में सर्वप्रथम वर्णन ऋग्वेद में आया है। ऋग्वेद के अदिति सूत्त, विश्वकर्मा सूक्त, पुरुष सूक्त, प्रजापति सूक्त, नासदीस सूक्त, ऋत्त सूक्त तथा अथर्ववेद के कालसूक्त आदि सूक्तों में प्राप्त होता है। ऋग्वेद के अदिति सूक्त में सर्वप्रथम सृष्ट्युिक्पत्ति का वर्णन आया है। तदनन्तर विश्वकर्मा स्वयमेव अग्नि में प्रविष्ट हो गया। विश्वकर्मा ने सर्वथम जल को उत्पन्न किया तत्पश्चात जल में इधर-उधर चलने वाली द्यावापृथवी की रचना की। पुरुष सूक्त में वर्णन आया है कि वर्णित विराट् पुरुष ही इस ब्रह्माण्ड रुपी यज्ञ में स्वयं को अर्पित करके अनेक रुपों में प्रकट होता है और तदनन्तर सृष्टि की उत्पत्ति प्रारम्भ होती है। पुरुष के भव्य स्वरुप का वर्णन सूक्त के प्रारम्भिक चार मन्त्रें में किया गया है। सूक्तों में सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उसी आदि पुरुष महाविष्णु से विराट् हुआ। उस विराट् का अधिपुरुष वही है। प्रजापति सूक्त सूक्त का ऋषि प्रजापति का पुत्र हिरण्यगर्भ है जिसका अर्थ है 'सुवर्णमय अण्डे को गर्भ में धारण करने वाला प्रजापति' हिरण्यगर्भ सूक्त में दश ऋचाएँ हैं। सृष्टि उत्पत्ति से पूर्व वह हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुआ, उत्पन्न होते ही सभी प्राणियों का एकमात्र स्वामी हुआ, उसने पृथिवी और द्युलोक को धारण किया। नासदीय सूक्त के अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति होने से पूर्व आकाश की अन्धकाररूप स्थिति का वर्णन है। ऋत सूक्त के अनुसार तप से ऋत अर्थात् प्राकृतिक प्रवाह अर्थात् द्रव्य और सत्य अर्थात् नित्य तत्त्व सत्ता की उत्पत्ति हुई। तदनन्तर ऋत और सत्य से रात्रि उत्पन्न होती है। तप से यह जल से युक्त महान् समुद्र और सूक्ष्म जलों से व्याप्त आकाश प्रकट हुआ। जलापूरित समुद्र से संवत्सर प्रकट होता है। संवत्सर के प्रकट होने के पश्चात् अहोरात्र की सृष्टि हुई अर्थात् दिन और रात्रि प्रकट हुए। उस कालरुप ईश्वर द्वारा सूर्य, चन्द्रमा द्युलोक, पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा स्वर्गलोक अर्थात् प्रकाश्य तथा अप्रकाश्य समस्त पदार्थों को पूर्व काल के अनुसार बनाया। इस प्रकार ऋत सूक्त में सृष्टि प्रकिया का कम शब्दों में अतीव सारगर्भित वर्णन किया गया है।

अथर्ववेद के काल सूक्त में भी सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है। सूक्त के प्रथम मन्त्र में काल के स्वरूप का वर्णन करते हैं जो बड़े ही रहस्यमय ढंग से काल की तुलना सूर्य से अर्थात् सूर्य की सात किरणों-रुपी घोड़ों से की गई है। सूक्त के अनुसार अन्ततः काल ही चराचर प्राणियों को उत्पन्न करने वाला है और भूत, भविष्य, वर्तमान तीन प्रकार के कालों का आधार है और पृथिवी, स्वर्गादि विविध लोकों को सृजन करने वाला है।

किसी वस्तु की उत्पत्ति अथवा निर्माण सृष्टि कहलाती है। चराचर जगत् का निर्माण कार्य कब प्रारम्भ हुआ यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय है। ज्योतिषशास्त्र के सिद्धान्त ग्रन्थों में कहा गया है कि सृष्टि की उत्पत्ति ब्रह्मा का दिन प्रारम्भ होने पर हुई। सूर्यसिद्धान्त के सृष्टि के रचयिता परब्रह्म हैं तथा ग्रह, नक्षत्र, देव, दैत्य आदि चर-अचर की रचना करने में ब्रह्मा को कल्पारम्भ से 47400 दिव्य वर्ष बीत गए। वेदों में सृष्टि की अवधारणा के चार सिद्धान्त प्राप्त होते हैं - विराट पुरूष से सृष्टि की उत्पत्ति, विश्वकर्मा से सृष्ट्युत्पत्ति, हिरण्यगर्भ अथवा प्रजापति से से सृष्ट्युत्पत्ति तथा ब्रह्मा से विश्व की उत्पत्ति। पुराणों में भी सृष्टि की अवधारणा का वर्णन प्राप्त होता है। विष्णु पुराण के अनुसार इस जगत् की उत्पत्ति का मूल कारण विष्णु हैं। पद्म पुराण के अनुसार सब कुछ करने वाली ब्रह्मसंज्ञक एक ज्योति है। ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार विश्व का अधिष्ठाता विराट् स्वरूप वाला स्थूल से भी स्थूलतम को धारण करने वाला परमब्रह्म स्वेच्छामय सनातन भगवान् सबका बीज स्वरूप है गरूड़ पुराण में जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय- इन तीनों कार्यों को भगवान विष्णु की पुरातनी क्रीड़ा कहा है। मत्स्य पुराण के अनुसार जगत् के स्रष्टा नारायण है। नारदीय पुराण के अनुसार समस्त जगत् नारायण में व्याप्त है। दर्शन शास्त्र में भी सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन प्रायः सभी आस्तिक तथा नास्तिक दर्शनशास्त्र में किया गया है। न्याय-वैशेषिक दर्शन विश्व की उत्पत्ति के सम्बन्ध में सृष्टिवाद के सिद्धान्त को अपनाता है। असके अनुसार विश्व का निर्माण चार प्रकार के परमाणुओं से हुआ है। सांख्य दर्शन की मान्यता है कि संसार की हर वास्तविक वस्तु का उद्गम पुरूष और प्रकृति से हुआ है। वेदान्तदर्शन के अनुसार सृष्ट्युत्पत्ति में सर्वप्रथम ईश्वर से पाँच सूक्ष्म भूतों का अविभाव होता है। अत: इस प्रकार इस इकाई में आपने अदिति सूत्त, विश्वकर्मा सूक्त, पुरुष सूक्त, प्रजापति सूक्त, नासदीस सूक्त, ऋत्त सूक्त तथा अथर्ववेद के कालसूक्त आदि सूक्तों में वर्णित सृष्ट्युत्पत्ति के विषय में एवं वेदों पुराणों तथा दर्शनशास्त्र में सृष्टि की परिकल्पना के विषय में विस्तार से अध्ययन किया।

1.5 पारिभाषिक शब्दावली

लयकर्ता - अंत करने वाला

अविनाशी - जिसका कभी अंत ना हो

अव्यत्तफ़ - वाणी के द्वारा जिसका वर्णन न किया जा सके।

निर्जल - जल से रहित

निरंजन - दुर्गुण एवं दोष से रहित, निगुर्ण ब्रह्म

सृष्टिवाद - सृष्टि से सम्बन्धित सिद्धान्त

अविनाशी - जिसका कभी अन्त ना हो

हविष्य - यज्ञ के समय अग्नि में डाले जाने वाले पदार्थों का मिश्रण।

संहारकर्त्ता - नाश करने वाला

गर्भाण्ड - गर्भ में स्थित अण्डा

परिधियां - सीमाएं

समिधाएं - यज्ञ के लिए जलाई जाने वाली लकड़ी

द्युलोक - आकाश

अहोरात्र - दिन तथा रात्रि

1.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न—1

अति लघूत्तरीय प्रश्न -

1-72वाँ

2-अदिति को

3-अण्ड

4-आठ

5-अग्नि

लघूत्तरीय प्रश्न—

1-विश्वकर्मा ने द्विविध शरीर धारण किया था। एक शरीर को अग्नि में याज्ञिक हवि के रूप में समर्पित किया और दूसरे शरीर से जगत् की संरचना की।

2-विश्वकर्मा ने सर्वथम जल को उत्पन्न किया

3-विश्वकर्मा सूक्त ऋग्वेद के दशम मण्डल का 81वां तथा 82 वां सूक्त है।

4-ग्रन्थों में विश्वकर्मा का तादात्म्य प्रजापति के साथ स्थापित किया गया है।

5-विश्वकर्मा अपनी भुजाओं तथा पदों के प्रेरण से आकाश तथा पृथ्वी को उत्पन्न करते हैं।

रिक्त स्थान की पूर्ति —

1-नारायण

2-सिरों, आँखों, पैरों

3-अविनाशी

4-शरद ऋतु

5-चन्द्रमा

बहुविकल्पीय प्रश्न —

1- (ख)

2. (क)

3. (घ)

4. (ख)

5. (क)

सत्य/असत्य प्रश्न

1-सत्य

2-असत्य

3-सत्य

4-असत्य

5-सत्य

बोध प्रश्न—2

अतिलघूत्तरीय प्रश्न—

1- 14

2- 2- 360

3- 3- चार

4- 4- 4320000000

5- 5- 47400

लघूत्तरीय प्रश्न —

1. ट्टग्वेद के पुरूष सूक्त में जगत की सृष्टि कारण विराटपुरूष बताया गया है।
2. विराट पुरूष के मुख से ब्राह्मण तथा भुजाओं सं क्षत्रिय उत्पन्न हुए।
3. विश्वकर्मा ने सर्वथम जल को उत्पन्न किया
4. हिरण्यगर्भ आत्माओं को बल का देने वाला है,
5. ब्रह्मा का संकल्प जाज्वल्यमान तप था, जो चतुर्दिक व्याप्त था।

बहुविकल्पीय प्रश्न —

1- (ख) 2. (क) 3. (ख) 4. (घ) 5. (ख)

रिक्त स्थान की पूर्ति —

1-सृष्टिवाद

2-पुरूष और प्रकृति से

3-ईश्वर

4-अज्ञानए आत्मज्ञान

5-पाँच

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1-ऋग्वेद, सयणाचार्यकृत-भाष्यसंवलिता, अनुवादक पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 2016

2-अथर्ववेद, सयणाचार्यकृत-भाष्यसंवलिता, अनुवादक पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 2016

3- शतपथ ब्राह्मण, सायणाचार्यकृत-भाष्य, नाग प्रकाशन ज्वाहरनगर दिल्ली, 1990

4- ब्रह्माण्ड और सौर परिवार, प्रो- देवी प्रसाद त्रिपाठी, परिक्रमा प्रकाशन दिल्ली, 2006

5- सृष्ट्युत्पत्ति की वैदिक परिकल्पना, विष्णुकान्त शर्मा, प्रतिभा प्रकाशन दिल्ली, 2008

6. सूर्यसिद्धान्तः -आर्षग्रन्थः, टीकाकार कपिलेश्वरशास्त्री,चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी-2004

7- भारतीय दर्शन की रूपरेखा - प्रो- हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, 1983

8-भारतीय दर्शन, डा- राधाकृष्णन्, राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली -6, 1986

1.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1-सृष्टि उत्पत्ति - रामनाथ गुप्ता, मीरा प्रकाशन, 2019

2-वेद-विज्ञान चिन्तन, प्रो- बृजबिहारी चौबे, कात्यायन वैदिक साहित्य प्रकाशन, होशियारपुर,

3-वेद व विज्ञान, स्वामीप्रत्यगात्मानन्दस्वामी,अनुवादिका डा- उर्मिला शर्मा, विश्वविद्यालय प्रकाशन

4-सृष्टि उत्पत्ति - रामनाथ गुप्ता, मीरा प्रकाशन, 2019

5-वेद-विज्ञानचिन्तन, प्रो- बृजबिहारी चौबे, कात्यायन वैदिक साहित्य प्रकाशन, होशियारपुर, 2005

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1-हिरण्यगर्भ सूक्त के अनुसार सृष्टि की अवधारणा का वर्णन विस्तार से कीजिए।

2-विश्वकर्मा सूक्त सृष्टि की अवधारणा की व्याख्या कीजिए।

3-पुरुष सूक्त में वर्णित सृष्टि की अवधारणा का विस्तृत वर्णन कीजिए।

4-नासदीय सूक्त के अनुसार सृष्टि की अवधारणा को विस्तार पूर्वक स्पष्ट कीजिए।

5-प्रजापति सूक्त के अनुसार सृष्टि की अवधारणा की व्याख्या कीजिए।

6-सूर्यसिद्धान्त के अनुसार सृष्ट्युत्पत्ति के काल पर निबंध लिखिए।

7-वेदों में वर्णित सृष्टि परिकल्पना का विस्तार से वर्णन कीजिए।

8-पुराणों के अनुसार सृष्टि की परिकल्पना की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

9-सांख्य तथा योग दर्शन के अनुसार सृष्टि की अवधारणा सविस्तार स्पष्ट कीजिए।

10-वेदान्त दर्शन में वर्णित सृष्टि की परिकल्पना का वर्णन कीजिए।

इकाई-2 वैदिक वाङ्मय में ब्रह्माण्ड की अवधारणा

इकाई की रुपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 ब्रह्माण्ड का स्वरूप एवं अवधारणा
2.4 वैदिक वाङ्मय में ब्रह्माण्डोत्पत्ति के सिद्धान्त
2.5 सारांश
2.6 पारिभाषिक शब्दावली
2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रिय शिक्षार्थियों !

वैदिक अध्ययन से सम्बन्धित चतुर्थ खण्ड की यह द्वितीय इकाई है। इससे पूर्व इकाई में आपने सृष्टि की वैदिक परिकल्पना एवं अवधारणा को जाना। प्रस्तुत इकाई में हम वैदिक वाङ्मय में ब्रह्माण्ड की अवधारणा को जानेंगे। ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति कब और कैसे हुई, इसका उत्तर स्पष्ट शब्दों में कोई नहीं दे सकता। जिज्ञासुओं ने इस प्रश्न का उत्तर खोजने के लिए कई प्रयत्न किए हैं। प्राचीन काल से लेकर वर्तमान काल पर्यन्त इस जिज्ञासा की पूर्ति हेतु मनुष्य आकाश में स्थित खगोलीय पिण्डों को निहारता आया है। प्रस्तुतप्रमाणों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि हमारे पूर्वज भी ब्रह्मांड के प्रति उतने ही जिज्ञासु थे, जितने आज हम हैं। सभ्यता के प्रारंभ से ही मनुष्य दिन में आँखों को चकाचौंध कर देने वाले सूर्य और रात में निरभ्र आकाश को अपनी मुलायम चांदनी से सुशोभित कर देने वाले चन्द्रमा तथा उसके साथ-साथ आकाश में स्थित असंख्य टिमटिमाते तारों एवं अन्य खगोलीय घटनाओं को देखकर रोमांचित होता रहा है। प्राचीन काल से ही मनुष्य ने सूर्योदय से सूर्यास्त तक, चन्द्रमा की घटती-बढ़ती कलाओं और ऋतु परिवर्तन जैसी प्राकृतिक घटनाओं के माध्यम से समय की गणना करने का प्रयास किया। इन आकाशीय घटनाक्रमों ने मनुष्य के सामाजिक और धार्मिक जीवन को भी पर्याप्त मात्रा में प्रभावित किया। भारतीय वैदिक विज्ञान में ब्रह्मांड की व्याख्या के तथ्य इस धारणा पर आधारित थे कि सारी भौतिक और प्राकृतिक क्रियाएं पंचमहाभूतों पर ही निर्भर हैं। इसी सिद्धान्त की पुष्टि हमें सर्वप्रथम तैत्तिरीयोपनिषद् में प्राप्त होती है। तैत्तिरीयोपनिषद् में पञ्चमहाभूतों की क्रमशः उत्पत्ति को वर्णित किया गया है। भारतीय ग्रन्थों में ब्रह्माण्ड की महत्ता सर्वाधिक शक्तिसम्पन्न एवं सबसे विस्तृत विषय के रूप में बताई गई है। ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के विषय में वेदों से लेकर पुराणों तक, सभी ग्रन्थों में इसका वर्णन हमें मिलता है। ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति ही सृष्टि की उत्पत्ति का बीज है, इस प्रकार ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति को ही सृष्टि की उत्पत्ति भी कहा जाता है। ब्रह्माण्डोत्पत्ति के सिद्धान्त सर्वप्रथम वैदिक साहित्य में हमें प्राप्त होते हैं, ऋग्वेद में नासदीयसूक्त, पुरुषसूक्त आदि ब्रह्माण्डोत्पत्ति के महत्वपूर्ण सूक्त हैं, जिनमें सृष्टिवर्णन विस्तार से किया गया है। आधुनिक विज्ञान भी इन्हीं सिद्धान्तों को आधार मानकर लगातार अनुसंधान कर रहा है। हमें यह जानना आवश्यक है कि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति कब और कैसे हुई ? क्या इसका कोई प्रारम्भ भी था ? इसकी उत्पत्ति से पूर्व क्या था? क्या इसका कोई जन्मदाता भी है ? यदि ब्रह्माण्ड का कोई जन्मदाता है तो पहले ब्रह्माण्ड का जन्म हुआ या उसके जन्मदाता का? यदि पहले ब्रह्माण्ड का जन्म हुआ तो उसके जन्म से पहले उसका जन्मदाता कहाँ से आया ? इस विराट ब्रह्माण्ड की मूल संरचना कैसी है ? ब्रह्माण्ड का भावी परिदृश्य (भविष्य) क्या होगा ? ब्रह्माण्ड के सदस्य कौन कौन हैं ? - ये कुछ ऐसे मूलभूत प्रश्न हैं जो आज भी उतने ही प्रासंगिक है जितने सदियों पूर्व थे। ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति से सम्बंधित इन मूलभूत प्रश्नों के उत्तर धर्माचर्यों, दार्शनिकों, और वैज्ञानिकों ने सप्रमाण दिए है। जिसका विस्तृत अध्ययन आप प्रस्तुत पाठ में करेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप—

- ब्रह्माण्ड के स्वरूप का वर्णन करने में समर्थ होंगे।
- ब्रह्माण्डोत्पत्ति के सिद्धान्त की व्याख्या कर सकेंगे।
- वेदों में ब्रह्माण्डोत्पत्ति के सिद्धान्तों कि अवधारणा का ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- ब्रह्माण्ड की परिभाषा व अर्थ को जान सकेंगे।
- ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के विषयक सिद्धान्त को समझ सकेंगे।

2.3 ब्रह्माण्ड का स्वरूप एवं अवधारणा

ब्रह्माण्ड शब्द संस्कृत भाषा का है और इसका अर्थ होता है "ब्रह्मा का अंश" या "ब्रह्मा का विस्तार". जिससे ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, संरचना, विस्तार और नाश को समझने में मदद मिलती है। इस शब्द का उपयोग समस्त जीवत्त्व के संगठन और उसके साथ सम्बंधित विषयों के लिए किया जाता है। यह शब्द ब्रह्मा और अंड (जो अविकारी और अनन्त है) के समन्वय को दर्शाता है। इसी प्रकार ब्रह्माण्ड शब्द लैटिन शब्द "यूनिवर्सम" से लिया गया है, जिसका उपयोग रोमन राजनेता सिसेरो और बाद के रोमन लेखकों ने दुनिया और ब्रह्माण्ड को संदर्भित करने के लिए किया था। पाश्चात्य जगत में ब्रह्माण्ड को यूनीवर्स (Universe) कहा जाता है। आधुनिक विद्वानों के अनुसार –"ब्रह्माण्ड समय और अन्तरिक्ष की अन्तर्वस्तु को कहते हैं। ब्रह्माण्ड में सभी ग्रह, तारे, मन्दाकिनी, खगोलीय पिण्ड, अपरमाणविक कण, सम्पूर्ण पदार्थ और ऊर्जा सम्मिलित है। अवलोकन योग्य ब्रह्माण्ड का व्यास वर्तमान में लगभग 91.1 अरब प्रकाश वर्ष है, पूरे ब्रह्माण्ड का व्यास अभी अज्ञात है, और हो सकता है कि यह अनन्त हो" वाचस्पत्यम् में ब्रह्माण्ड की परिभाषा को इस प्रकार से कहा गया है– '**तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम्। तस्मिन् यज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः**' अर्थात् वह अण्ड जिसमें सहस्रों ज्योतिपुञ्ज विद्यमान हैं, इस अण्ड में सृष्टियज्ञ करने वाले सभी लोकों के पितामह ब्रह्मा हैं। वे ही सभी प्रकार की सृष्टियां रचते हैं। अतः जिस अण्ड में ब्रह्मा समस्त प्रकार की सृष्टियों का सृजन करते हैं, उस अण्ड को ब्रह्माण्ड कहते हैं।

"यस्मिन् भाण्डे ग्रहनक्षत्रताराऽकाशगङ्गोल्का-धूमकेतुदैत्यमानवदेवादयः समस्ताः जीवादयो भूर्भुवादिचतुर्दशलोकाश्च समन्विताः सन्ति तदेव ब्रह्माण्डम्" अर्थात् जहाँ ग्रह, नक्षत्र, तारे, आकाशगङ्गा, उल्काएं, धूमकेतु, दैत्य, मानव, देवता आदि समस्त जीवादियों की सृष्टियां तथा भूर्भुवादि चतुर्दशलोक (भू-भुव-स्व-मह-जन-तप-सत्य ये सात ऊर्ध्वलोक, अतल-वितल-सुतल-तलातल-रसातल-महातल-पाताल ये सात अधोलोक) विद्यमान हैं, वह ब्रह्माण्ड कहलाता है। तैत्तिरीयोपनिषद् की परिभाषा से भी यही स्पष्ट होता है। उसके अनुसार आकाश सर्वव्यापक तथा सर्वशक्तिमान् सत्ता है, आकाश के भीतर वायुतत्त्व उत्पन्न होता है, वायु के

अन्दर अग्नितत्त्व, अग्नि के भीतर जलतत्त्व तथा जल के अन्दर पृथ्वीतत्त्व उत्पन्न होता है। इन पांच तत्त्वों कों दशाङ्गुलन्याय द्वारा समझते हैं, तो पृथ्वी से दश गुणा अधिक जल है, जल से दशगुणा अधिक अग्नि, अग्निसे दशगुणा अधिक वायु तथा वायु से दशगुणा अधिक आकाश की सत्ता है। ये पांचों तत्त्व क्रमशः इसी ब्रह्माण्ड के अंग हैं और इन्हीं की क्रमशः उत्पत्ति भारतीय ज्ञान-विज्ञान वाङ्मय में सृष्टि कहलाती है। प्राचीन-कालीन मानव को ब्रह्माण्ड का ज्ञान था। इस तथ्य के साक्षी के रूप में सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय को देखा जा सकता है। वैदिक वाङ्मय के अन्तर्गत, ब्रह्माण्डोत्पत्ति, ग्रह, नक्षत्र, तारे, सूर्य, चन्द्र और पृथ्वी का व्यापक उल्लेख प्राप्त होता है। ब्रह्माण्ड को गगन, व्योम, नभ, आकाश और अन्तरिक्ष आदि उपनामों से वर्णित किया है। ब्रह्माण्ड के सभी पिण्डों पर गुरुत्वाकर्षण-बल का प्रभाव पड़ता है तथा इसी गुरुत्वाकर्षण-बल के कारण ब्रह्माण्ड का प्रत्येक पिण्ड आश्चर्यजनक रूप से अपने स्थान पर स्थित है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने विश्व की कल्पना वलयाकार आकृति में की है परन्तु यह कल्पना भी नवीन नहीं है। अन्य प्राचीन ग्रन्थों पर दृष्टिपात करने पर पता चलता है कि शैव ग्रन्थों में ब्रह्माण्ड को लोक-अलोक तथा पुराणों में इहलोक तथा परलोक का सम्मिलित स्वरूप माना गया है। सूर्य सिद्धान्तकार ने ब्रह्माण्ड का स्वरूप इस प्रकार बताया है-

ब्रह्माण्डमेतत् सुशिरं तत्रेदं भूभुर्वादिकम्। कटाहद्वितयस्यैव सम्पुटं गोलकाकृतिः।।
ब्रह्माण्डमध्ये परिधिर्व्योमकक्षाभिधीयते। तन्मध्ये भ्रमणं भानामधोऽधः क्रमशस्तथा।।

अर्थात् दो समान कटाहों को परस्पर मुख से मिला देने से जिस आकृति का निर्माण होतो है। वही आकृति ब्रह्माण्ड की है। उन दोनों कटाह के मध्य जो रिक्त स्थान है, उसमे भूर्भुवादि चतुर्दश लोक विद्यमान है। ब्रह्माण्ड की परिधि को आकाश कक्षा कहते है। जिसके मध्य नक्षत्र ग्रह आदि की कक्षाएं है। इस प्रकार सूर्यसिद्धान्त के अनुसार ब्रह्माण्ड गोलाकृतिक है। वेदों में हिरण्यमयाण्ड से सम्पूर्ण विश्व की उत्पत्ति का वर्णन आया है। सुवर्णमय अण्डे के दो भाग हुए जिससे ब्रह्माण्ड का वृत्ताकारत्व सिद्ध होता है। समस्त प्रकार का दृश्य एवं अदृश्य जगत ब्रह्माण्ड से ही उत्पन्न होता है, तथा ब्रह्माण्ड में ही समाहित हो जाता है। ब्रह्माण्ड को भारतीय ज्ञान परम्परा में परब्रह्म परमात्मा की प्रथम संरचना कहा गया है। ब्रह्माण्डोत्पत्ति का सिद्धान्त ही भारतीय ज्ञान परम्परा में सृष्टिविज्ञान का सूत्रपात करता है। इस प्रकार उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि ब्रह्माण्ड वह सत्ता है जो समस्त सृष्टि का मूल है और समग्र सृष्टि इसी ब्रह्माण्ड के भीतर समाहित भी है।

ब्रह्माण्ड के प्रमुख घटक—

किसी भी वस्तु को समझने के लिए उसके घटकों को समझना आवश्यक होता है। ऐसा भी कह सकते हैं कि समष्टिगत रूप को समझने के लिए उसके प्रत्येक व्यष्टिगत रूप को समझना आवश्यक होता है। ब्रह्माण्ड रूपी शरीर को समझने के लिए इसके व्यष्टिगत रूप को समझना आवश्यक होगा। यद्यपि ब्रह्माण्ड में असंख्य छोटे एवं बडे घटक हैं। परन्तु स्थूल रूप से विचार

किया जाए तो ब्रह्माण्ड में चार स्थूल सदस्य है - आकाशगंगा, नीहारिका, तारामंडल तथा सौर परिवार।

1- आकाशगंगा— जब हम रात में तारोँ से भरे आकाश को देखते हैं तो हम उसकी दीप्ति के वैभव से प्रफुल्लित हो उठते हैं। यदि हम किसी गाँव में रहकर आकाश दर्शन करते हैं तो और भी अधिक आनंद आता हैं। जब हम प्रतिदिन आकाश का अवलोकन करतें हैं तो हमें धीरे-धीरे यह पता चलने लगता है कि न ही सभी तारों का प्रकाश एकसमान है, और न ही उनकें रंग। हम अपनी नंगी आंखों से जितने भी तारों एवं तारा समूहों को देख सकते हैं, वे सभी एक अत्यंत विराट योजना के सदस्य हैं, जो आकाश में लगभग उत्तर से दक्षिण तक फैला हुआ नदी के समान प्रवाहमान प्रतीत होता है। इसे 'आकाशगंगा' या 'मंदाकिनी (Galaxy) कहते हैं। प्राचीन भारतीय विज्ञान में इसे स्वर्गगंगा, आकाशगंगा, मन्दाकिनी, देवगंगा, क्षीरनदी, आकाशनदी, आकाशयज्ञोपवीत आदि कहा है। खगोलशास्त्रियों की गणना के अनुसार हमारे ब्रह्माण्ड में सहस्रों अरब आकाशगंगाएँ हैं। प्रति आकाशगंगा में अनुमानतः हजारों अरब तारे होते हैं। हमारी आकाशगंगा में हमारा सौर-परिवार तो एक कोने में बिन्दु मात्र दिखाई देता हैं। आकाशगंगा का व्यासमान प्रायः 100000 प्रकाश वर्ष है। आकाशगंगा में तीन प्रकार की तारों की श्रेणियाँ हैं। पहली श्रेणी में वे तारे आते हैं जो आकाशगंगा के सर्पिलों और नाभि में स्थित हैं। सूर्य भी इसी में समाहित है, इसे मन्दाकिनी गुच्छ कहते हैं। इसके बाहर प्रभामण्डलीय तारे हैं। यहाँ बहुत से तारों ने एक छोटी मन्दाकिनी का रूप भी लिया है। इनको हम गोलाकार तारागुच्छ कहते हैं। इनमें बहुत पुराने तारे पाए जाते हैं। इन गोलाकार गुच्छों से दूर करोड़ों तारें हैं जो आकाशगंगा के बाहरी भाग में छिटके पड़े हैं। ये तारे भी आकाशगंगा के ही अंग हैं।

2- नीहारिका— खगोल विज्ञान के अनुसार बिग बैंग की घटना के कुछ करोड़ वर्ष के बाद तारों और आकाशगंगाओं का निर्माण होने लगा। वास्तव में आकाशगंगा का निर्माण हाइड्रोजन, हीलियम गैसों तथा धूलकणों से बने विशाल बादल के इकट्ठा होने से हुआ है। आकाशगंगा को बनाने वाले इन बादलों को निहारिका कहते हैं। ब्रह्माण्ड में खरबों तारे हैं, जो अन्तरिक्ष मे समान रूप से वितरित नही हैं। ये तारे बहुत बड़े बड़े समूहों मे वितरित रहते है। प्रत्येक समूह मे खरबों तारे होते है। इन समूहों मे तारों के अलावा हाइड्रोजन गैस एवं धूल के कणों की बहुत अधिक मात्र भी उपस्थित रहती है। तारो के ऐसे प्रेत्यक समूह को नीहारिका कहते हैं। वास्तव में नीहारिकाएँ ब्रह्माण्ड की निर्माणी घटक हैं। ये तारों की तरह प्रकाशित होते हैं परन्तु ये तारे नहीं हैं क्योंकि इनका आकार तारों की तरह नहीं है। आकाश में छोटी-बड़ी अर्थात् सभी प्रकार की नीहारिकाएँ दिखाई देती हैं। जो नीहारिकाएँ ग्रहों के सदृश गोलाकार होती हैं उन्हें ग्रहीय नीहारिका कहते हैं।

3- तारामंडल — यह प्रकाशित खगोलीय पिंड हैं। जो गैसों से मिलकर बने होते हैं। इन तारों के समूह को तारामंडल कहते हैं । पूरे आकाश को 89 तारामंडलों में विभक्त करके उन तारामंडलों के नाम रख दिए गए हैं। राशिचक्र के तारामंडल बहुत प्रसिद्ध हैं, इनकी संज्ञा मेष, वृष आदि है। जैसे मेष राशि के सबसे चमकीले तारे का नामकरण एल्फातरीज किया गया है। आकाशगंगा का

लगभग 98 प्रतिशत भाग तारों से बना है, शेष 2 प्रतिशत भाग में खगोलीय गैस और बहुत ही अधिक घने रूप में छाई धूल है। इन समस्त तारों का वर्गीकरण इनकी द्युति, वर्ग, ताप एवं स्वरूप आदिका ज्ञान भौतिक लक्षणों के द्वारा प्राप्त होता है। इसी को तारों का कान्तिमान कहते हैं। मुख्यतः कान्तिमान के द्वारा ही भौतिकशास्त्र में तारों का अध्ययन होता है।

4- सौर परिवार— सूर्य का परिवार ही सौर-परिवार कहा जाता है। इसी को सौरमण्डल भी कहते हैं हमारे सूरज और उसके ग्रहीय मण्डल को मिलाकर हमारा सौर मण्डल बनता है। इन पिंडों में आठ ग्रह, उनके 172 ज्ञात उपग्रह, पाँच बौने ग्रह और अरबों छोटे पिंड शामिल हैं। इन छोटे पिंडों में क्षुद्रग्रह, बर्फीला काइपर घेरा के पिंड, धूमकेतु, उल्कायें और ग्रहों के बीच की धूल शामिल हैं। जिस ग्रह के पास अपना प्रकाश नहीं होता है। ये सूर्य की किरणों को प्रवर्तित कर प्रकाशित होते है। शुक्र या अरुण दक्षिणावर्त्त दिशा में अर्थात पूर्व से पश्चिम दिशा में परिक्रमण करते हैं जबकि अन्य सभी ग्रह वातावर्त दिशा में अर्थात पश्चिम से पूर्व की दिशा में परिक्रमा करते है। सूर्य या ग्रह के बीच का गुरुत्वाकर्षण बल उन्हें परिक्रमण करने देता है। इन ग्रहों को आंतरिक एवं बाह्य भेद से दो भागो में विभाजित किया जाता है - बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल ये आंतरिक ग्रह हैं। बृहस्पति, शनि तथा अरुण ये बाह्य ग्रह हैं।

बोध प्रश्न—1 लघूत्तरीय प्रश्न -

1- आकाश में कौन सी दो नीहारिकाएँ स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं?

2- हमारे सौर मण्डल में कौन कौन से पिण्ड हैं।

3- आंतरिक ग्रह या पार्थिव ग्रह कौन कौन से हैं ? -

4- ब्रह्माण्ड में चार स्थूल सदस्य कौन-कौन से हैं ?

5- प्राचीन भारतीय विज्ञान में आकाशगंगा को किन किन नामों से सम्बोधित किया गया है।

2.4 वैदिक वाङ्मय में ब्रह्माण्डोत्पत्ति के सिद्धान्त

ब्रह्माण्ड के सृजन की क्रिया का वर्णन ब्रह्माण्ड-उत्पत्ति का सिद्धान्त कहलाता है। ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के सम्बन्ध में दो मत प्रचलित हैं। प्रथम धार्मिक संकल्पना तथा द्वितीय वैज्ञानिक संकल्पना। ब्रह्माण्डोत्पत्ति की वैज्ञानिक संकल्पना के विषय में आपने पढा। धार्मिक संकल्पना प्रमुख प्राचीन भारतीय ग्रन्थों यथा- वेद, पुराण, ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद, धर्म सूत्र आदि में दृष्टिगोचर होती है। पुराणों के अन्तर्गत ब्रह्माण्ड के उत्पत्ति का उल्लेख बहुत ही रहस्यमयी, विलक्षण एवं तर्क संगत है। अति प्राचीन काल से ही वैदिक मनीषियों ने ब्रह्माण्ड उद्भव के सिद्धान्त की स्थापना कर दी थी तथा यह भी बताया कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति एक ही मूल या बीज तत्व के द्वारा हुई है। इस प्रकार सम्पूर्ण व्यवस्थित ब्रह्माण्ड को देखने से यह बात स्पष्ट होती है कि इसका प्रथम कारण ईश्वर ही है। प्राचीन काल से लेकर आज तक इसी एक तत्व को आधार मानकर धर्माचार्यों, मनीषियों, विद्वानों एवं वैज्ञानिकों ने विविध प्रकार की परिकल्पनाओं और अवधारणाओं की कल्पना का जो स्वरूप प्रस्तुत किया वह वैज्ञानिक कम होकर ऐतिहासिक ज्यादा है। वैदिक ग्रन्थों में भी ब्रह्माण्ड-उत्पत्ति का विस्तृत उल्लेख मिलता है।

उपनिषदों के अन्तर्गत इसी तत्व को परम ब्रह्म, स्रष्टा, पालक एवं संहारक के रूप में माना गया है। तैत्तिरीय उपनिषद् में आया है कि ब्रह्मात्मा से ब्रह्माण्ड निकला, ब्रह्माण्ड से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से वनस्पति, वनस्पति से भोजन, भोजन से मानव आदि बने। ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति किस प्रकार हुई ? इन तथ्यों का वर्णन वेद उपनिषद, रामायण, महाभारत, पुराण, भगवद्गीता, आदि प्राचीन ग्रन्थों में निहित है। भारत के संस्कृत-साहित्य के अमूल्य भण्डार के रूप में उपलब्ध वेदों के अन्तर्गत ब्रह्माण्डोत्पत्ति-मत भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रस्तुत किये गये है। परन्तु सभी मत का मूल एक ही है। ब्रह्माण्ड-पुराण का अधिकांश उल्लेख वेदों में वर्णित तथ्यों के समकक्ष है यही कारण है कि वेदों के ब्रह्माण्डोत्पत्ति सिद्धान्त का पुराण पर गहरा प्रभाव देखा जा सकता है। वैदिक वाङ्मय में ब्रह्माण्डोत्पत्ति के सिद्धान्तों को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है -

विश्वकर्मा द्वारा ब्रह्माण्डोत्पत्ति—

ऋग्वेद में ब्रह्माण्ड सृजन हेतु प्रयोग किया जाने वाला पदार्थ अन्तरिक्ष धूल माना गया है। ब्रह्माण्ड के निर्माण में विश्वकर्मा को प्रमुख वास्तुविद् माना गया है तथा यह मान्यता है कि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति विश्वकर्मा ने उसी प्रकार की है जिस प्रकार किसी गृह की रचना निर्माण सामग्री और कारीगारों द्वारा होती है। इस प्रकार पुराणों के अन्तर्गत सृजन तत्व की प्राचीन शक्ति तत्व के रूप में माना गया है। इस शक्ति तत्व का अव्यक्त और प्रकृति के नाम से सम्बोधित किया गया है तथा यह बताया गया है कि प्रत्येक तत्व में एक शक्ति होती है। उदाहरणस्वरूप अग्नि में जलाने की शकति। इसी तरह से ईश्वर के प्रतिनिधि विश्वकर्मा में ब्रह्माण्ड के निर्माण की शक्ति निहित है। ब्रह्माण्ड की इन्हीं शक्तियों में विष्णु, कृष्ण और नारायण को प्रमुख स्थान प्रदान किया गया है। इस सृष्टि में अन्तरिक्ष, पृथ्वी और स्वर्ग तीन लोकों की कल्पना की गयी है। मत्स्य-पुराण में आया है कि भगवान विष्णु ने ब्रह्माण्ड की रचना में ऊपर वाले भाग को आकाश, नीचे के भाग को रसातल तथा मध्य भाग को पृथ्वी बताया है। ब्रह्माण्ड-उत्पत्तिक को स्पष्ट करते हुए ऋग्वेद में कहा गया है- **'विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत संदृक् ।तोषामिष्टानि समिषा भवन्ति यत्र सप्त ऋषीन्पर एकमाहुः'।** अर्थात् सृष्टि को रचने वाला (विश्वकर्मा) विशेष ज्ञान वाला आकाश के सामान सर्वत्र व्यापाक सम्पूर्ण विश्व को धारण करने वाला, विश्व के विधान को रचने वाला परम ज्ञानी, सबसे मुख्य तथ्य और सम्यक् रूप से सबका द्रष्टा है।

विराट पुरूष से ब्रह्माण्डोत्पत्ति—

ऋग्वेद में ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति आदि विराट पुरुष से हुई है। ब्रह्माण्ड स्रष्टा इस विराट पुरुष को विश्व की आत्मा के रूप में माना गया है। इस आत्मा की नाभिक और मूर्तरूप के विखण्डन से अन्तरिक्ष, सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, वायु और अन्य आकाशीय पिण्डों की उत्पत्ति हुई। इस पृथ्वी के समस्त जीवधारी और मानव उसी आत्मा के विखण्डन का परिणाम है। भागवत पुराण में विराट पुरुष का वर्णन करते हुए कहा गया है कि विराट पुरुष के तलवे पाताल लोक, एड़ियां और पंजे रसातल लोक, पैर के पिण्ड तलातल, दोनों घुटने सुतल, जंघाएँ वितल और अतल, पेडू-भूतल,

नाभि सरोवर और आकाश, वक्षस्थल स्वर्णलोक, गला महिलोक, बदन-जनलोक, ललाट-मस्तक, सत्यलोक बाहुए इन्द्र आदि देव, कर्ण दिशा, मुख अग्नि व सूर्य, तालु जल, जिह्वा-रस, कोख- समुद्र, अस्थियाँ-पर्वत आदि हैं।

महाभारत के शन्ति पर्व में ब्रह्माण्ड का सृजन अव्यक्त से बताया गया है। इसमें सर्वप्रथम फ्महान'' (विराट) से आकाश की उत्पत्ति का उल्लेख किया गया है। आकाश से जल, जल से अग्नि, एवं वायु उत्पन्न हुई बताया गया है। सभी तत्त्वों के मिश्रण से पृथ्वी की संरचना बतायी गयी है। सृष्टि के पूर्व यही महाशक्ति आदि पुरुष में विद्यमान थी। इसीलिए इन्हें आदि पुरुष कहा गया है। आदि और अन्त से परे समस्त विश्व का बीच होने तथा नार (जल) में सोने के कारण इस विराट पुरुष को नारायण भी कहा गया है। ब्रह्माण्ड-पुराण में विराट पुरुष के विषय में उल्लेख है कि सृष्टि काल में विश्व-सृजन करने की अभिलाषा से महान तत्त्व उत्पन्न हुआ। यह महान तत्त्व प्रकाशमान था। सृष्टि की इच्छा से प्रेरित उस महान ने ब्रह्माण्ड की रचना की। इस रचना में सभी चराचर सजीव एवं निर्जीव विद्यमान हैं। इस महान को विद्वान, मन, आत्मा, मति, ब्रह्मा, भू-बुद्धि, ईश्वर, प्रजा, स्मृति और विभु कहते हैं।

ब्रह्म से ब्रह्माण्डोत्पत्ति—

मनुस्मृति के अनुसार ब्रह्मा ने निद्रा से जागने के बाद सृष्टि के सृजन का संकल्प लेकर अपने मन को नियुक्त किया। मन ने सृष्टि-सृजन हेतु सर्वप्रथम आकाश बनाया। आकाश का विलक्षण गुण है स्तर। फिर आकाश ने अपने को परिमार्जित करके वायु की रचना की, जिसका अर्थ है स्पर्श। वायु से देदीप्यमान प्रकाश की उत्पत्ति हुई। प्रकाश से जल की उत्पत्ति हुई। जल से पृथ्वी की संरचना हुई। इस पृथ्वी का विशिष्ट-गुण है गन्ध। ऋग्वेद वेद में ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के विषय में उल्लेख इस प्रकार है-**'चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो धृतमेने अजनन्नम्नमाने। यदेदन्ता अददृहन्त पूर्व आदिद् द्यावा पृथिवी अप्रथेताम्'।** अर्थात् सूर्य एवं दृश्य जगत का पिता अपनी विचार शक्ति से गम्भीर और सबको धारण करने वाला, जल की रचना करने वाला। वह इस परिवर्तन में सूक्ष्म से स्थूलरूप (अणु परमाणु से दृश्य संसार) में आते हुए द्युलोक (नक्षत्र मण्डल), भूलोक (पृथ्वी आदि ग्रह मण्डल) को उत्पन्न करता है। जब (ज्यों-ज्यों) पूर्व निर्मित भाग दृढ़ होते जाते हैं। तदन्तर (त्यों-त्यों) आगे-आगे द्युलोक, भूलोक विस्तार पाते जाते हैं। विष्णु-पुराण में ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति ब्रह्म से बतायी गयी है तथा कहा गया है कि ब्रह्म के पूर्व सृष्टि के आदि मे न सत् था न असत्, न आकाश था न वायुमंडल, न रात थी, न दिन था, केवल ब्रह्म को छोड़कर शून्य था। मत्स्यपुराण के अन्तर्गत आया है कि सर्वप्रथम नारायण अवतरित हुए। नारायण ने विश्व-सृष्टि की कामना से अपने शरीर से सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण-बह्म, विष्णु और महेश को उत्पन्न किये। इसके पश्चात् पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय तथा 23 तत्त्वों के समूह में प्रविष्ट होकर नारायण ने इन तत्वों को मिलाकर एक परिमाण प्राप्त किया। यह परिमाण विश्व-संरचना के तत्त्वों का गर्भ था जिससे ब्रह्माण्ड कीउत्पत्ति हुई। ब्रह्माण्ड-पुराण के अनुसार, ब्रह्माण्ड में सबसे पहले ऐश्वर्य शाली ब्रह्मा उत्पन्न हुए। ब्रह्मा को प्रकृति पुरुष भी कहा गया है। यह अनादि और नियत

पुरुष है। इन्हें ब्रह्माण्ड के समस्त उत्पन्न पदार्थों का पिता भी कहा जाता है। ब्रह्मा ने सृष्टि के समय सत्व, रजस्, और तमो गुणों में क्षोभ उत्पन्न किया और महान तत्त्व को जन्म दिया। सृष्टि का अंकुर, यह महातत्व विश्व को प्रकट करने के लिए प्रलयकारी अन्धकार को अपने में समेट लिया। रजो और तमो गुण के कारण महातत्व ने विकास रूप में ज्ञान, तप, क्रिया, द्रव्य और अन्धकार उत्पन्न किया। महावत्व के विकार का रूप वायु, जल, पृथ्वी आदि हैं।

सूर्य से ब्रह्माण्डोत्पत्ति—

इसी आधार पर सूर्य देव को सम्पूर्ण सृष्टि निर्माण का प्रधान एवं महत्त्वपूर्ण कारक माना गया है। इसमें सूर्य को ब्रह्मा की आत्मा बताया गया है। सूर्य को राजपति, विश्वकर्मा, ब्रह्मा-विष्णु-महेश, प्रजापति, हिरण्यगर्भ तथा अजन्मा सत् बताया गया है। मनुस्मृति में यह बताया गया है कि जब यह विश्व अज्ञात अन्धकार में अवस्थित होकर गम्भीर निद्रा में निमग्न था तब स्वयम्भू अपनी शकति से अन्धकार को हटाकर महान तत्वों के साथ प्रकाशमान हुए। स्वयम्भू ने विश्व को अपने शरीर से उत्पन्न करने की इच्छासे सर्वप्रथम जल की उत्पत्ति की। जल में अपना बीज लगाया। वह बीज हिरण्यगर्भ (सोने का अण्डा) बन गया है। यह हिरण्यगर्भ तेज में सूर्य के समान था। इस अण्डे से ब्रह्मा अवतरित हुए जिन्हें नारायण कहा जाता है। नारायण ने हिरण्यगर्भ को दो भागों में बाँटकर पृथ्वी और स्वर्ग की उत्पत्ति की। इन दोनों के मध्य अन्तरिक्ष, आठ दिशाएँ, समुद्र और पंच तत्वों से जीव की उत्पत्ति की। ऋग्वेद में मं0 10 सू0 121-1 के अनुसार- संसार के इस रूप में आने से पहले हिरण्यगर्भ की स्थिति में थी। यह सुवर्णमय उपादान पंचभूत समूह का एक मात्र धारक था। उसने ही भूलोक और द्युलोक को धारण किया। मत्स्य-पुराण के अन्तर्गत भी मनुस्मृति के समान ही वर्णन प्राप्त होता है जैसे- सृष्टि से पूर्व नारायण थे, नारायण ने सर्वप्रथम जल की उत्पत्ति की, जल में बीज से सोने का अण्डा मिला। अण्डे के भीतर सूर्य प्राप्त हुआ। यहाँ सूर्य विश्व-सृजन का कारक है। वायु-पुराण तथा ब्रह्माण्ड-पुराण में भी विश्व-सृष्टि हिरण्यगर्भ से बतायी गयी है। ब्रह्माण्ड-पुराण में लिखा गया है कि विश्व-सृष्टि के तत्वों में हिरण्यगर्भ से ब्रह्मा अवतरित हुए। यही ब्रह्मा समस्त जीवों की आत्मा होने के कारण परमात्मा का अंश कहलाये। इसी हिरण्यगर्भ से लोको की उत्पत्ति हुई। ब्रह्माण्ड-पुराण में हिरण्यगर्भ को चार मुखों वाला माना गया है। हिरण्यगर्भ से ही सूर्य, सोम, रुद्र, और जल की उत्पत्ति हुई। इनके पश्चात् आकाश और पृथ्वी की रचना हुई। इस सिद्धान्त का मानना है कि ब्रह्माण्ड बीज के रूप में सूर्य प्रधान एवं मुख्य कारक है जिससे सम्पूर्ण विश्व की रचना हुई है। इसके केन्द्र को हिरण्गर्भ के नाम से सम्बोधित करते हैं जो सत् और असत् पदार्थों की उत्पत्ति का प्रमुख कारण है।

बोध प्रश्न—2 बहुविकल्पीय प्रश्न -

1- तैत्तरीय उपनिषद् के अनुसार ब्रह्माण्ड का उद्भव किस से माना गया है-

(क) जीवात्मा (ख) ब्रह्मात्मा

(ग) सूर्य (घ) हिरण्यगर्भ

2- ब्रह्माण्ड का प्रमुख वास्तुकार किस को माना गया है -

(क) विश्वकर्मा (ख) पुरुष

(ग) सूर्य (घ) हिरण्यगर्भ

3- भागवत पुराण के अनुसार विराट पुरुष के पाद में कौन सा लोक है -,

(क) सूर्यलोक (ख) पृथ्वी लोक

(ग) पाताल लोक (घ) स्वर्गलोक

4- महाभारत में ब्रह्माण्ड का सृजन किस से बताया गया है-

(क) जीवात्मा (ख) ब्रह्मात्मा

(ग) सूर्य (घ) अव्यक्त

5-विष्णु-पुराण में ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति किस से बतायी गयी है

(क) सूर्य (ख) विराट पुरूष

(ग) ब्रह्म (घ) हिरण्यगर्भ

2.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति विषयक तत्वों को तथा वैदिक वाङ्मय के अन्तर्गत, ब्रह्माण्डोत्पत्ति को जाना। वैदिक वाङ्मय में न केवल ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति अपितु आकृति के विषय में भी वर्णन प्राप्त होता है। वैदिक वाङ्मय में ब्रह्माण्डोत्पत्ति के सिद्धान्तों में आपने- विश्वकर्मा द्वारा ब्रह्माण्डोत्पत्ति, विराट पुरूष से ब्रह्माण्डोत्पत्ति, ब्रह्म से ब्रह्माण्डोत्पत्ति तथा सूर्य से ब्रह्माण्डोत्पत्ति के सिद्धान्तों के विषय में जाना।

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

प्राकृतिक	-	प्रकृति से संबन्धित
मतवैभिन्य	-	मान्यताओं में विविधता
पाश्चात्य	-	पश्चिम के, बाद के
ब्रह्माण्डोत्पत्ति	-	ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति
व्योम	-	आकाश
समष्टिगत	-	सम्पूर्ण
व्यष्टिगत	-	व्यक्तिगत
दक्षिणावर्त्त	-	दक्षिण दिशा की और
स्रष्टा	-	रचना करने वाला
विखण्डन	-	टूटना
स्थिर दशा	-	एक स्थिति में स्थिर रहना
अतीत	-	भूतकाल, बीता हुआ समय
प्रसरणशीलता	-	फैलने की निरन्तरता
सर्वाधिक	-	सबसे अधिक

सूक्ष्म	-	अत्यधिक छोटा
दिक्-काल	-	दिशा और काल
अकस्मात्	-	अचानक
रचयिता	-	रचने वाला
खगोलीय पिण्ड	-	आकाश में दिख रहे तारे, ग्रह आदि पिण्ड
जिज्ञासु	-	जानने की इच्छा से युक्त
असंख्य	-	अनन्त संख्या वाले, जिनको गिना न जा सके
शक्तिसम्पन्न	-	शक्ति से युक्त
प्रारम्भिक	-	शुरुआती
अवलोकन	-	देखना
जिज्ञासा	-	जानने की इच्छा
सृष्टिविषयक	-	सृष्टि से संबन्धित
ऊर्ध्वलोक	-	ऊपर के लोक
अधोलोक	-	नीचे के लोक
अभाव	-	न होना
आच्छादित	-	ढका हुआ
व्यापकता	-	अस्तित्त्व का व्याप्त होना
वैदिक	-	वेदों से संबन्धित
चराचर	-	स्थिर तथा अस्थिर
पौराणिक	-	पुराणों से संबन्धित
विद्यमान	-	उपस्थित होना
सृजन करना	-	उत्पन्न करना, रचना करना
खगोलशास्त्र	-	आकाशीय पिण्डों का शास्त्र
विपरीत	-	उल्टा
भू-भ्रमण	-	भूमि का घूमना

2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोधप्रश्नोत्तर—1 लघूत्तरीय प्रश्न -

1-आकाशगंगा, नीहारिका, तारामण्डल तथा सौर परिवार।

2-स्वर्गगंगा, आकाशगंगा, मन्दाकिनी, देवगंगा, क्षीरनदी, आकाशनदी, आकाशयज्ञोपवीत आदि कहा है।

3-देवयानी और त्रिभुज

4-आठ ग्रह, उनके 172 ज्ञात उपग्रह, पाँच बौने ग्रह और अरबों छोटे पिंड शामिल हैं। इन छोटे पिंडों में क्षुद्रग्रह, बर्फीला काइपर घेरा के पिंड, धूमकेतु, उल्कायें और ग्रहों के बीच की धूल शामिल हैं।

5-आंतरिक ग्रह बुध, शुक्र, पृथ्वी तथा मंगल है।

बोधप्रश्नोत्तर—2 बहुविकल्पीय प्रश्न -

1- (ग) 2- (घ) 3- (ग) 4- (ख) 5- (क)

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सूर्यसिद्धान्तः-आर्षग्रन्थः, टीकाकार कपिलेश्वरशास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी-2004

2. बृहत्संहिता-आचार्यवराहमिहिर, प-अच्युतानन्दझा,चौखम्बाविद्याभवनवाराणसी

3.ऋग्वेद, सायणाचार्यकृत-भाष्यसंवलिता, अनुवादक पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 2016

4.अथर्ववेद, सयणाचार्यकृत-भाष्यसंवलिता, अनुवादक पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 2016

5. वैदिक ब्रह्माण्ड का परिचय-उ.मु.वि.वि.हल्द्वानी

6.मनुस्मृति - डा- गजानन शास्त्री, चौखम्बा सुरभारती प्रतिष्ठान वाराणसी, 2002

7.पुराणविमर्श - गीताप्रेस गोरखरपुर

2.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.भुवनकोश विमर्श, प्रो. देवी प्रसाद त्रिपाठी, अमर ग्रन्थ पब्लिकेशन्स दिल्ली, वर्ष 2004

2.यजुर्वेद, संस्कृत साहित्य प्रकाशन वर्ष 2015

3.श्रीमद्भागवतपुराणम्, वेदव्यास,गोरखपुर, गीताप्रेस, संवत् 2059

4.ऋग्वेद, संस्कृत साहित्य प्रकाशन वर्ष 2016

5.गोलपरिभाषा, झा, सीताराम, दरभङ्गा, बिहार, श्रीसीताराम पुस्तकालय, संवत् 2027

6.श्रीमद्भगवद्गीता, गीताप्रेस गोरखपुर, संवत् 20486

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ब्रह्माड का अर्थ एवं स्वरूप का विस्तार से वर्णन कीजिए।

2. ब्रह्माण्ड के सदस्यों के बारे में विस्तार से बताइये।

3. ब्रह्माण्ड की परिभाषा तथा विषयों का विस्तार से वर्णन कीजिए।

4. ब्रह्माण्डोत्पत्ति के वैदिक सिद्धान्तों की विस्तार से वर्णन कीजिए।

इकाई-3 वैदिक सृष्टि के प्राचीन एवं आधुनिक सिद्धान्त

इकाई की रुपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 वैदिक सृष्टि का स्वरुप
3.4 ब्रह्माण्डोत्पत्ति के भारतीय सिद्धान्त
    3.4.1ब्रह्मा द्वारा सृष्टि
    3.4.2 विराट्पुरुष द्वारा सृष्टि
    3.4.3 विश्वकर्मा द्वारा सृष्टि
    3.4.4 प्रजापति द्वारा सृष्टि
3.5 स्थिरदशा सिद्धान्त
3.6 विस्फोट सिद्धान्त
3.7 स्पन्दनशील सिद्धान्त
3.8 स्थिरदशा सिद्धान्त और भारतीय सृष्टि विज्ञान
    3.8.1 विस्फोट सिद्धान्त तथा भारतीय सृष्टि विज्ञान
    3.8.2 स्पन्दनशील सिद्धान्त तथा भारतीय सृष्टिविज्ञान
3.4 सारांश
3.5 पारिभाषिक शब्दावली
3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुतत इकाई वैदिक अध्ययन के अन्तरगत वैदिक सृष्टि नामक चतुर्थ खण्ड की - वैदिक सृष्टि के प्राचीन एवं आधुनिक सिद्धान्त नामक तृतीय इकाई है । वेद ईश्वरीय ज्ञान है। यह ज्ञान सृष्टि के आरम्भ में मानवों के कल्याण साधन के लिए निःश्वसित हुआ। वेद वैदिक-संस्कृति के मूलाधिष्ठान हैं। वे शिक्षाओं के अक्षय निधि और ज्ञान के रत्नाकर हैं। वेद संसार रूपी सागर से पार उतरने के लिए नौका रूप हैं। वेद में मनुष्य जीवन की सभी प्रमुख समस्याओं का समाधान है। अज्ञानान्धकार में पड़े हुए मनुष्यों के लिए वे प्रकाशस्तम्भ हैं,भूले भटके लोगों को वे सन्मार्ग दिखाते हैं। पथ भ्रष्टों को कर्त्तव्य का ज्ञान प्रदान करते हैं,अध्यात्म पथ के पथिकों को प्रभु-प्राप्ति के साधनों का उपदेश देते हैं। सक्षेप में वेद अमूल्य रत्नों के भण्डार हैं।आचार्य सायण के अनुसार" इष्ट की प्राप्ति तथा अनिष्ट के निवारण का उपाय जो बतलाएं वे ग्रन्थ राशि वेद कहलाते हैं।" महर्षि मनु के शब्दों में—**"वेदोऽखिलोधर्ममूलम्"** वेद धर्म का मूल है ।"सर्वज्ञानमयो हि सः" अर्थात् वेद सकल ज्ञान से भरपूर है। वैदिक विज्ञान, राष्ट्रधर्म, समाज-व्यवस्था, पारिवारिक-जीवन, वर्णाश्रम-धर्म, सत्य, प्रेम, अहिंसा, त्याग आदि को दर्पण की भाँति दिखाता है।

सृष्टि का प्रारम्भ कब हुआ यह एक अत्यन्त महत्पूर्ण विषय है। वेद सम्पूर्ण ज्ञान विज्ञान के आदि स्रोत हैं। सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन ऋग्वेद के अदितिसूक्त विश्वकर्मासूक्त, पुरुषसूक्त, प्रजापतिसूक्त, नासदीयसूक्त, ऋतसूक्त तथा अथर्ववेद के काल सूक्त आदि सूक्तों में प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त ब्राह्मण ग्रन्थों तथा उपनिषदों में भी सृष्टि विषयक अनेक सन्दर्भ प्राप्त होते है। इस इकाई में आप वेदों में सृष्टि विषयक वैदिक अवधारणाओं के प्राचीन और आधुनिक सिद्धांतों विषय में विस्तार से पढेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप -

- वैदिक सृष्टि के स्वरूप का विस्तार से वर्णन करने में समर्थ होंगे।
- वैदिक सृष्टि की अवधारणा से परिचित हो पायेंगे |
- साथ ही प्राचीन एवं आधुनिक सिद्धान्तों की व्याख्या कर सकेंगे।
- वेदों में ब्रह्माण्डोत्पत्ति के सिद्धान्तों के विषय में भी ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- वेदोत्तर साहित्य में ब्रह्माण्डोत्पत्ति के सिद्धान्तों को बताने में समर्थ होंगे।

3.3 वैदिक सृष्टि का स्वरूप

वैदिक सृष्टि के सन्दर्भ में सर्वप्रथम इस बात को जानने की आवश्यकता है कि सृष्टि की उत्पत्ति कैसे हुई? सृष्टि का विस्तार किस प्रकार हुआ? वैदिक मनीषीयों के चिन्तन का यही मुख्य विषय रहा है। वेदों का मूल विषय 'सृष्टि विज्ञान' या 'सृष्टि विद्या' है। ऋग्वेद के 'नासदीय सूक्त' में सृष्ट्युत्पत्ति के पूर्व विद्यमान अवस्था का चित्रण करते हुए सृष्टि क्रम प्रतिपादित किया गया है।

जन्तु विज्ञान के साथ ही वनस्पति विज्ञान का आदिम स्वरूप वैदिक मंत्रों में समाहित है। ऋग्वेद में वनस्पति के लिए 'वनिन्' एवं 'ओषधि' शब्द प्रयुक्त हुआ है। अथर्ववेद में चतुर्विध वनस्पिति की चर्चा की गयी है- वनस्पति, वानस्पत्य, ओषधि और वीरूध्। वेदों में जैव विकास क्रम के सन्दर्भ में निहित ज्ञान की सूक्ष्म विवेचना आवश्यक है। सृष्टि की उत्पत्ति तथा उसके मूल कारण के विषय में प्राचीन काल में अद्यतन मानव जिज्ञासा यथावत् बनी हुई है। वर्तमान विज्ञान भी अनेकानेक प्रयोगों द्वारा नित्नवीन सिद्धान्तों की स्थापना का प्रयास कर रहा है। इस विषय में अन्तिम निर्णय आज भी अप्राप्त है। मुख्य शब्द मुख्य वैदिक, सृष्टि, उत्पत्ति, वैदिक, वाङ्मयमय शब्द वेद भारतीय मनीषियों की अतुलनीय ज्ञानराशि का सर्वोत्कृष्ट स्वरूप हैं जिसमें परा एवं अपरा विद्या के मूल तत्त्व का सहज ही अन्वेषण किया जा सकता है। प्राचीन ऋषियों ने ज्ञान-विज्ञान के प्रत्येक पक्ष का गहन चिन्तन किया था। वेदों में भौतिकी, रसायन, वनस्पति, प्रौद्योगिकी, कृषि, जन्तु विज्ञान, पर्यावरण, ज्योतिष एवं खगोल विज्ञान से सम्बद्ध प्रचुर सामग्री विद्यमान है। असंदिग्ध एवं निरपेक्ष ज्ञान ही विज्ञान है। वैदिक वाङ्मय में यद्यपि वैज्ञानिक तथ्यों, यन्त्रों तथा प्रयोगशालाओं का प्रत्यक्षः वर्णन तो नहीं मिलता किन्तु उनके मन्त्रों में विज्ञान के प्रत्येक शाखाओं के तत्व बीज रूप में निहित है। वैदिक मंत्रों में सृष्टि की उत्पत्ति तथा उसके विकासक्रम की सूक्ष्म विवेचना दृष्टिगत होती है। वेद मानव मनीषा की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धियों का अमूल्य अंश है। ज्ञानार्थक 'विद्' धातु से निष्पन्न 'वेद' शब्द 'ज्ञानराशि' का वाचक है। मनु ने वेद को सम्पूर्ण ज्ञान का स्रोत माना है।1 ज्ञान और विज्ञान में अबिनाभाव सम्बन्ध है; ज्ञान के होने पर विज्ञान की सत्ता अवश्यक ही होती है। अतएव ज्ञानराशि वेद में वैज्ञानिक तत्त्वों की गवेषणा की जा सकती है। को विज्ञान कहा जाता है। विज्ञान के व्युत्पत्यात्मक अर्थ की दृष्टि से वेद एवं विज्ञान में घनिष्ठ सम्बन्ध है क्योंकि वेंदों का प्रमुख प्रतिपाद्य पूर्ण एवं विशुद्ध ज्ञान ही है, जो 'ब्रह्मज्ञान' है। 'परमेश्वर का ज्ञान' ही एक ऐसा ज्ञान है जो सभी ज्ञानों की निरातिशयता या ज्ञान की पराकाष्ठा आ आधार है। 'तैत्तिरीयोपनिषद्' में कहा गया है कि सभी देवगण ब्रह्म के रूप में विज्ञान की ही उपासना करते हैं। विज्ञान को ब्रह्म ही जानों।2 'बृहदारण्यकोपनिषद्' में ब्रह्म को विज्ञान और आनन्द इन दोनों विशेषणों से युक्त बताया गया हैं।3 वेद एवं विज्ञान के सम्बन्ध को प्रत्यगात्मानन्द सरस्वती ने इन शब्दों में प्रतिपादति किया है, परीक्षा द्वारा अपरोक्ष ज्ञान पाने में ही विज्ञान का आग्रह है एवं लक्ष्य को स्थिर रखकर पथ को सीधा कर लेने भर से यह वेद व ब्रह्मज्ञान का पथ हो सकता है। वेद व विज्ञान के बीच एक बहुत घनिष्ठ प्रकार की आत्मीयता है।4 वैदिक मनीषीयों को भौतिक जगत् से सम्बद्धित विज्ञान का विस्तृत वर्णन अपेक्षित नहीं था अतएव उन्होंने वेदों में वैज्ञानिक तथ्यों का साक्षात् वर्णन न करके प्रतीक या संकेत रूप में वर्णन किया है। वेदों में वृक्षों के गुण-धर्मों एवं महत्व को प्रतिपादित किया गया है। जैव विकास क्रम के सन्दर्भ में निहित ज्ञान की सूक्ष्म विवेचना आवश्यक है। सृष्टि की उत्पत्ति तथा उसके मूल कारण के विषय में प्राचीन काल में अद्यतन मानव जिज्ञासा यथावत् बनी हुई है। वर्तमान विज्ञान भी अनेकानेक प्रयोगों द्वारा नित् नवीन सिद्धान्तों की स्थापना का प्रयास कर रहा है। इस विषय में अन्तिम निर्णय आज भी अप्राप्त

है। ऋषियों ने 'पुरू सुक्त', 'हिरण्यगर्भ सूक्त' एवं 'नासदीय सूक्त' में सृष्टि उत्पत्ति के विषय में जो चिन्तन प्रस्तुत किया है वह इस दिशा में नव दृष्टि प्रदान करने वाला है। अतः वैदिक मंत्रों की वैज्ञानिकता को समझने की आवश्यकता है। सन्दर्भ-सूची सन्दर्भ-सूची मनु0 2.7-सर्वज्ञानमया हि सः। तै0उ0 2.5- विज्ञानं देवाः सर्वे। ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते। विज्ञानं ब्रह्म चद्वेद। तै0उ0 3.5- विज्ञानं ब्रह्मेति इत्यादि सूक्तियाँ प्रमाणिक हैं।

3.4 ब्रह्माण्डोत्पत्ति के भारतीय सिद्धान्त

तैत्तिरीय उपनिषद के अनुसार सर्वप्रथम आकाश उत्पन्न हुआ। पश्चात् आकाश से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथिवी, पृथिवी से औषधियां, औषधियों से अन्न, अन्न से पुरुष उत्पन्न हुआ। यही क्रम प्रायः संस्कृत साहित्य के अन्य वैज्ञानिक तथा दार्शनिक ग्रन्थों में भी मिलता है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाश ये पञ्चमहाभूत सृष्टि की उत्पत्ति का मूल माने गए हैं। सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों की साम्यावस्था का नाम प्रकृति है, इन तीन गुणों के आपसी सम्मेलन से प्रकृति में विकार उत्पन्न होता है, यही विकार सृष्टि कहलाती है। ये सर्वप्रथम पञ्चमहाभूतों में परिणत होकर समग्र सृष्टि का सृजन करते हैं। यही पञ्चमहाभूत सम्पूर्ण भारतीय दार्शनिक परम्परा में सृष्टि प्रक्रिया के प्रमुख सिद्धान्त भी हैं। सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्वमीमांसा तथा वेदान्त ये छः वैदिक और बौद्ध, जैन तथा चार्वाक् आदि अवैदिक दर्शन, सभी इन पञ्चमहाभूतों पर विचार अवश्य ही करते हैं। वैदिक ब्रह्माण्डोत्पत्ति सिद्धान्त का विस्तृत वर्णन वेदान्त दर्शन में सृष्टि के सात आवरणों के माध्यम से मिलता है, जिसे दशाङ्गुलन्याय नाम से भी जाना जाता है। इसके अनुसार पृथ्वी से दशगुना जल, जल से दशगुना अग्नि, अग्नि से दशगुना वायु, वायु से दशगुना आकाश, आकाश से दशगुना अहंकार, अहंकार से दशगुना महत्तत्त्व, महत्तत्त्व से दशगुना मूलप्रकृति और यह मूलप्रकृति भगवान के एक पाद में है। उपर्युक्त परिकल्पनाओं के अतिरिक्त भी वैदिक साहित्य में अन्य सिद्धान्त प्रमुखता से मिलते हैं। पुरुष सूक्त तथा नासदीय सूक्त ये दोनों सृष्टि विषयक प्रसिद्ध वैदिक सूक्त हैं तथा ये ब्रह्माण्डोत्पत्ति सिद्धान्त को विस्तार से परिभाषित करते हैं। नासदीय सूक्त सृष्टि से पूर्व के पक्षों पर ध्यानाकर्षित करता है तथा यह सूक्त वैदिक चिन्तन की उस पराकाष्ठा को दर्शाता है जिसमें सृष्टि के कारण विद्यमान हैं।

वैदिक तथा पौराणिक वाङ्मय के अध्ययन के आधार पर स्पष्ट होता है कि भारतीय साहित्य वाङ्मय में ब्रह्माण्डोत्पत्ति का वर्णन पर्याप्त मात्रा में हैं। भारतीय ज्ञान परम्परा में ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के जो प्रमाण प्रायः प्राप्त होते हैं, उन सभी प्रमाणों के विमर्श के आधार पर ब्रह्माण्ड एवं उसकी उत्पत्ति को मुख्य चार सिद्धान्तों के द्वारा प्रतिपादित किया जा सकता है। "भुवनकोशविमर्श" नामक पुस्तक में प्रो. देवी प्रसाद त्रिपाठी जी ने ब्रह्माण्डोत्पत्ति के विषय में इन सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया है। वे सिद्धान्त निम्न हैं –

1. ब्रह्मा द्वारा सृष्टि
2. विराट्पुरुष द्वारा सृष्टि
3. विश्वकर्मा द्वारा सृष्टि

4. प्रजापति द्वारा सृष्टि

3.4.1ब्रह्मा द्वारा सृष्टि

नासदीयसूक्त में वर्णन मिलता है कि सृष्टि से पूर्व कुछ भी नहीं था पश्चात् स्वयमेव शुद्धचैतन्य परब्रह्म की सत्ता उत्पन्न हुई। इसी परब्रह्म ने संकल्पमात्र से सृष्टि की रचना की। सृष्टिरचना में सर्वप्रथम सत्य की उत्पत्ति हुई तत्पश्चात् क्रमशः आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी उत्पन्न हुए। ब्रह्मा का वर्णन श्रीमद्भागवतमहापुराण में भी प्राप्त होता है। श्रीमद्भागवत के अनुसार भगवान विष्णु के मन में सृष्टि की जिज्ञासा उत्पन्न हुई। तत्पश्चात् भगवान विष्णु के नाभिकमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए। इसी ब्रह्मा ने सम्पूर्ण सृष्टि की रचना की। ब्रह्माण्डपुराण के अनुसार ब्रह्मा ने सर्वप्रथम हिरण्याण्ड को उत्पन्न किया, इस हिरण्याण्ड का आवरण जल था। जल का तेज, तेज का वायु, वायु का आकाश क्रमशः आवरण थे, इन पञ्चमहाभूतों का आवरण महत्तत्व था, तथा महत्तत्त्व अव्यक्त से आवृत्त था। कुछ इसी प्रकार का वर्णन तैत्तिरीयोपनिषद् में भी मिलता है। पौराणिक साहित्य देखने पर हमें प्राप्त होता है कि ब्रह्मा इस सम्पूर्ण सृष्टि का कर्ता है। पौराणिक साहित्य में ब्रह्मा, विष्णु और महेश इन त्रिदेवों की कल्पना इसी सन्दर्भ में की गई है। त्रिदेवकल्पना में सत्व-रज-तम इन तीन गुणों के अनुरूप ब्रह्मा रजोगुणयुक्त होकर विश्व का सृजन करता है, विष्णु सत्त्वगुणसम्पन्न होकर होकर सृष्टि का पोषण करते हैं तथा शिव तमोगुणयुक्त स्वरूप धारण कर सृष्टि का नाश करते हैं। यहाँ ब्रह्मा को सृष्टि का कर्ता, विष्णु को पालनकर्ता तथा शिव को संहारकर्ता के रूप में रखा गया है। पौराणिक साहित्य के अनुसार प्रायः ब्रह्मा ही सृष्टिकर्ता हैं, उन्हीं से यह सृष्टि उत्पन्न हुई है।

3.4.2 विराट्पुरुष द्वारा सृष्टि

संस्कृत साहित्य परम्परा में विराट्पुरुष का वर्णन अनेक स्थानों पर मिलता है। सर्वप्रथम ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में विराट्पुरुष का वर्णन मिलता है – **"पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्"**। इस प्रकार ऋग्वेद में विराट्पुरुष के सर्वकालत्व तथा सर्वव्यापकत्व का वर्णन मिलता है। विराट्पुरुष का वर्णन श्रीमद्भगवद्गीता के एकादश अध्याय में भी प्राप्त होता है। इसी विराट्पुरुष से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ। इसी ब्रह्माण्ड में भूर्भुवादि चतुर्दशलोक, उन लोकों में अनेकों सौर-परिवार, उन सौर परिवारों में अनेकों ग्रह-उपग्रह, उनमें अनेकों सृष्टियां तथा उनमें अनेक प्राणी फिर जीव और अजीव सहित समस्त चराचर जगत् की रचना हुई। वैदिक साहित्य में विराट्पुरुष को "सहस्रशीर्षा पुरुष" कहते हैं, अर्थात् सहस्रों सिरों वाला पुरुष। विराट्पुरुष के सिर, पैर, भुजाएं आदि अंग सहस्रों की संख्या में हैं, इसी विराट् पुरुष से समस्त सृष्टि उत्पन्न होती है तथा इसी में समाहित हो जाती है। यह विराट्पुरुष सर्वव्यापक है और तीनों कालों का नियन्ता भी है। ऋग्वेद का पुरुषसूक्त इसी विराट् पुरुष का विस्तार से वर्णन करता है, यह विराट् पुरुष एक से अनेक के रूप में सृष्टि का विस्तार करता है। पुरुषसूक्त के अनुसार समस्त द्यौ, आकाश, दिशाएं, जीव जगत् इसी विराट्पुरुष द्वारा उत्पन्न हैं।

3.4.3 विश्वकर्मा द्वारा सृष्टि

"विश्वेषु कर्म व्यापारो यस्य स विश्वकर्मा" अर्थात् विश्व का सृजन करना जिसका कार्य है वही विश्वकर्मा है। विश्वकर्मा को पौराणिक साहित्य में सृजनकर्ता कहा गया है। विश्वकर्मा का अर्थ ही विश्व का कर्ता होता है। वैदिक साहित्य में स्पष्ट रूप से उल्लेख मिलता है कि यह सम्पूर्ण सृष्टि परमेश्वर द्वारा निर्मित हुई है। इसी परमेश्वर के गुणों की संज्ञा देवता नाम से प्रसिद्ध है। ये देवता ही परमेश्वर की आज्ञा से सृष्टि करते हैं। विश्वकर्मा, सविता, इन्द्र, विष्णु, वरुण आदि देवता परमेश्वर की आज्ञा से विभिन्न कार्यों का संपादन करते हैं। इन्हीं देवताओं में से एक विश्वकर्मा भी हैं।

अथर्ववेद का उपवेद स्थापत्यवेद है। स्थापत्य साहित्य में विश्वकर्मा प्रमुख आचार्य के रूप में भारतीय ज्ञानाकाश में सूर्य की भाँति विद्यमान हैं। स्थापत्यशास्त्र के अनुसार विश्वकर्मा ही सृष्टि के निर्माता हैं, इस सम्पूर्ण चराचर जगत की उत्पत्ति विश्वकर्मा द्वारा हुई है। स्थापत्यशास्त्र वर्तमान में वास्तुशास्त्र के नाम से भी जाना जाता है। अपराजितपृच्छा, समराङ्गणसूत्रधार आदि वास्तुशास्त्रीय प्रमुख ग्रन्थों में विश्वकर्मा को ही सृष्टिनिर्माता के रूप में रखा गया है। वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में विश्वकर्मा की चर्चा विस्तार से की गई है परन्तु इस विचार का बीज मुख्य रूप से वैदिक साहित्य में ही हमें दृष्टिगोचर होता है।

3.4.4 प्रजापति द्वारा सृष्टि

प्रजा के पति अर्थात् प्रजा के स्वामी को प्रजापति कहा गया। सर्वप्रथम ऋग्वेद में प्रजापति का वर्णन प्राप्त होता है - **"हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्"**अर्थात् परमात्मा से सर्वप्रथम प्रजापति उत्पन्न हुए और वे उत्पन्न होते ही सभी लोकों के स्वामी बन गए। यही प्रजापति वैदिक श्रुतियों में हिरण्यगर्भ नाम से भी प्रसिद्ध हुए। पौराणिक साहित्य में प्रजापति को ब्रह्मा की पहली उत्पत्ति मानी जाती है, आगे चलकर यही प्रजापति विभिन्न प्रकार की सृष्टियों का सृजन करते हैं। महाभारत के मोक्षधर्म में इक्कीस तथाहरिवंशपुराण में तेरह प्रजापतियों का वर्णन प्राप्त होता है, इसके अनुसार पितामह ब्रह्मा ने सर्वप्रथम लोकों के कर्ता प्रजापतियों का सृजन किया तत्पश्चात् इन प्रजापतियों ने लोकों की रक्षा की और नई सृष्टि उत्पन्न की।

1. ब्रह्माण्डोत्पत्ति के आधुनिक सिद्धान्त

ग्रहों, तारों, आकाशगंगाओं, जीव-जगत्, पदार्थ और ऊर्जा के अन्य सभी रूप ब्रह्माण्ड में समाहित हैं। सर्वप्रथम आधुनिक खगोलशास्त्र के मुख्य सिद्धान्त दो प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिकों प्लेटो तथा अरस्तू ने प्रस्तुत किए। आधुनिक संदर्भ में दो प्रमुख सिद्धान्त प्रसिद्ध थे, इसमें पहला भूकेन्द्रिक सौरपरिवार तथा दूसरा सूर्यकेन्द्रिक सौरपरिवार ये दो सिद्धान्त प्रसिद्ध हैं। इसी सिद्धान्त के आधार पर दूसरी शताब्दी में टॉलमी द्वारा विस्तार से भू-केन्द्रिक सिद्धान्त प्रस्तुत किया था। भारतवर्ष के महान वैज्ञानिक आर्यभट्ट ने सर्वप्रथम पृथ्वी को ही ब्रह्माण्ड का केन्द्र माना, परन्तु उन्होंने ब्रह्माण्ड को स्थिर माना, और कहा कि पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है। उनका यह सिद्धान्त खगोल जगत में "भू-भ्रमण सिद्धान्त" नाम से प्रसिद्ध है।

द्वितीय महत्वपूर्ण सिद्धान्त यूरोप के वैज्ञानिक निकोलस कोपरनिकस ने प्रस्तुत किया। यह भू-केन्द्रिक सिद्धान्त के विपरीत सूर्य केन्द्रिक सिद्धान्त था। सूर्य-केन्द्रिक सिद्धान्त के अनुसार सूर्य सौरपरिवार का केन्द्र है, पृथ्वी तथा अन्य ग्रह सूर्य के चारों ओर घूमते हैं। कोपरनिकस के सिद्धान्त का भी यूरोप में पर्याप्त विरोध हुआ। इसके बाद दुनियां के अलग-अलग कोनों में खगोल विज्ञान में अनेकों खोजें हुई। जर्मनी के जोहांस केपलर ने ग्रहों की गतियों का स्पष्टीकरण दिया तथा इटली के वैज्ञानिक गैलीलियो ने दूरबीन की खोज की तथा अनेकों खोजें हुई, जो आज भी निरन्तर जारी हैं। ब्रह्माण्ड को समझने के लिए प्रमुख रूप से निम्न आधुनिक सिद्धान्तों का अध्ययन करना आवश्यक है।

1. स्थिरदशा सिद्धान्त
2. विस्फोट सिद्धान्त
3. स्पन्दनशील सिद्धान्त

3.5 स्थिरदशा सिद्धान्त

ब्रह्माण्ड में न सिकुड़न दिखाई पड़ती है और न ही विस्तार दिखाई पड़ता है। व्यवहारिक रूप में यही दिखाई भी पड़ता है, इस प्रकार जो भी आकाश को देखेगा वह यही समझेगा कि यह स्थिर है। उस स्थिति में ब्रह्माण्ड को स्थिर कह सकते हैं।अल्बर्ट आइन्स्टाइन को इस सिद्धान्त का जनक माना जाता है। उनका मानना था कि ब्रह्माण्ड स्थिर है और सदैव स्थिर दशा में ही रहता हैऔर यह ब्रह्माण्ड करोड़ों वर्षों से स्थिर है। आइन्स्टाइन के इस सिद्धान्त को बीसवीं सदी के ब्रह्माण्ड विज्ञानी फ्रेड हॉयल ने अंग्रेज गणितज्ञ हरमान बांडी और अमेरिकी वैज्ञानिक थोमस गोल्ड के साथ संयुक्त रूप से मिलकर स्पष्ट किया। यह सिद्धान्त स्थिरदशा सिद्धान्त तथा स्थायी दशा सिद्धान्त के नाम से विख्यात है। इसके अनुसार न तो ब्रह्माण्ड का आदि है और न ही इसका कभी अन्त होगा। यह सदैव ही स्थिर दशा में विद्यमान रहा है और रहेगा भी। यह समयानुसार अपरिवर्तनशील है, यद्यपि इस सिद्धान्त में प्रसरणशीलता समाहित है, परन्तु फिर भी ब्रह्माण्ड के घनत्व को स्थिर रखने के लिए पदार्थ इसमें स्वतः रूप से उत्पन्न और परिवर्तित होता रहता है।

3.6 विस्फोट सिद्धान्त

आधुनिक सिद्धान्तों में सर्वाधिक मान्य और प्रख्यात यह सिद्धान्त ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति को विस्फोट द्वारा सिद्ध करता है। विस्फोट सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्माण्ड में सर्वप्रथम विस्फोट हुआ, उस विस्फोट से ही ब्रह्माण्ड में सृष्टि उत्पन्न हुई। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन हब्बल ने किया। उनका मानना था कि ब्रह्माण्ड फैल रहा है तथा उन्होंने यह तर्क दिया कि ब्रह्माण्ड में आकाशगंगाएं लगातार एक दूसरे से दूर जा रही हैं, अतः अतीत में किसी समय ये आकाशगंगाएं अवश्य ही एक साथ रही होंगी। उनका मानना था कि दस से पंद्रह अरब वर्ष पूर्व ब्रह्माण्ड की सम्पूर्ण द्रव्यराशि एक स्थान पर एकत्रित थी, उस समय ब्रह्माण्ड का घनत्व असीमित था, तथा सम्पर्ण ब्रह्माण्ड अति सूक्ष्म बिन्दु में समाहित था। किसी अज्ञात कारण से इसी सूक्ष्म बिन्दु में

विस्फोट हुआ और उस विस्फोट से द्रव्य इधर-उधर छिटक गया। इसी स्थिति में अकारण ही दिक्-काल की भी उत्पत्ति हुई। इस घटना को खगोलविदों द्वारा ब्रह्माण्डीय विस्फोट का नाम दिया जाता है। एक अंग्रेज विज्ञानी सर फ्रेड हॉयल ने इस सिद्धान्त की आलोचना करते समय मजाक में "बिग-बैंग"इस शब्द का प्रयोग किया था, इसीलिए इस सिद्धान्त को बिग-बैंग सिद्धान्त भी कहा जाता है। ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के सिद्धान्तों में विस्फोट सिद्धान्त सर्वाधिक मान्यता प्राप्त सिद्धान्त है। एक ओर जहां स्थिरदशा सिद्धान्त में पदार्थो का सृजन निरन्तर प्रक्रिया है, वहीं विस्फोट सिद्धान्त के अनुसार पदार्थों का सृजन अकस्मात् हुआ।

3.7 स्पन्दनशील सिद्धान्त

स्पन्दनशील का अर्थ सिकुड़ने और फैलने की नियमित प्रक्रिया से है, इसके अनुसार ब्रह्माण्ड फैलता रहता है तथा सिकुड़ता रहता है। इस सिद्धान्त को दोलायमान सिद्धान्त भी कहते हैं। इसी फैलने और सिकुड़ने की अवस्था को स्पन्दनशील कहते हैं। यह फैलने और सिकुड़ने की लगातार स्थिति बनी रहती है। वर्तमान में हमारा ब्रह्माण्ड फैल रहा है, परन्तु एक सीमित अवस्था में फैलने के बाद इसमें सिकुड़न आ जाएगी। इसी सिद्धान्त को स्पन्दनशील सिद्धान्त कहा जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्माण्ड के सिकुड़न और प्रसरण की प्रक्रिया करोड़ो वर्षों के अन्तराल में होती है। डॉ. एलन संडेज को इस सिद्धान्त का प्रवर्तक माना जाता है। उनका मानना है कि आज से 120 करोड़ वर्ष पहले एक विस्फोट हुआ तभी से यह ब्रह्माण्ड फैलता जा रहा है। 290 करोड़ वर्ष बाद गुरुत्वाकर्षण बल के कारण इसका विस्तार रुक जाएगा और इसके बाद इसमें संकुचन की प्रक्रिया शुरू हो जाएगी। यह ब्रह्माण्ड संकुचित होते-होते अनन्त रूप से सिकुड़ते हुए एक अतिसूक्ष्म बिन्दुमय आकार धारण कर लेगा, उसके बाद अत्यन्त गुरुत्वाकर्षण के कारण ही इसमें पुनः विस्फोट होगा और इसमें पुनः फैलाव प्रारम्भ हो जाएगा। यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहेगी, इसी सिद्धान्त को स्पन्दनशील सिद्धान्त कहा जाता है।

अभ्यास प्रश्न

प्र. 1. भारतीय वाङ्मय के आधार पर सृष्टि की उत्पत्ति के कितने सिद्धान्त बताए गए हैं?
प्र. 2. तीन गुणों के नाम बताइये।
प्र. 3. आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति के कितने सिद्धान्त बताए गए हैं?
प्र. 4. तैत्तिरीयोपनिषद् के अनुसार सर्वप्रथम क्या उत्पन्न हुआ?
प्र. 5. भारतीय दर्शन के आधार पर सृष्टि का मूल किसे माना गया है?
प्र. 6. सांख्य के अनुसार प्रकृति क्या है?
प्र. 7. दशाङ्गुल न्याय क्या है?
प्र. 8. नासदीय सूक्त में क्या वर्णन मिलता है?
प्र. 9. श्रीमद्भागवत् के अनुसार सृष्टि का वर्णन क्या है?
प्र. 10. पुरुषसूक्त के अनुसार सृष्टि कैसे उत्पन्न हुई?
प्र. 11. विश्वकर्मा को क्या कहा जाता है?

प्र. 12. वैदिक श्रुतियों में हिरण्यगर्भ को क्या कहा गया?

प्र. 13. स्थिरदशा किसे कहते हैं?

प्र. 14. विस्फोट सिद्धान्त सृष्टि किस प्रकार मानता है?

प्र. 15. स्पन्दनशील सिद्धान्त क्या है?

3.8 स्थिरदशा सिद्धान्त और भारतीय सृष्टि विज्ञान

स्थिरदशा सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्माण्ड एक स्थिर सत्ता है तथा इसका कोई भी रचयिता नहीं है, और ना ही इसका कभी अन्त होगा। इसी प्रकार पर यदि हम भारतीय सृष्टिविज्ञान की बात करें तो यहां भी पदार्थ के परमाणुरूप को स्थिर ही माना गया है, यहाँ स्थिर से उत्पत्ति और विनाश का अभाव है। यह परमाणु सदा ही विद्यमान रहते हैं, परन्तु इनमें परिवर्तन भी समय-समय पर होते रहते हैं। ये परिवर्तन एक सीमित काल तक ही होते हैं। जिस वस्तु की उत्पत्ति होती है, उसका विनाश भी निश्चित है। यह उत्पत्ति और विनाश का क्रम भी स्थिर ही है। क्योंकि कोई नहीं जानता कि यह सृष्टि कैसे उत्पन्न हुई, और इसका रचयिता कौन है? इस सम्पूर्ण सृष्टि के कारणों को समझने के लिए भारतीय मनीषियों ने समय-समय पर कई सिद्धान्त दिए हैं। परन्तु वे इन सिद्धान्तों से भी पूर्ण रूप से सन्तुष्ट नहीं हैं, इसीलिए उन्होंने इसे नेति-नेति कहकर इसकी अनन्तता को स्वीकार किया है।

दार्शनिक दृष्टि से प्रकृति का मूल स्वरूप तीन गुणों की साम्यावस्था है, ये तीन गुण हैं – सत्त्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण। तीनों गुण प्रकृति में सदा ही विराजमान रहते हैं, परन्तु इन तीनों के सन्तुलन में जब विकृति उत्पन्न होती है तब उस स्थिति में सृष्टि उत्पन्न मानी जाती है। अतः प्रकृति में विकृति ही सृष्टि कहलाती है। यह सृष्टि लगातार होती रहती है, और नष्ट भी होती रहती है। इस प्रकार यह क्रम अनन्त काल तक चलता रहता है। सृष्टि का बनना और नष्ट होना एक नियमित प्रक्रिया है, यह परिवर्तन प्रकृति में सदा ही बना रहता है। परन्तु प्रकृति कभी भी परिवर्तित नहीं रहती, केवल उसके गुणों में विकृति होती है। इस प्रकार भारतीय दार्शनिक तथा वैज्ञानिक चिन्तन एक दृष्टि में सृष्टि को नित्य मानता है, और इसमें होने वाले परिवर्तनों को गुणों के असन्तुलन का परिणाम। ये सिद्धान्त पाश्चात्य वैज्ञानिकों द्वारा दिए गए स्थिरदशा सिद्धान्त से साम्यता रखते हैं। अनादि और अनन्त का भाव ही स्थिरता है। इसी स्थिरता के आधार पर ही आधुनिक वैज्ञानिकों ने स्थिरदशा सिद्धान्त को प्रस्तुत किया।

3.8.1 विस्फोट सिद्धान्त तथा भारतीय सृष्टि विज्ञान-

ब्रह्माण्डोत्पत्ति के आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धान्तों में विस्फोटसिद्धान्त सर्वाधिक मान्य सिद्धान्त है। यह सिद्धान्त ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति को एक बिन्दु में से मानता है। इसके अनुसार ब्रह्माण्ड एक महाविस्फोट के साथ फैलता है तथा उसके बाद यह विस्तार को धारण करता है। भारतीय वैज्ञानिक ज्ञान परम्परा के अनुसार ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति एक हिरण्यमय अण्डे के फूटने से हुई। यह हिरण्याण्ड सर्वप्रथम दो भागों में विभाजित हुआ और इसके दोनों कपालों से पृथिव्यादि समस्त प्रकार की सृष्टि उत्पन्न हुई। इस विषय में ऋग्वेद में मिलता है –

"हिरण्यगर्भः समवर्ततात्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्"

अर्थात् सर्वप्रथम एक हिरण्याण्ड में विस्फोट हुआ और उसके गर्भ से एक शक्तिशाली पुरुष उत्पन्न हुआ और वह समस्त लोकों में व्याप्त हो गया। प्रसिद्ध ज्योतिर्विद प्रो.देवी प्रसाद त्रिपाठी जी ने अपनी पुस्तक भुवनकोशविमर्श में इस हिरण्याण्ड की तीन गतियां बताई हैं – पर्यप्लवन, प्रसर्पण और समेषण। पर्यप्लवन की गति में यह हिरण्याण्ड सर्वप्रथम अक्षभ्रमण की अवस्था अर्थात् अपनी धुरी पर घूम रहा था। फिर यह प्रसर्पण की गति को प्राप्त हुआ और इसमें गतिशीलता प्रारम्भ हुई और इसमें वृद्धि हुई। इसके बाद यह समेषण की स्थिति में आया और इसमें गम्भीर शब्दनाद के साथ इसका प्रसार प्रारम्भ हो गया।

इस प्रकार भारतीय हिरण्यगर्भ सिद्धान्त और आधुनिक विस्फोट सिद्धान्त में समानता मिल जाती है। जिसमें ब्रह्माण्ड की पर्यप्लवन स्थिति को हम आधुनिक मूल बिन्दु मान सकते हैं जिसे आधुनिक वैज्ञानिकों ने "प्रधान परमाणु" कहा। उस परमाणु में जब शब्दनाद के साथ गतिशीलता प्रारम्भ हुई तथा यह प्रसर्पण अवस्था में था। आधुनिक वैज्ञानिकों ने इस अवस्था को ही महाविस्फोट कहा है। हिरण्याण्ड की तीसरी अवस्था जिसे भारतीय ऋषियों ने समेषण अवस्था कहा है, उसमें हिरण्याण्ड का विस्तार होता है। यह महाविस्फोट के बाद के विस्तार की ओर संकेत करता है। अर्थात् ब्रह्माण्ड का विस्तार प्रारम्भ हुआ। अतः ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के सन्दर्भ में जो हिरण्यगर्भ सिद्धान्त के अन्तर्गत कहा गया है, प्रायः वही सिद्धान्त आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा भी प्रस्तुत किया गया है।

भारतीय दार्शनिक पद्धति के अनुसार भी प्रायः इसी प्रकार का वर्णन ग्रन्थों में मिलता है। सांख्यशास्त्र के अनुसार मूल प्रकृति में पुरुष के तेज से विक्षोभ हुआ और उसी विक्षोभ के बाद सृष्टि की उत्पत्ति हुई। समस्त प्रकार के ग्रह-नक्षत्रों की रचना भी इसी विस्फोट के कारण हुई। आधुनिक विस्फोट सिद्धान्त के अनुसार यह दार्शनिक परिकल्पना इससे मिलती-जुलती हुई है। यहां मूल बिन्दु अर्थात् प्रधान परमाणु को हम प्रकृति का स्वरूप मान सकते हैं। उसमें अत्यधिक ऊर्जा के प्रभाव को हम सांख्य पुरुष की ऊर्जा के रूप में मान सकते हैं। जिस प्रकार प्रकृति का पुरुष की ऊर्जा के साथ संयोग से प्रकृति में विक्षोभ हुआ। कुछ इसी तहत आधुनिक वैज्ञानिकों का भी मानना है कि प्रधान परमाणु के पास अत्यधिक ऊर्जा की सघनता के कारण इस मूल बिन्दु पर विस्फोट हुआ। इस प्रकार भारतीय प्राचीन सिद्धान्तों के अनुरूप ही आधुनिक वैज्ञानिक भी अपनी खोजों के अनुसार निष्कर्ष तक पहुंच रहे हैं।

3.8.2 स्पन्दनशील सिद्धान्त तथा भारतीय सृष्टिविज्ञान-

स्पन्दनशील सिद्धान्त आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा ब्रह्माण्ड के विस्तार और संकुचन को परिभाषित करने के लिए प्रस्तुत किया गया है। अन्य अर्थों में कहें तो यह सिद्धान्त ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति और विनाश को परिभाषित करता है। ब्रह्माण्ड तथा इस सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति होती है तथा यह सृष्टि नष्ट भी होती है। इस सिद्धान्त को हमारे प्राचीन ऋषियों ने स्पष्ट भी किया है। प्राचीन भारतीय वैज्ञानिकों द्वारा परमाणुओं के संयोग से सृष्टि को परिभाषित किया गया है। भारतीय

दार्शनिक सिद्धान्तों के अनुसार पदार्थ का परमाणुरूप स्थिर है, तथा वह कभी भी नष्ट नहीं होता। यही परमाणु अन्य परमाणु के साथ मिलकर सृष्टि करता है, तथा प्रलय की अवस्था में स्थूल स्वरूप से परमाणुरूप में पुनः परिवर्तित हो जाता है। परमाणु के इसी स्थूल स्वरूप धारण करने को हम परमाणु का विस्तार तथा पुनः परमाणुरूप में परिवर्तित होने को संकुचन की प्रक्रिया के माध्यम से स्पष्ट कर सकते हैं।

हमारे प्राचीन ऋषियों ने ब्रह्माण्ड को स्थिर, अनादि और अनन्त नहीं माना। उनके अनुसार यह ब्रह्माण्ड एक असीमित शक्ति के द्वारा उत्पन्न होता है, और नष्ट भी होता है। इसीलिए भारतीय शास्त्रों में प्रलय की परिकल्पना हमें प्राप्त होती है। ब्रह्माण्ड की इस विस्तारित तथा संकुचित होने की प्रक्रिया को प्रलय सिद्धान्त द्वारा आसानी से समझा जा सकता है। भारतीय ग्रन्थों में वर्णन मिलता है कि यह सब उत्पत्ति और प्रलय का संचालन परमात्मा करता है। परमात्मा के ही संकल्प मात्र से सृष्टि उत्पन्न होती है तथा नष्ट भी होती है। तैत्तिरीयोपनिषद् में वर्णन मिलता है कि सर्वप्रथम आकाश उत्पन्न हुआ, उसके बाद क्रमशः वायु-अग्नि-जल-पृथ्वी उत्पन्न हुए –**एतस्मादात्मन आकाश सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या औषधयः। ओषधेभ्योऽन्नम्। अन्नात्पुरुषः।** अर्थात् सर्वप्रथम आकाश उत्पन्न हुआ। आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथिवी, पृथिवी से औषधियां, औषधियों से अन्न तथा अन्न से पुरुष उत्पन्न हुआ। इस प्रकार इस ऋचा में सर्वशक्तिशाली भौतिक रचना आकाश की मानी गई है। इस प्रकार समग्र सृष्टि की रचना होती है, परन्तु यह सृष्टि अनन्त नहीं है, यह प्रलय अवस्था में समाप्त भी होती है। सृष्टि के इस प्रलय को प्राकृतप्रलय कहा जाता है, इसी को महाप्रलय भी कहते हैं। पौराणिक वर्णनों के अनुसार सृष्टि का रचनाकार ब्रह्मा है, लेकिन यह ब्रह्मा भी अनन्त नहीं है। एक निश्चित समय बाद इसकी आयु पूर्ण हो जाती है। परन्तु जब ब्रह्मा की आयु पूर्ण होती है तब यह सृष्टि भी प्रलय को प्राप्त होती है।

इस महाप्रलय में सभी प्रकार के पदार्थ अपने नित्य परमाणु स्वरूप के प्राप्त कर क्रमशः विलय होते हैं। इस प्रक्रिया में पृथिवी का परमाणुरूप जल में, जल का परमाणुरूप अग्नि में, अग्नि का परमाणुरूप वायु में, वायु का परमाणुरूप आकाश में क्रमशः विलीन हो जाते हैं। यही परमाणुओं की विलीन होने की प्रक्रिया को हम ब्रह्माण्ड का संकुचन भी कह सकते हैं। इसके बाद पुनः नवीन सृष्टि की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। भास्कराचार्य बीजगणित नामक पुस्तक में इसी सिद्धान्त को खहर राशि (जिसमें शून्य भाजक होता है) में अविकारत्व को दृष्टान्त के रूप मेंइस प्रकार कहते हैं-

अस्मिन् विकारः खहरे न राशावपि प्रविष्टेष्वपि निःसृतेषु।
बहुष्वपि स्याल्लयसृष्टिकालेऽनन्तेऽच्युते भूतगणेषु यद्वत्।।

अर्थात् खहर राशि (जिसमें हर शून्य हो) में किसी राशि को जोडने या घटाने से शून्य हर में उसी प्रकार कोई विकार नहीं होता, जिस प्रकार प्रलय काल में भगवान अच्युत के शरीर में अनेक जीव प्रविष्ट हो जाते हैं तथा सृष्टिकाल में उनके शरीर से अनेक जीव निकलते हैं तथापि

उनके शरीर में कोई विकार नहीं होता है, अर्थात् ज्यों का त्यों रहता है। यदि भगवान को मूल बिन्दु या परमाणु समझें, तो स्पन्दनशील सिद्धान्त से साम्यता मिलती है। उत्पत्ति और प्रलय का यह क्रम निरन्तर चलता रहता है, यही स्पन्दनशील सिद्धान्त है।

भारतीय विज्ञान प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ की मृत्यु को निश्चित मानता है, और जिसकी मृत्यु होती है उसकी उत्पत्ति भी निश्चित ही है। अतः उत्पत्ति और लय का यह क्रम निरन्तर चलता रहता है। श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णन मिलता है कि –

जातस्य हि ध्रुवं मृत्युः ध्रुवं जन्म मृतस्य च।

अर्थात् जो पैदा हुआ है उसकी मृत्यु निश्चित है, और जो मर गया है वह पुनः जन्मता है। इस प्रकार स्पन्दनशील सिद्धान्त की साम्यता भारतीय सृष्टिविज्ञान से साम्यता अवश्य रखती है। उत्पत्ति और प्रलय का यह क्रम निरन्तर चलता रहता है। यही स्पन्दनशील सिद्धान्त है।

अभ्यास प्रश्न-2

प्र. 16. स्थिरदशा का अर्थ क्या है?

प्र. 17. स्थिरदशा को प्राचीन भारतीय सिद्धान्त के अनुसार कैसे समझेंगे?

प्र. 18. स्थिरता का क्या अर्थ है?

प्र. 19. विस्फोट सिद्धान्त की भारतीय सिद्धान्तों से क्या साम्यता है?

प्र. 20. सांख्य के अनुसार विस्फोट की समानता क्या है?

प्र. 21. स्पन्दनशील सिद्धान्त को भारतीय सिद्धान्तों के आधार पर परिभाषित किस प्रकार किया जा सकता है?

3.4 सारांश

ब्रह्माण्ड के विषय में प्राचीन भारतीय तथा आधुनिक विज्ञान के अनेकों सिद्धान्त वैज्ञानिकों द्वारा प्रस्तुत किए गए हैं। आधुनिक और प्राचीन भारतीय सिद्धान्तों की बात करें तो उनमें साम्यता अवश्य ही दिखती है। आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा सृष्टि के विषय में स्थिरदशा, विस्फोट, स्पन्दनशीलता ये तीन सिद्धान्त दिए गए हैं। प्राचीन भारतीय सृष्टिप्रक्रिया के अध्ययन के आधार पर हम देखते हैं कि परमाणुओं का नित्यत्त्व स्थिर है, यह स्थिरदशा सिद्धान्त से साम्यता रखता है। द्वितीय आधुनिक सिद्धान्त विस्फोट सिद्धान्त के अनुसार समग्र सृष्टि एक महान विस्फोट से उत्पन्न हुई। इसकी साम्यता के विषय में यदि बात की जाए तो प्रकृति की साम्यावस्था में सृष्ट्युत्पत्ति के कारणस्वरूप त्रिगुणों के परस्पर टकराने से जो विकार उत्पन्न होते हैं वह विस्फोट सिद्धान्त से साम्यता रखता है। तृतीय और महत्वपूर्ण आधुनिक सिद्धान्त स्पन्दनशील है। स्पन्दनशील सिद्धान्त भौतिक प्रकृति को अनित्य मानता है, इसके अनुसार सृष्टि में विस्तार और संकुचन एक नियमित प्रक्रिया है। विस्तार के समय सृष्टि उत्पन्न होती है और संकुचन सृष्टि के विनाश की प्रक्रिया है। भारतीय मत में भी सृष्टि को उत्पत्ति और विनाश के सहित ही माना गया है। अतः स्पन्दनशील सिद्धान्त सृष्टि की उत्पत्ति और विनाश के सिद्धान्त से साम्यता रखता है।

उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर हम कह सकते हैं कि आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धान्त प्राचीन भारतीय सिद्धान्तों के साथ साम्यता रखते हैं।

3.5 पारिभाषिक शब्दावली

जिज्ञासा	-	जानने की इच्छा
विमर्श	-	विचार-चिन्तन
गूढतम	-	अत्यन्त रहस्यमयी
अबूझ	-	अनसुलझी
रचयिता	-	रचना करने वाला
व्यापकता	-	अधिक विस्तार सीमा
वैदिक ऋचा	-	वेदों के मन्त्र
साम्यावस्था	-	स्थिर अवस्था
खगोलविद	-	ब्रह्माण्ड विज्ञानी
परिणत	-	परिवर्तन
पराकाष्ठा	-	अत्यन्त तीव्रता
सृजन	-	रचना, उत्पत्ति
सर्वकालत्व	-	सभी कालों में विद्यमान
सर्वव्यापकत्व	-	सभी स्थानों में विद्यमान
चराचर	-	चर और अचर
स्थापत्य	-	स्थापना से संबन्धित
भूकेन्द्रिक	-	भूमि को केन्द्र में रखकर
सूर्यकेन्द्रिक	-	सूर्य को केन्द्र में रखकर
विपरीत	-	उल्टा
अपरिवर्तनशील	-	जिसमें परिवर्तन नहीं होता
अकारण	-	विना कारण के
अकस्मात्	-	अचानक
सिकुड़ना	-	संकुचित होना
रचयिता	-	रचना करने वाला
अक्षभ्रमण	-	धुरी पर घूमना
असीमित	-	सीमा से रहित
नवीन	-	नया
साम्यति	-	समानता
समग्र	-	सम्पूर्ण

3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. भारतीय साहित्य वाङ्मय के आधार पर ब्रह्माण्डोपत्ति के प्रमुख चार सिद्धान्त हमें प्राप्त होते हैं। जिनमें विश्वकर्मा द्वारा सृष्टिब्रह्मा द्वारा सृष्टि, प्रजापति द्वारा सृष्टि तथा विराट् , पुरुषद्वारा सृष्टि का वर्णन हमें मिलता है।
2. सत्व-रज-तम नामक तीन गुण हैं।
3. आधुनिक खगोलविदों द्वारा तीन प्रमुख सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया गया है – ये विस्फोट सिद्धान्तस्थिरदशा सिद्धान्त तथा स्पन्दनशील सिद्धान्त हैं। ,
4. तैत्तिरीय उपनिषद् के अनुसार सर्वप्रथम आकाश उत्पन्न हुआ।
5. पृथ्वी-जल-तेज-वायु-आकाश ये पञ्चमहाभूत सृष्टि की उत्पत्ति का मूल माने गए हैं।
6. सांख्य के अनुसार सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों की साम्यावस्था का नाम प्रकृति है।
7. दशाङ्गुलन्याय के अनुसार पृथ्वी से दशगुना जल, जल से दशगुना अग्नि, अग्नि से दशगुना वायु, वायु से दशगुना आकाश, आकाश से दशगुना अहंकार, अहंकार से दशगुना महत्तत्त्व, महत्तत्त्व से दशगुना मूलप्रकृति और यह मूलप्रकृति भगवान के एक पाद में है।
8. नासदीयसूक्त में वर्णन मिलता है कि सृष्टि से पूर्व कुछ भी नहीं था पश्चात् स्वयमेव शुद्धचैतन्य परब्रह्म की सत्ता उत्पन्न हुई।
9. श्रीमद्भागवत के अनुसार भगवान विष्णु के मन में सृष्टि की जिज्ञासा उत्पन्न हुई तत्पश्चात् भगवान विष्णु के नाभिकमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए। इसी ब्रह्मा ने सम्पूर्ण सृष्टि की रचना की।
10. पुरुषरूक्त के अनुसार सृष्टि का रचनाकार विराट्पुरुष है।
11. विश्वकर्मा को पौराणिक साहित्य में सृजनकर्ता कहा गया है। विश्वकर्मा का अर्थ ही विश्व का कर्ता होता है।
12. प्रजापति वैदिक श्रुतियों में हिरण्यगर्भ नाम से भी प्रसिद्ध हुए।
13. जब ब्रह्माण्ड में न सिकुड़न दिखाई पड़ती है और न ही विस्तार दिखाई पड़ता है, उस स्थिति को स्थिरदशा कहा जाता है।
14. विस्फोट सिद्धान्त के अनुसार सृष्टि एक महाविस्फोट से उत्पन्न हुई।
15. स्पन्दनशील का अर्थ सिकुड़ने और फैलने की नियमित प्रक्रिया से हैइसके अनुसार , ब्रह्माण्ड फैलता रहता है, तथा सिकुड़ता रहता है।
16. स्थिर से अर्थ उत्पत्ति और विनाश का अभाव है
17. प्राचीन भारतीय सिद्धान्त के अनुसार प्रकृति स्थिर है, तथा पञ्चमहाभूतों के परमाणु भी स्थिर हैं।
18. अनादि और अनन्त का भाव ही स्थिरता है।

19. भारतीय सृष्टिविज्ञान के आधार पर हिरण्यगर्भ में विस्फोट होने से यह सृष्टि उत्पन्न हुई। आधुनिक विज्ञान भी सृष्टि का कारण विस्फोट को ही मानता है।
20. सांख्य के अनुसार तीनों गुणों की साम्यावस्था प्रकृति है, और प्रकृति में विकार उत्पन्न होने से सृष्टि उत्पन्न होती है, यही प्रकृति का विकार प्रकृति का विस्फोट कहलाता है।
21. भारतीय परम्परा के अनुसार उत्पत्ति और प्रलय का यह क्रम निरन्तर चलता रहता है। इसी प्रकार स्पन्दनशील सिद्धान्त में भी विस्तार और संकुचन नियमित प्रक्रिया है।

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ऋग्वेद, संस्कृत साहित्य प्रकाशन वर्ष 2016
2. खगोलीय पिण्डों का परिक्रमणकोपर्निकस, व्याख्या, तिवारी, श्रवणकुमार एवं पाण्डेय , , रमाकान्त, वाराणसी हिन्दी प्रकाशन समितिसन् 1972 ,
3. गोलपरिभाषाझा, सीताराम, दरभङ्गा, बिहार, श्रीसीताराम पुस्तकालय, संवत् 2027 ,
4. भुवनकोश विमर्श, प्रो. देवी प्रसाद त्रिपाठी, अमर ग्रन्थ पब्लिकेशन्स दिल्ली, वर्ष 2004

3.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. यजुर्वेद, संस्कृत साहित्य प्रकाशन वर्ष 2015
2. राजवल्लभवास्तुशास्त्रम्, डॉ श्रीकृष्ण जुगनू, परिमल प्रकाशन, वर्ष 2005
3. श्रीमद्भागवतपुराणम्वेदव्यास ,,गोरखपुर, गीताप्रेस, संवत् 2059
4. श्रीमद्भगवद्गीतागीताप्रेस गोरखपुर, संवत् 2048 ,

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

प्र. 1. सृष्टिविज्ञान के प्राचीन भारतीय सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिए।

प्र. 2. सृष्टिविज्ञान के आधुनिक सिद्धान्तों का वर्णन करें।

प्र. 3. स्थिरदशा सिद्धान्त की भारतीय सृष्टिविज्ञान के संदर्भ में तुलनात्मक व्याख्या करें।

प्र. 4. विस्फोट सिद्धान्त की भारतीय सृष्टिविज्ञान के संदर्भ में तुलनात्मक व्याख्या कीजिए।

प्र. 5. स्पन्दनशील सिद्धान्त की भारतीय सृष्टिविज्ञान के संदर्भ में तुलनात्मक व्याख्या करें।

प्र. 6. भारतीय सृष्टि विज्ञान और आधुनिक सिद्धान्तों के आधार पर निबन्ध लिखें।

इकाई-4 सृष्टि संरचना एवं स्वरूप

इकाई की रुपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 सृष्टि संरचना एवं स्वरूप
4.4 सारांश
4.5 पारिभाषिक शब्दावली
4.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रिय शिक्षार्थियों !

वैदिक अध्ययन से सम्बन्धित यह चतुर्थ इकाई है। इसके पूर्व की इकाइयों में आपने वैदिक सृष्टि के प्राचीन एवं आधुनिक सिद्धान्तों का विस्तृत अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई में सृष्टि संरचना एवं स्वरूप का वर्णन आपके अध्ययनार्थ प्रस्तुत है।

वैदिक साहित्य में सृष्टि के विषय पर बहुत स्थानों पर विस्तार से विचार किया गया है। लौकिक साहित्य के ग्रन्थों में भी सृष्टि संरचना के स्वरूप का सविस्तार वर्णन प्राप्त होता है। सृष्टि उत्पत्ति का क्रम इस प्रकार रहा- आकाश, ज्वलनशील वायु, अग्नि, जल और का मण्डल। नीहारिका मण्डल में ही सौर मण्डलों ने स्थान पाया। पृथ्वी की उत्पत्ति सूर्य से छिटक कर अलग होने के बाद धीरे-धीरे परिवर्तित होकर वर्तमान स्वरूप में हुई। सृष्टि उत्पत्ति के पूर्व क्या था ? सृष्टि की संरचना कैसे हुई? इससे पूर्व यह भी जानना आवश्यक है कि सृष्टि की संरचना का कार्य कब प्रारम्भ हुआ तथा सृष्टि संरचना का प्रारम्भ कब हुआ। इस इकाई में आप सृष्टि संरचना के काल तथा वेदों, वेदाङ्गादि साहित्य में वर्णित सृष्टि की संरचनाके विषय में अध्ययन करेंगे।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप—

- सृष्टि संरचना के स्वरूप की व्याख्या कर सकेंगे।
- पुराणों में सृष्टि संरचना का वर्णन कर सकेंगे
- सृष्टि संरचना को बताने में समर्थ होंगे।
- सृष्टि की संरचना का समय बता सकेंगे।
- लौकिक साहित्य के अनुसार सृष्टि संरचना के स्वरूप का विवेचन करने में समर्थ होंगे।

4.3 सृष्टि संरचना एवं स्वरूप

सृष्टि संरचना के विषय में ज्ञान प्राप्त करने से पूर्व यह भी जानना आवश्यक है कि इस चराचर जगत् का निर्माण कार्य कब प्रारम्भ हुआ। यह वैज्ञानिकों द्वारा सिद्ध हो गया है कि ब्रह्मांड की रचना के समय पृथ्वी भी अस्तित्व में आई। वैदिक विज्ञान के अनुसार सृष्टि का रचयिता "परब्रह्म" ईश्वर है । सृष्टि पूर्व ऋग्वेद के नासदीय सूत्र (१०/१२९/१ व २) के अनुसार "न सदासीन्नो ,सदासीत्त दानी । न सीद्रजो नो व्योमा परोयत ॥ "आनंदी सूत स्वधया तदेकं । तस्माद्वायान्न परःकिन्चनासि ॥" अर्थात् प्रारंभ में न सत् था न असत, न परम व्योम व व्योम से परे लोकादि, सिर्फ वह एक अकेला ही स्वयं की शक्ति से गति शून्य होकर स्थित था, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं था। तथा- "अशब्दम स्पर्शमरूपमव्ययम, तथा रसम नित्यं गन्ध्वच्च यात." (कठोपनिषद -१/३/१५) अर्थात् वह ईश्वर अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अव्यय, नित्य व अनादि है। भार रहित व गति रहित, स्वयम्भू है, कारणों का कारण, कारण-ब्रह्म है। उसे ऋषियों ने

आत्मानुभूति से जाना व वेदों में गाया। इस विषय में गहन सूचना का सन्दर्भ वेदों के चक्षु स्वरूप ज्योतिषशास्त्र है। ज्योतिषशास्त्र में सृष्ट्यादि से लेकर प्रलय पर्यन्त काल की गणना की गई है। ज्योतिषशास्त्र के सिद्धान्त ग्रन्थों में कालमानाध्याय में कहा गया है कि सृष्टि की उत्पत्ति ब्रह्मा का दिन प्रारम्भ होने पर हुई। अर्थात् ब्रह्मा का कल्प तुल्य दिन पूर्ण होने पर प्रलय होती है। तदनन्तर एक कल्प तुल्य रात्रि में वह विश्राम करते है। द्वितीय अहोरात्र प्रारम्भ होने पर वह संसार का निर्माण कार्य प्रारम्भ करते हैं।

इस प्रकार दो कल्प तुल्य ब्रह्मा का एक अहोरात्र होता है। एक कल्प में सन्धि सहित 14 मनु होते हैं। प्रत्येक मनु में 71 महायुग होते हैं। एक महायुग का मान 12000 दिव्य वर्ष होता है। दिव्य वर्ष देवताओं से सम्बन्धित वर्ष होता है जिसमें 360, देवताओं के दिन होते हैं। देवताओं के एक दिन में 360 सौरदिन होते हैं। सूर्य का एक अंश तुल्य भोगकाल एक सौर दिन कहलाता है तथा 360 सौर दिन का एक सौरवर्ष जो देवताओं का एक दिन दिन अथवा दिव्यदिन है।

एक महायुग में कृतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग तथा कलियुग नामक चारयुग सन्धि सहित होते हैं। चार हजार दिव्य वर्ष का एक कृतयुग कहा है। इस युग की जितने दिव्य वर्ष की अर्थात् 400 वर्ष की सन्ध्या होती है और उतने ही वर्षों की अर्थात् 400 वर्षों का सन्ध्यांश का समय होता है अर्थात् कृतयुग का कुल मान 4800 दिव्यवर्ष है। त्रेता युग का मान 3000 दिव्यवर्ष तथा 300 वर्ष की संध्या 300 वर्ष सन्ध्यांश कुल मान 3600 दिव्यवर्ष है। द्वापर युग का मान 2000 दिव्यवर्ष, 200 दिव्यवर्ष सन्धि एवं 200 दिव्यवर्ष संध्यांश कुल मान 2400 दिव्य वर्ष तथा कलियुग का मान 1000 दिव्यवर्ष, सन्धि-संध्यांश 200 वर्ष कुल मान 1200 वर्ष है। इस प्रकार कुल मान 4800+3600+2400+1200=12000 दिव्यवर्ष एक महायुग का मान होता है।

देव युगों को 1000 से गुण करने पर जो काल परिणाम निकलता है, वह ब्रह्मा का एक दिन और उतने ही वर्षों की एक रात समझना चाहिए। यह ध्यान रहे कि एक देव वर्ष 360 मानव वर्षों के बराबर होता है। जो लोग उस एक हजार दिव्य युगों के परमात्मा के पवित्र दिन को और उतने की युगों की परमात्मा की रात्रि समझते हैं, वे ही वास्तव में दिन-रात = सृष्टि उत्पत्ति और प्रलय काल के विज्ञान के वेत्ता लोग हैं। इस आधार की सृष्टि की आयु = 12000 ×1000 देव वर्ष = 12000000 देव वर्ष 12000000×360 = 4320000000 मानव सौरवर्ष। अतः 12000000 देव वर्ष = 4320000000 मानव वर्ष पहले जो बारह हजार दिव्य वर्षों का एक दैव युग कहा है, इससे 71 (इकहत्तर) गुणित अर्थात् 12000×71 = 852000 दिव्य वर्षों का अथवा 852000×360= 306720000 वर्षों का एक मन्वन्तर का काल परिणाम गिना गया है। इस प्रकार वह महान् परमात्मा असंख्य मन्वन्तरों को, सृष्टि उत्पत्ति और प्रलय को बार-बार करता रहता है, अर्थात् सृष्टि संरचना प्रवाह से अनादि है। उक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि 4320000000 सौरवर्ष पूर्व ब्रह्मा का दिन प्रारम्भ हुआ तथा सृष्टि की रचना का कार्य प्रारम्भ हुआ।

सृष्टि की रचना का प्रारम्भ कब हुआ ? इस विषय पर विचार करने के पश्चात इस विषय पर विचार करना आवश्यक है कि सृष्टि में मानव की उत्पत्ति कब हुई। सूर्यसिद्धान्त में इस विषय पर विचार किया गया है। समस्त वैदिक वाङ्मय के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि सृष्टि के रचयिता परब्रह्म हैं। वैदिक वाङ्मय में परब्रह्म को ही प्रजापति, विश्वकर्मा, हिरण्यगर्भ, विराट पुरुष आदि के नाम से सम्बोधित किया गया है। वेदाङ्ग-ज्योतिषशास्त्र के आर्षग्रन्थ सूर्यसिद्धान्त के कालमानाध्याय में वर्णन सृष्टि काल के विषय इस प्रकार से वर्णन आया है – **'ग्रहर्क्ष-देव-दैत्यादि सृजतोऽस्य चराचरम्। कृताद्रिवेदा दिव्याब्दाः शतघ्ना वेधसो गताः'।** अर्थात् ग्रह, नक्षत्र, देव, दैत्य आदि चर (जंगम जीव-जन्तु) अचर (स्थावर वृक्ष पर्वतादि) की रचना करने में ब्रह्मा को कल्पारम्भ से शत गुणित 474 दिव्य वर्ष अर्थात् 474×100 = 47400 दिव्य वर्ष बीत गए। एक दिव्यवर्ष में होते हैं अर्थात 47400 × 360 = 17064000 सौर वर्ष। तथा 4320000000-17064000 = 4302936000 सौरवर्ष। उक्त विवेचन से सिद्ध होता है कि सूर्यसिद्धान्त के काल से 4320000000 सौर वर्ष पूर्व सृष्टि की रचना प्रारम्भ हुई तथा 4302936000 सौरवर्ष पूर्व सृष्टि की सम्पूर्ण गतिविधियों का प्रारम्भ हुआ। अर्थात ग्रह, नक्षत्रों ने चलना प्रारम्भ किया तथा पृथ्वी पर चराचर का प्रारम्भ हुआ।

वैदिक साहित्य के अनुसार सृष्टि प्रक्रिया का उद्देश्य—

सृष्टि संरचना के स्वरूप को लेकर सर्वप्रथम यह विचार उत्पन्न होता है कि यह दृश्यमान जगत् कहाँ से आया ? इसको लाने वाला कौन है ? इसका निर्माणकर्ता कौन है ? इत्यादि अनेक प्रश्न उत्पन्न होते हैं। इसका समाधान क्या है? यह सृष्टि संरचना का स्वरूप -क्रम अनन्त है और इसकी जिज्ञासाएँ भी अनन्त हैं। इस विषय से सम्बन्धित जिज्ञासाएँ वेदों में अनेक स्थानों पर दृष्टिगोचर होती हैं। विश्वकर्मा सूक्त में "किंस्विद्वनङ्कऽउसवृक्षआस यतोद्यावापृथिवीनिष्टतक्षुः" जिज्ञासा व्यक्त करते हुए कहा गया है कि वह कौन सा वन है तथा वन का कौन सा वृक्ष है जहाँ से आकाश तथा पृथ्वी को बनाया। इसी प्रकार ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में सृष्टि संरचना के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार किया गया है। यथा –

नासदासीन्नो सदासात्तदानीं नासीद्रजो नोव्योमा परोयत्।
किमावरीवः कुहकस्य शर्मन्नंभः किमासीद् गहनंगभीरम् ॥१॥
न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः।
अनीद वातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न पर किं च नास ॥२॥
तम आसीत्तमसा गूढमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदं।
तुच्छयेनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिना जायतैकं॥३॥
कामस्तदग्रे समवर्ततधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन्हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥४॥
तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासी३दुपरि स्विदासीत्।
रेतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ॥५॥

अर्थात् सृष्टि की संरचना से पहले उस समय वह ब्रह्म तत्व ही केवल प्राण युक्त, क्रिया से शून्य और माया के साथ जुड़ा हुआ एक रूप में विराजमान था, उस माया सहित ब्रह्म से भिन्न कुछ भी नहीं था और उससे परे भी कुछ तत्व नहीं था। शतपथ ब्राह्मण (6/11/1/6) में सृष्टि संरचना के संदर्भ में वर्णन प्राप्त होता है कि पूर्व काल में सलिल ही था उन जलों ने प्रजा की कामना से तप किया तब उनमें हिरण्मयाण्ड उत्पन्न हुआ, तथा उससे प्रजापति उत्पन्न हुए। सभूरिति व्याहरत् सेयं पृथिव्यभवद्भुव इति तदिदमन्तरिक्षमभवत् स्वरिति सासौ द्यौरभवत् । अर्थात् प्रजापति ने भू शब्द के उच्चारण के द्वारा भू लोक भुवः शब्द से अन्तरिक्ष लोक तथा स्वः शब्द के द्वारा दिव लोक अर्थात् स्वर्गादि लोकों कि संरचना की। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में 16 मन्त्रों में सृष्टि संरचना के स्वरूप का कारण विराट पुरुष को बताया गया है।

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्। स भूमिं सर्वतोवृत्वात्त्यतिष्ठद्दशांगुलम्॥
पुरुष एवेदं सर्वं यत् भूतम् यच्च भव्यम्। उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेना तिरोहति॥
सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद् यज्ञं तन्वाना ऽ अबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥
यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥

शुक्लयजुर्वेदीय माध्यन्दिनशाखीय वेददीप भाष्यकार आचार्य महीधर कहते हैं-

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो हस्त उत विश्वतस्पात् ।
सं बाहुभ्यां नमति सं पतत्रैर्द्यावापृथिवी जनयन् देव एकः ॥

अर्थात् अकेले ही बिना किसी के सहयोग से विश्वकर्मा देव ने द्युलोक एवं भूलोक को बाहुरूपी धर्म और अधर्म के द्वारा तथा पतनशील पञ्चभूतों के उपादान कारण के द्वारा समस्त जीवों की रचना करते हैं वह विश्वकर्मा सब तरफ से चक्षु-मुख भुजा एवं पद वाले हैं। ऋग्वेद के 81 एवं 82वें विश्वकर्मा सूक्त में विश्वकर्मा को सृष्टि संरचना के स्वरूप का कल्पयिता माना गया है। विश्वकर्मा ने सर्वप्रथम जल को उत्पन्न किया तत्पश्चात जल में इधर-उधर चलने वाली द्यावापृथ्वी की रचना की। द्यावापृथ्वी के प्राचीन तथा अन्त्य प्रदेशों को विश्वकर्मा ने सुदृढ किया। द्वितीय मन्त्र में कहा गया है कि, विश्वकर्मा बृहत् हैं तथा वो सब जानते हैं तथा सब कुछ देखते है। 82वे सूक्त में विश्वकर्मा का सर्वोच्चशक्ति के रूप में वर्णन किया गया है। हिरण्यगर्भ अथवा प्रजापति से सृष्टिसंरचना का स्वरूप इस प्रकार किया गया है।—

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकासीत् ।
स दाधार पृथ्वीं द्यामुतेमां कस्मै देवायहविषा विधेम ॥
य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्यदेवाः ।
यस्य छायामृतं यस्य मर्त्युः कस्मै देवायहविषा विधेम ॥

सृष्टि उत्पत्ति से पूर्व वह हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुआ, उत्पन्न होते ही सभी प्राणियों का एकमात्र स्वामी हुआ, उसने पृथिवी और द्युलोक को धारण किया। जो हिरण्यगर्भ आत्म बल और भौतिक

शारीरिक बल देने वाला है, अमृतत्व और मृत्युत्व छाया के समान जिसके वशवर्ती हैं जो अपनी महिमा से अकेले ही श्वास लेते हुए तथा पलक झपकाते हुए विश्व का स्वामी हो गया, जो इस दो पैरों वाले मनुष्य तथा चार पैरों वाले गाय, घोड़ा आदि पशुओं का स्वामी हुआ। जिसकी महिमा से ये पर्वत हैं, नदियों के साथ समुद्र भी जिसकी महती महिमा का यशो गान करते हैं, ये प्रधान दिशायें (पूर्व आदि चार दिशायें) और बाहु के समान कोण दिशायें (आग्नेय आदि चार कोण दिशायें) जिसकी महिमा को कहते हैं, हिरण्यगर्भ प्रजापति ने ही द्युलोक को ऊपर उठाया हुआ है और पृथिवी को स्थिर किया है, जिसने स्वर्ग लोक को ऊपर थामा हुआ है और सूर्य को ऊपर अन्तरिक्ष में थामा है, जो आकाश में जलों को बनाने वाला है। संसार की रक्षा करने के हेतु से निर्माण करने के लिए स्थिर किये गये और प्रकाशमान होते हुये द्युलोक और पृथिवी लोक को वह अपने मन से देखता है, उस प्रजापति को आधार बना कर सूर्य उदय होकर प्रकाशित होता है। जब प्रजापति रूप गर्भ को धारण करती हुई तथा अग्नि को उत्पन्न करती हुई विशाल जलराशि विश्व में संरचित हुई, तब देवताओं का एक प्राणभूत वायु की संरचना हुई।

ब्रह्मा से सृष्टिसंरचना का स्वरूप ।—

वेदों के अनुसार ब्रह्म सृष्टि के रचयिता हैं। ऋग्वेद के सूक्तों में वर्णन किया गया है कि सृष्टि के आदि में न सत् था और न असत् था, न आकाश था, न वायुमण्डल था और न दिन-रात थे। केवल ब्रह्म की ही सत्ता थी। ब्रह्म को किसी ने उत्पन्न नहीं किया, वह स्वयं उद्भूत (स्वयं उत्पन्न) है। ब्रह्म अनादि है। ब्रह्म में स्वयं संकल्प शक्ति होती है। ब्रह्म ने सृष्टि के सृजन का संकल्प किया। उनका यह संकल्प ही जाज्वल्यमान तप था, जो चतुर्दिक् व्याप्त था। उस महाज्योति परमतत्त्व से ऋत और सत्य की उत्पत्ति हुई। यथा-**ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रोऽर्णवः।।** अर्थात् उस जाज्वल्यमान परमतेज से ऋतं (ज्ञान) तथा सत्य की संरचना हुई। उन परमाणुओं के स्थूल होने पर पदार्थ की संरचना हुई। दिनरात्रि की रचना हुई तथा जल से परिपूर्ण समुद्र की सृष्टि संरचना हुई। इस प्रकार सृष्टि संरचना के स्वरूप का प्रारम्भ हुआ। ब्रह्म से की संकल्पना का वर्णन अन्य उपनिषदों, पुराणों तथा दर्शन शास्त्रादि में भी प्राप्त होता है।

लघूत्तरीय प्रश्न —

1.ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में जगत की सृष्टि कारण किसे बताया गया है।

2.विराट पुरुष के किन अंगों से ब्राह्मण तथा क्षत्रिय उत्पन्न हुए।

3.विश्वकर्मा ने सर्वथम किस को उत्पन्न किया

4.हिरण्यगर्भ कौन-सा बल देने वाला है,

5.ब्रह्म का संकल्प कैसा था।

पौराणिक सृष्टि प्रक्रिया—

सृष्टि संरचना में पुराणों का विशिष्ट स्थान है। प्रायः सभी पुराणों में सृष्टि संरचना का स्वरूप वर्णन प्राप्त होता है।–

1. मत्स्य पुराण के अनुसार भी महाप्रलय व्यतीत होने के अनन्तर समस्त जगत् की स्थिति अन्धकार में घने तम से आच्छन्न थी, यथा - अन्धकार में सोए हुए चर वा अचर वस्तु की भाँति न तो पता लगने योग्य, न पहचानने योग्य और न ही कहीं कोई वस्तु जानने योग्य थी। निराकार, इन्द्रियों से परे, सूक्ष्म से अतिसूक्ष्म, महान् से अत्यधिक महत्ता और अविनाशी अर्थात् अविनाश सत्ता वाले, जगत् में नारायण नाम से प्रसिद्ध, इस महाप्रलय के अनन्तर संसार में पुण्य कर्म के प्रभाव से घने तम का विनाश करते हुए चराचर जगत् के उत्पत्ति कारक स्वयं प्रादुर्भूत हुए।

2. विष्णु पुराणमें पराशर जी कहते हैं कि इस सृष्टि संरचना का मूल कारण विष्णु हैं।

3. पद्मपुराण के अनुसार जगत् के प्रलयके पूर्व कुछ भी नहीं था। सब कुछ करने वाली ब्रह्मसंज्ञक एक ज्योति नित्यमाया रहित, शान्तनिर्मल, नित्यनिर्मल आनन्दसागर अर्थात् आनन्द से पूर्णतः परिपूर्ण तथा नितान्त स्वच्छ थी जिसकी मोक्ष की इच्छा करने वाले पुरुष सदा इच्छा किया करते हैं। वह ज्योतिर्ब्रह्म सर्वज्ञ है, ज्ञान स्वरूप वाला है तथा वही सृष्टिका मूल कारण है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में भी वर्णित है कि विश्व का अधिष्ठाता विराट् स्वरूप वाला स्थूल से भी स्थूलतम को धारण करने वाला है। महत्तत्त्व आदि रूप वाला सृजन की ओर उन्मुख होता हुआ अपनी ही कला द्वारा हृदय में नित्य सूक्ष्म को एकचित्त करके सृजन करने वाला परब्रह्म है।

4. विष्णु पुराणके सदृश ही गरुड पुराण में भी जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय- इन तीनों कार्यों को भगवान विष्णु की पुरातनी क्रीडा कहा है। नर, नारायण, वासुदेव, निरंजन परमात्मा तथा परब्रह्म भी भगवान विष्णु ही है। इस जगत् के जन्म, पालन और प्रलयादि के कारण भी वे ही हैं। वही व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप वाले हैं तथा पुरुष और काल रूप से अवस्थित है। व्यक्त विष्णु स्वरूप है तथा पुरुष तथा काल इन्हीं का अव्यक्त रूप है।

5. नारदीय पुराण द्वारा भी समस्त जगत् उसी नारायण में व्याप्त है। नारायण ही परम-तत्त्व अथवा परमब्रह्म का स्वरूप है। नारायण अविनाशी अनन्त एवं सर्वव्यापी है। महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित श्री मद्भागवत पुराण वैष्णव पुराणों में एक अद्वितीय महनीयता से मण्डित है श्रीमद् भागवत के अनुसार उस परम पुरुष परमात्मा ने काल रूपी निमित्त कारण को लेकर क्रीडा के लिए अपने को ही विश्वरूप में सृजन किया है। इसके पूर्व विष्णु माया ने इस विश्व का संहार कर दिया था और विश्व की तन्मात्रा ब्रह्म के स्वरूप में लीन हो गई थी उसी को उन अव्यक्त मूर्ति वाले नारायण ने काल को निमित्त बनाकर पुनः प्रकाशित कर दिया। यह विश्व जैसा इस समय है वैसा ही इसके पहले था और आगे भी ऐसा ही रहेगा इसमें प्राकृत अर्थात प्रकृति से उत्पन्न होने वाला 6 और विकृति से उत्पन्न मनुष्य आदि जीव कुल नौ प्रकार की सृष्टि होती है। दसवीं सृष्टि में वह परम पुरुष स्वयं रहता है। काल द्रव्य और गुण इन तीनों से तीन प्रकार का प्रलय भी होता है। ऊपर जो 9 प्रकार की सृष्टि बतला कर आए हैं उनमें से पहली सृष्टि उस परम पुरुष द्वारा गुणोंकी विद्यमान महत्तत्त्व लक्षणात्मकसे होती है दूसरी सृष्टि अहंकारसे होती है जिससे द्रव्य ज्ञान और क्रियाकी उत्पत्ति हुआ करती है तीसरी सृष्टि में वायु आदि सूक्ष्मभूत उत्पन्न होते हैं। यह सृष्टि द्रव्यशक्तिमती है, और इनमें पंचमहाभूत जायमान होते हैं । इसी प्रकार चतुर्थ सृष्टि में ज्ञान क्रियात्मक इंद्रियों की

उत्पत्ति होती है। पंचम सृष्टि वैकारिक, ज्ञान शक्ति संपन्न और इंद्रियों के अधिष्ठाता देवताओंकी उत्पत्ति होती है। छठी सृष्टि से अंधकार उठता है जो अज्ञान का जन्मदाता है। यह छह प्रकार की प्राकृत सृष्टिओं का वर्णन किया। अब वैकृतसृष्टि वर्णन करते हैं, ऊपर जो सृष्टि बताई गई हैं वह सब भगवानकी रजोगुण लीला रूप वाली है। सातवीं मुख्य सृष्टि छह प्रकार के वृक्षों की उत्पत्ति होती है, जैसे- वनस्पति अर्थात् बिना फूल के फल देने वाले वृक्ष जैसे गूलर आदि औषधि, बोए जाने पर पके फल देकर समाप्त हो जाने वाले धान आदि, लता किसी के सहारे ऊपर चढ़ने वाली। सार-सार त्वक् अर्थात् जिनके छिलके में ही तत्व रहता है जैसे- बांस-बेत आदि। वीरुध यह भी लता के समान होती है किंतु इसे ऊपर चढ़ने की आवश्यकता नहीं पड़ती है, जैसे- जूही आदि । और द्रुम जो फूलने के बाद फले जैसे आम अमरूद आदि । ये छहों प्रकार के वृक्ष पृथ्वी के भीतर से अपना आहार ऊपर को खींचते हैं इनमें चेतना शक्ति नहीं दिखती इनके भीतर स्पर्श शक्ति प्रबल होती है। और देश काल की अवस्थाके अनुसार इनमें विविध प्रकार के परिणाम भी लक्षित होते हैं। आठवीं सृष्टिसे तिर्यग्- पक्षी योनि के जीवों की उत्पत्ति होती है जिनके कुल 28 भेद होते हैं। जैसे अविद अर्थात् स्तनादि ज्ञान शून्य । भूरि तमस अर्थात् केवल अपने आदर की जानकारी रखने वाले। घ्राणज्ञ अर्थात् नाकसे सूंघ कर समझने वाले। हृदि अवेदि अर्थात् विशेष अनुसंधान करने में असमर्थ। गो, बकरी, भैंस, हिरण, गवय और रुरु अर्थात् मृग विशेष। भेड़ा भेड़ी और यह 9 प्रकार के पशु दो खुर वाले होते हैं गधा, घोड़ा, खच्चर, गौर और चमरी यह 6 पशु एक खुर वाले हैं। अब 5 नख वाले पशुओंके नाम जानें कुत्ता, गीदड़, भेड़िया, बाघ, बिलाव, खरहा, शल्लक- सेही सिंह, बंदर, हाथी, कछुआ और मगर आदि जन्तु तथा कंक अर्थात् कड़ाकुल, गिद्ध, बटेर, बाज, भास, भालू, मोर, हंस, सारस, चकवा,कौवा और उल्लू आदि पशु पंछी पंचनख वाले हैं। ऊपर गिनाए मगर आदि जंतु और कंक आदि पक्षी सब मिलाकर 28 प्रकार के तिर्यग् योनि के जंतु होते हैं। उल्टे सोने वाले मनुष्यों की नवीं सृष्टि मानी गई है यह मनुष्य अधिक रजोगुणात्मक तथा कर्मशील हैं और दुख को भी सुख मानते हैं यह तीनों ही सृष्टियाँ वैकृत हैं। देवताओं की सृष्टि भी वैकृत सृष्टि के ही अंतर्गत है किंतु सनत्कुमार आदि की सृष्टि उभयात्मक प्राकृत तथा वैकृतात्मक है क्योंकि यह देवता और मनुष्य दोनों ही नाम से प्रसिद्ध हैं। देव सृष्टि आठ प्रकार की है। जैसे- देव, पितर, असुर, गंधर्व, अप्सरा, यक्ष,राक्षस,चारण, भूत, प्रेत, पिशाच, सिद्ध, विद्याधर और किंपुरुष आदि ब्रह्माजी की सृष्टि के यह 10 भेद हैं। यह वर्णन श्रीमद्भागवतके तृतीयस्कन्ध के दशमाध्यायमें प्राप्त होता है। ब्रह्मा ने सनक, सनंदन, सनातन और सनत कुमार इन 4 ऋषियों को उत्पन्न किया यह सभी पूर्ण ब्रह्मचारी थे। उन्हें उत्पन्न करने के बाद ब्रह्माने उन सब से सृष्टि संरचना हेतु कहा लेकिन उनकी अनिच्छा प्रकट हुई तब ब्रह्माजीने अपनी अवहेलना समझ कर मन को यद्यपि शांत किया लेकिन क्रोध आने के कारण उनके भ्रू के मध्य भागसे नील लोहित के रूप में देवताओं के पूर्वज अर्थात् भगवान शिव प्रकट हुए। जन्म लेते ही बच्चों की तरह उद्वेग के साथ रोनेके कारण उनका नाम रुद्र कहा। हृदय, इंद्रियां, प्राण, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य, चंद्रमा तथा तप। इनके रहने के स्थान बने। रुद्र के सिवाय इनके 11 नाम हैं

मन्यु, मनु, महिनस,महान,शिव,क्रतुध्वज,उग्ररेता,भव,काल,वामदेव और धृतव्रत। तथा इनकी संगिनी धी, वृत्ति, उशना, उमा, नियुत्सर्पि,इला, अंबिका, इरावती, सुधा, दीक्षा, और रुद्राणी यह 11 रुद्र शक्तियां हुई। ब्रह्मा के बताए नाम, स्थान और स्त्रियों को अंगीकार करके बहुत सी प्रजाओं की सृष्टिके लिए ब्रह्माने आज्ञा दी हे रुद्र आप प्रजापति हो सृष्टि संरचना करो। ब्रह्माजी की आज्ञा पाकर रुद्र भगवानने अपने समान बलवान आकृतिमान नील लोहित तत्वको लिए हुए तीक्ष्ण स्वभाव की संतानों को उत्पन्न किया। ब्रह्माजी फिर सृष्टि करने का विचार करने लगे और उनके शरीरसे 10 पुत्र उत्पन्न हुए। मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वशिष्ठ, दक्ष और नारद इनमें ब्रह्माजी की गोदसे नारद अंगूठेसे दक्ष प्रजापति श्वास से वशिष्ठ त्वचासे भृगु हाथ से क्रतु नाभि से पुलह कानोंसे पुलस्त्य ऋषि मुखसे अंगिरा नेत्रों से अत्रि और मन से मरीचि उत्पन्न हुए। ब्रह्माजी के दाहिने स्तनसे धर्म उत्पन्न हुआ जिसमें नारायण का निवास रहता है उनकी पीठसे अधर्म की उत्पत्ति हुई और अधर्मसे संसारको भयभीत करने वाली मृत्युका जन्म हुआ। ब्रह्माजी के हृदयसे कामदेव भौहोंसे क्रोध निचले ओठ से लोभ मुख से वाणी लिंग से समुद्र और गुदा से पापों के केंद्र राक्षस उत्पन्न हुए। उन चतुरानन की छाया से कर्दम प्रजापति उत्पन्न हुए जो देवहूतिके पति थे उनके मन और उनकी देह से समस्त विश्व उत्पन्न हुआ। ब्रह्माजी के पूर्व मुख से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, तथा शस्त्र होता के द्वारा किए जाने वाले कार्य, अध्वर्यु के कर्तव्य कर्म, स्तुति योग्य ऋचाओं का समुदाय, उद्गाता के गाने योग्य मंत्रों तथा प्रायश्चितात्मक ब्रह्म कर्म उत्पन्न हुए उनके दक्षिण मुखसे आयुर्वेद अर्थात् चिकित्सा शास्त्र धनुर्वेद अर्थात आयुधविद्या, गांधर्वविद्या और स्थापत्य- विश्वकर्मा का शास्त्र उत्पन्न हुआ। इतिहास महाभारत पंचम वेद माना जाता है। उसे और पुराणोंको ब्रह्माजी ने अपनी चारों मुखों से उत्पन्न किया। इसी प्रकार उनके पूर्व मुखसे षोडशी और उक्थ, दक्षिण मुखसे पुरीषी अर्थात् नयन तथा अग्निष्टोम, पश्चिम मुख्य से आप्तोर्याम तथा अतिरात्र और उत्तर मुख से वाजपेय तथा गोसव नाम के यज्ञ विशेष उत्पन्न हुए। इसी प्रकार ब्रह्मा जी ने अपने पूर्व आदि में पहुंचे क्रमशः पूर्वादि चारों मुख से विद्या अर्थात शुचिता, दान, दया, तप एवं सत्य धर्म के इन चार चरणों तथा ब्रम्हचर्य का गार्हस्थ्य वानप्रस्थ और सन्यास वृत्तियों समेत इन चार आश्रमों को उत्पन्न किया इसके बाद उन्होंने अपने पूर्व आदि मुखों से चार प्रकार का ब्रम्हचर्य जैसे सावित्र उपनयन के दिनों से 3 दिन तक गायत्री अध्ययन के लिए 3 दिन का अनुष्ठान प्राजापत्य अर्थात् 1 वर्ष तक वेदाध्ययन पूर्वक रखा जाने वाला ब्रह्मचर्य व्रत ब्राह्म अर्थात् वेदाध्ययन काल तक किया जाने वाला ब्रह्मचर्य व्रत और **वृहद्** आजन्म पालन किया जाने वाला। ब्रम्हचर्य व्रत और चार प्रकार की गृहस्थी वृत्ति हैं **वार्ता** अर्थात् शास्त्रोक्त कृषि आदि जीविका के कार्य **संचय** अर्थात् यज्ञादि कराने का कार्य **शालीन** अर्थात् अयाचितवृत्ति **शिलोञ्छ** अर्थात् फसल कटने के बाद खेत में गिरे हुए दानों को चुनना यह वृत्तियाँ उत्पन्न हुई। इसी प्रकार वानप्रस्थ वृत्ति में चार भेद हैं, **वैखानस** अर्थात् बिना जोती-बोई भूमि से उपजे अन्न पर जीवन निर्वाह करने वाले, **बालखिल्य** अर्थात् नवीन अन्न प्राप्त होने पर पूर्व संचित अन्न को त्याग देने वाले। **औदुंबर** अर्थात् सवेरे जिस दिशा पर दृष्टि पड़े उधर ही से अन्न

या फल मूल लाकर जीवन यापन करने वाले। **फेनप** अर्थात् अपने आप गिरे हुए फल आदि पर जीविका चलाने वाले। इसी प्रकार चार सन्यास वृत्तियां भी ब्रह्मा जी के चारों मुख से उत्पन्न हुई हैं- जैसे **कुटीचक** अर्थात् कुटी बनाकर एक स्थल पर रहना तथा आश्रम कर्म को प्रधान मानकर तदनुसार आचरण करने वाले। **बह्वोद** अर्थात् कर्म की अपेक्षा ज्ञान को प्रधान मानने वाले। **हंस** अर्थात् ज्ञान के अभ्यास में तत्पर। और **परमहंस** (निष्क्रिय) अर्थात् तत्व ज्ञान प्राप्त किए हुए जीवनमुक्त ज्ञानी। इसी तरह ब्रह्मा जी के मुख से **आन्वीक्षिकी-** आध्यात्मिक शास्त्र अर्थात् मोक्ष प्रदान करने वाली आत्मविद्या। **त्रयी** अर्थात् स्वर्ग आदि फल देने और धर्म अर्थ तथा काम को पूर्ण करने वाली कर्म विद्या। **वार्ता** अर्थात् जीविका-व्यापारादि संपादन करने वाली विद्या। **दंडनीति** शासन कार्य को बताने वाली विद्या, तथा चार महाव्याहृतियाँ भूः भुवः स्वः महः आदि उत्पन्न हुई, इसी प्रकार ब्रह्मा जी के हृदय रूपी आकाश से प्रणव अर्थात् ॐकार उनके रोमों से उष्णिक्, त्वचा से गायत्री, मांस से त्रिष्टुप्, स्नायु से अनुष्टुप्, अस्थियों से जगती, मज्जा से पंक्ति, और प्राणों से बृहती नाम के छंद की संरचना हुई। इसी रीति से ब्रह्मा के जीव से ककार से मकार पर्यन्त स्पर्श संज्ञक वर्ण, देह से स्वर वर्ण अकारादि, उनकी इंद्रियों से श ष स ह उष्म संज्ञक वर्ण और उनके बल से य र ल व यह अंतस्थ व्यंजन उत्पन्न हुए, उन प्रजापति के विहार से निषाद, ऋषभ, गांधार, षड्ज, मध्यम, धैवत और पञ्चम आदि सात संगीत स्वर उत्पन्न हुए, उस व्यक्त और अव्यक्त ब्रह्मा की शब्द मूर्ति का यह क्रम बताया। वैखरी रूप से व्यक्त और प्रणव रूप से अव्यक्त उन ब्रह्मा जी को उस परिपूर्ण तथा सर्वशक्तिमान ब्रह्म का बोध बना रहता है, उन्होंने जिन महा शक्तिमान मरीचि वशिष्ठ आदि ऋषियों की सृष्टिकी थी वह सृष्टि का विस्तार नहीं कर सके उन्होंने सोचा कि यद्यपि मैं नित्य सृष्टिके विस्तार की चेष्टा करता रहता हूं, फिर भी संतोषजनक विस्तार नहीं होता यह प्रजा तो नहीं बढ़ रही है इसमें देव बाधा है देव के विषय में वे इस प्रकार सोच ही रहे थे—

कस्य रूपमभूद् द्वेधा यत्कायमभिचक्षते ।ताभ्यां रूपविभागाभ्यां मिथुनं समपद्यत ॥
यस्तु तत्र पुमान्सोऽभूत् मनुः स्वायम्भुवः स्वराट् । स्त्री याऽऽसीच्छतरूपाख्या महिष्यस्य महात्मनः ॥
तदा मिथुनधर्मेण प्रजा ह्येधाम्बभूविरे ।स चापि शतरूपायां पञ्चापत्यान्यजीजनत् ॥
प्रियव्रतोत्तानपादौ तिस्रः कन्याश्च भारत ।आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिरिति सत्तम ॥
आकूतिं रुचये प्रादात् कर्दमाय तु मध्यमाम् ।दक्षायादात्प्रसूतिं च यत आपूरितं जगत् ॥

उसी समय ब्रह्माजी का शरीर दो भागोंमें विभक्त हो गया और उन दोनों भागोंमें से एक स्त्री और एक पुरुष इनका जोड़ा उत्पन्न हो गया, उनमें पुरुष स्वयंभू मनु और स्त्री उनकी रानी शतरूपा हुई। अब इनके द्वारा प्रजा बढ़ने लगी स्वयंभू मनुने शतरूपा से 5 संतान उत्पन्न की जिनमें दो पुत्र और 3 कन्याएं थी, पुत्र प्रियव्रत और उत्तानपाद पुत्रियां आकूति देवहूति और प्रसूति स्वयंभू मनुने आकूति का मरीचि प्रजापति देवहूति का कर्दम प्रजापति और प्रसूति का दक्ष प्रजापति के साथ विवाह कर दिया जिनकी उत्पन्न की हुई संतानों से सारे संसार की संरचना हुई।

परम पुरुष की आधीनता में रहने वाले काल से गुणों में भेद उत्पन्न हुआ उनके स्वभाव से परिणाम एक रूप का त्याग कर रूपांतर प्राप्त करना और जीव के अदृश्य कर्मों से महत् तत्त्व की उत्पत्ति हुई महत् तत्व के विकार से और रजो गुण तथा सतोगुण की वृद्धि होती है और उससे तमोगुण प्रधान द्रव्य क्रियात्मक सृष्टि होती है उसी वस्तु को अहंकार कहते हैं उस अहंकार के तीन भेद हैं विकारी का तेजस राजस तमस उन तीनों में तीन प्रकार की शक्तियां अंतर्हित रहती हैं जैसे द्रव्य शक्ति क्रिया शक्ति और ज्ञान शक्ति द्रव्य शक्ति पृथ्वी जल आदि पांच महा भूतों का संचालन करती है क्रिया शक्ति इंद्रियों पर प्रभुत्व रखती है और ज्ञान शक्ति प्राणियों को देवताओं की ओर ले जाती है। उनमें से तामस अहंकार के विकार से आकाश की सृष्टि हुई आकाश का मात्रा गुण शब्द है वही शब्द द्रष्टा और दृश्य का लक्षण बताता है। आगे चलकर आकाश के विकार से स्पर्श गुण युक्त वायु की उत्पत्ति हुई। आकाश के सहयोग से वायु में शब्द वही प्राण और तेज युक्त बल के लक्षणों से लक्षित होने लगा फिर वायु के विकार और काल कर्म तथा स्वभाव से रूपवान् तथा शब्द और स्पर्श को नियुक्त तेज की उत्पत्ति हुई तेज के विकार से जल की उत्पत्ति हुई। वह जल आकाश आदि के संयोग से रूप स्पर्श और शब्द गुण संपन्न हुआ। उस जल के विकार से गंधवती पृथ्वी उत्पन्न हुई आकाश आदि के संसर्ग से इसमें रस स्पर्श और रूप यह गुण आए वही कार्य विकार वाले सात्विक अहंकार से मन तथा 10 विकार वाले देवता उत्पन्न हुए जैसे दिशा, वायु, सूर्य, प्रचेता, अश्विनी कुमार यह पांचो क्रमशः कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका के स्वामी है। अग्नि इंद्र उपेंद्र मित्र तथा प्रजापति यह पांच क्रमशः वाणी हाथ-पांव गुदा और शिश्न के स्वामी हैं। तेज के विकार से दस इंद्रियां उत्पन्न हुई क्योंकि ज्ञान शक्ति अर्थात् बुद्धि और क्रिया शक्ति अर्थात् प्राण यह दोनों तेजस अहंकार के ही कार्य हैं इसी से ज्ञान क्रिया की विशेष रूप इंद्रियां भी तेजस अहंकार से सम रचित है ये इंद्रियां हैं जैसे कान, त्वचा, चक्षु, जीह्वा, घ्राण, वाक्, हाथ, पैर, गुदा और लिंग। भाव में अलग अलग रहकर शरीर की रचना नहीं कर सके तब भगवान की शक्ति से प्रेरित होकर सत् और असद् इन दोनों प्रधान गुणों के भाव एक में मिलकर समष्टि और व्यष्टि रूप दो प्रकार के शरीर बने तब हजारों वर्ष बाद जल में पड़े हुए अचेतन अण्ड को काल कर्म तथा स्वभाव की प्रधानता देकर परमात्मा ने जीवित किया उसके बाद स्वयं परमात्मा उस अण्डे को फोड़कर बाहर निकला। उसके हजारों शिर, हजारों पैर, हजारों हाथ, हजारों आंखें, हजारों मुख और हजारों मस्तक से उसके बाद विद्वानों ने उसी के अंगों से सब लोकों की कल्पना की जांघ से नीचे पैर तक के अंगों से अतल से लेकर पाताल तक के सात लोकों तथा जांघ से ऊपर के अवयवों से पृथ्वी आदि सात लोकों की उत्पत्ति मानी गई, उस परम पुरुष के मुख से ब्राह्मण बाहू दंड से क्षत्रिय दोनों ऊरुओं से वैश्य और दोनों पांव से शुद्र उत्पन्न हुए उस परमात्मा के दोनों पांव से भूलोक, नाभि से भुवः लोक, हृदय से स्वर् लोक, वक्षः स्थल से महर् लोक, की रचना हुई उसकी ग्रीवा से जनोलोक, दोनों स्तनों से तपो लोक और मस्तकों से सत्य लोक की रचना हुई, उन लोगों की अपेक्षा ब्रह्म लोक अर्थात् वैकुंठ सनातन है इसका कभी भी विनाश नहीं होता उस परम पुरुष की कमर में अतल लोक, दोनों उरुओं में वितल लोक, दोनों

घुटनों से सुतल लोक और जानुओं से तलाताल लोक की सृष्टि हुई। दोनों गुल्फों में महातल लोक, एड़ियों और पैरों में रसातल लोक और तलुओं में पाताल लोक समझना चाहिए। दुसरी अवधारणा में पैरों में भूलोक, नाभि में भुवः लोक और मस्तक में स्वर्ग लोक की कल्पना संरचित हुई। उस विराट् रूप धारी महापुरुषके मुखसे वचन और अग्नि त्वचा आदि अवयवों से गायत्री आदि छंद और सात धातु तथा उनकी जिह्वा से हव्य अर्थात देवताओं का अन्य कब लिया कब दिया पितरों के उपयुक्त अमृत देवता तथा पितरोंको अर्पण करके शेष बचा अन्य और सभी रसों की उत्पत्ति हुई उनकी घ्राण इंद्रिय से जगत के समस्त प्राणियों के प्राण सामान्य तथा विशेष प्रकार के गंध और दोनों अश्विनी कुमार उत्पन्न हुए। उनके नेत्रोंसे रूप तेज और सूर्य उत्पन्न हुए उनके कान दसों दिशाएं नक्षत्र आकाश और शब्द के जनक हुए। उनका शरीर सभी वस्तुओं के सारांश और सौंदर्य का केंद्र बना उनकी त्वचा स्पर्श वायु और सभी यज्ञोंका उत्पत्ति स्थान हुई उनके रोम तथा वृक्ष जाति के जनक हुए। जिनसे की यज्ञ के कार्य संपन्न होते हैं उनके केस मेघ के उनकी दाढ़ी मूछ बिजली के हाथ पैर के नाखून शिला और लोकों के जनक हुए। उनके हाथ सबका कल्याण करने वाले लोकपाल जन्मदाता हुए भगवान के विक्रम अर्थात् चलना फिरना से भूर भुवा स्वाहा तीन लोक क्षेम अर्थात् पाए धन की रक्षा और शरण अर्थात् पैसे बचाने वाले का आश्रय हुआ उन नारायण के चरण सभी कामनाओं और वर्कर आधार हुए विराम भगवान का उपस्थ जल वीर्य सृष्टि में एक प्रजापति तथा संतान प्राप्ति के लिए किए जाने वाले सम्भोग से उत्पन्न आनंद का कारण हुआ उनकी गुदा यम मित्र मल त्याग हिंसा कल्याण और नरक का उत्पत्ति स्थान हुआ उन भगवान का पृष्ठ भाग पर आ जाए अधर्म और तमोगुण का आश्रय हुआ उनकी नारियां नदियों का आश्रय हुई और उनकी हड्डियां संसार के पर्वतों का आश्रय बनी उनका उधर अनादि प्रधान तथा समुद्रों और प्राणियों के मरण का उत्पत्ति स्थान हुआ उनका हृदय मन का जन्मदाता हुआ उन पर ब्रह्म की आत्मा धर्म हमारा और आपका सनकादिक को मारो शिव तत्व ज्ञान और सतोगुण का आश्रय हुई। ब्रह्मा नारद शिव तथा सनकारी मुनि देवता दित्य मनुष्य हाथी पक्षी मृत आदि वन जंतु सर्प गंधर्व अप्सरा यक्ष सोगन भूत गण सर्प पशु पितर सिद्ध विद्याधर चारण और वृक्ष आदि विविध प्रकार के जल स्थल तथा आकाश चारी ग्रह नक्षत्र विद्युत मेघादि यह सब और भूत भविष्य तथा वर्तमान नारायण के ही अधीन है उन्होंने अपने विशाल रूप से इस विश्व को घेर रखा है जैसे सूर्य मंडल अपने भीतर बाहर सब तरफ प्रकाश कहलाता है उसी तरह वह विराट पुरुष अपने आप को प्रकाशित करता हुआ जगत के सब प्राणियों तथा वस्तुओं को प्रकाश पहुंचाता है वह विराट पुरुष मृत्यु और अन्य अर्थात कर्म फल को पार कर गया है इसलिए वह अमृत व मोक्ष रूप निजानंद अर्थात अभय इन दोनों का स्वामी है इसी कारण उसकी अलग नियम महिमा गाई जाती है जो लोग उसके अधीन रहते हैं उन्हें बंधन और मोक्ष दोनों ही समय-समय पर वह परम पुरुष प्रदान करता रहता है यह बताने के लिए पुरुष सूक्त के पादु से विश्वा भूटानी इस वैदिक मंत्र का अर्थ बताते हुए कहते हैं यह भूर लोग आदि सभी लोग और इसके निवासी उसके पांव में स्थित हैं और उसके 3 उसके शेष तीन पदों में अमृत क्षेम और अभय

विद्यमान रहा करते हैं पूर्व कल्प में भी संतान ही निश्चित ब्रह्मचारी वानप्रस्थ और यदि इनके आश्रम तीनों लोगों के बाहर थे और ब्रह्मचर्य व्रत हीन गृहस्थाश्रम ई त्रिलोकी के भीतर विद्यमान थे वह जगत पूज्य परमात्मा दक्षिण और उत्तर इन दोनों मार्गों पर चलता था दक्षिण मार्ग का तात्पर्य है अविद्या सर्वथमय कर्म है विद्या साधन और उपासना रूपी मार्ग है जिस पर चलने से सांसारिक भोगों की प्राप्ति होती है और इसी मार्ग विद्या से मोक्ष होता है वह परमात्मा इन दोनों मार्गों का पारंगत है उस परमात्मा से यह ब्रह्मांड उत्पन्न हुआ और उसी में प्रायः इंद्रिय और सतवादी तीनों गुणों से युक्त एक विराट पुरुष जायमान हुआ वही ईश्वर कहलाया वह ईश्वर उस विश्व अपने शरीर और अंड से भी आगे निकल गया। जैसे मंडल के मध्य में रहने वाला सूर्य अपनी किरणों से सर्वत्र प्रकाश पहुंचाता हुआ अंत में वह अपने मंडल और विश्व को लांग जाता है। मुनि लोगों के भी उसे तब जान पाते हैं जब उनकी दे इंद्रियां तथा मन शांत रहता है अशांत पुरुषके हृदय में भी यद्यपि उस महापुरुष की ज्योति जागती रहती है फिर भी दुष्टोंकी विविध तर्कना उनसे वह प्रकाश लुप्त हो जाता है उसका प्रथम अवतार पुरुष है काल स्वभाव सत और असद अर्थात कार्य कारणात्मिका प्रकृति यह उसकी शक्तियां है द्रव्य अर्थात महाभूत अहंकार सतवादी गुण इंद्रियां समझती शरीर तथा विराट स्वराज स्थावर और जंगम यह व्यष्टि शरीर ही उस परम पुरुषके कार्य है ब्रह्मा शिव विष्णु यह दक्ष आदि प्रजापति नारद आदि देवर्षि स्वर्ग लोकके पालक खग लोग पालक नवलोक पालक तल तथा पाताल लोक पालक गंधर्व विद्याधर और चरणोंके रक्षक यक्ष राक्षस और सर्प योगके पालक अथवा समस्त श्रेष्ठ ऋषि पितर दायित्व पति सिद्धोंके स्वामी तथा प्रेत पिशाच भूत कुष्मांड बृंगी आदि जल जंतु अमृत तथा पक्षियोंके अधिपति। यह उनकी विभूति हैं।

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत् परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्॥ 1॥
ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि॥
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः॥ 2॥
यथा महान्ति भूतानि पूतेषूच्चावचेष्वनु।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्॥ 3॥
एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा॥ 4॥

श्री मद्भागवत पुराण स्पष्ट शब्दोंमें अद्वैत तत्त्वका प्रतिपादन करता है। इस पुराणके द्वितीय स्कन्धके नवम अध्यायका अध्ययन करें तो ज्ञात होता है कि परमतत्त्व ब्रह्माको चतुःश्लोकी भागवतका उपदेश करते हुए सृष्टि संरचनाके सम्बन्धमें भगवानके द्वारा ब्रह्माजीके लिए यह दिव्य ज्ञान प्रदान किया गया है कि सृष्टिके पूर्व केवल मैं ही मैं विद्यमान था मेरे अतिरिक्त न स्थूल था न सुक्ष्म और न तो दोनों का नियत पूर्ववर्ती कारण अज्ञान। जहां यह सृष्टि नहीं है वहां मैं ही मैं हूं, और सृष्टिके रूप में जो कुछ प्रतीत हो रहा है वह भी मैं ही हूं। और जो कुछ शेष रहेगा वह भी वस्तुतः न होने

पर भी जो कुछ अनिर्वचनीय वस्तु मेरे अतिरिक्त मुझ परमात्मा में दो चंद्रद्वयकी भाँति मिथ्या ही प्रतीत हो रही है अथवा विद्यमान होने पर भी आकाश मंडलके नक्षत्रोंमें राहुकी भांति जो मेरी प्रतीति नहीं होती, उसे मेरी माया समझना चाहिए। जैसे प्राणियोंके पंच भूत रचित छोटे बड़े शरीरोंमें आकाश आदि पंचमहाभूत उन शरीरोंके कार्य रूपसे निर्मित होने के कारण प्रवेश करते भी हैं और पहले से ही उन स्थानों और रूपोंमें कारण रूपसे विद्यमान रहनेके कारण प्रवेश नहीं भी करते वैसे ही उन प्राणियोंके शरीरकी दृष्टिसे मैं उनमें आत्माके रूपसे प्रवेश किए हुए हूं और आत्म दृष्टिसे अपने अतिरिक्त और कोई वस्तु न होनेके कारण उनमें प्रविष्ट नहीं भी हूं। यह ब्रह्म नहीं, यह ब्रह्म नहीं इस प्रकार नेति नेति निषेधकी पद्धतिसे और यह ब्रह्म है, यह ब्रह्म है इस अन्वय की पद्धतिसे यही सिद्ध होता है कि सर्वातीत एवं सर्वस्वरुप भगवान ही सर्वदा और सर्वत्र स्थित हैं वे वास्तविक तत्व हैं, जो आत्मा अथवा परमात्माका तत्व जानना चाहते हैं उन्हें केवल इतना ही जाने की आवश्यकता है

बहुविकल्पीय प्रश्न -

1. विष्णु पुराण के अनुसार सृष्टि संरचना के स्वरूप का मूल कारण कौन हैं -

(क) ब्रह्मा (ख) विष्णु

(ग) सूर्य (घ) महेश

2. ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार विश्व का अधिष्ठाता कौन है।

(क) परब्रह्मा (ख) विष्णु

(ग) सूर्य (घ) महेश

3. गरूड़ पुराण में भी जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय- इन तीनों कार्यों को किसकी की पुरातनी क्रीडा कहा है।

(क) परब्रह्मा (ख) विष्णु

(ग) सूर्य (घ) महेश

4. मत्स्य पुराण के अनुसार चराचर जगत् के उत्पत्ति कारक स्वरूप कौन प्रादुर्भूत हुए-

(क) परब्रह्मा (ख) विष्णु

(ग) सूर्य (घ) नारायण

5 श्री मद्भागवत पुराण स्पष्ट शब्दों में किस तत्त्व का प्रतिपादन करता है -

(क) द्वैत (ख) अद्वैत

(ग) विशिष्टाद्वैत (घ) महाद्वैत

दर्शन के अनुसार सृष्टि प्रक्रिया का उद्देश्य—

जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, तथा विनाश आदि से सम्बन्धित इस विधान की व्याख्या करना ही सृष्टि प्रक्रिया का उद्देश्य है। प्रत्येक दर्शन ने अपनी बौद्धिक सामार्थ्यानुसार इस जटिल प्रश्न पर विचार करने का प्रयास किया है। इसमें वेदान्त का प्रयास अन्य की अपेक्षा अधिक

सराहनीय है ।उन्होने सृष्टि समस्या पर सूक्ष्म चिन्तन तथा गहन विमर्श द्वारा इस विश्व के निर्माण तथा विनाश का एक व्यवस्थित तथा वैज्ञानिक विधान प्रस्तुत किया है।

वेदान्त सम्मत सृष्टि प्रक्रिया— सृष्टि विकास के सम्बन्ध में वेदान्त ने कुछ पृथ्क मार्ग अपनाया है। उसके अनुसार प्रतिक्षण परिणामों एवं सुव्यवस्थित व्यवस्था वाला जगत् अचेतन परमाणु अथवा जड़ प्रकृति का कार्य नहीं हो सकता। ऐसी सुचारू व्यवस्था तो किसी चेतन विवेक द्वारा ही सम्पन्न हो सकती है, अत: वेदान्ती सांख्यमत के विपरीत सृष्टि का एकमात्र चेतन ब्रह्म को बताते है। **'अस्य जगतो जन्मस्थितिभग: यत: सर्वगत: सर्वशक्ति - कारणाद भवति तद् ब्रह्म' ।।** जैसा कि कठोपनिषद में इस जगत् की उपमा एक वृक्ष से देकर वृक्ष का मूल उपर तथा शाखायें अधोमुखी बताई गई है । सृष्टि समस्या का समाधान कारण कार्य सिद्धान्त है । इस सिद्धान्त के अनुसार वेदान्त ब्रह्म जो जगत् का उपादान तथा निमित्त कारण दोनों ही बतलाया है। एक ही तत्व को उपादान तथा निमित्त कारण मानना यद्यपि व्यवहार विरूद्ध प्रतीत होता है , किन्तु सूक्ष्मरूपेण विचार करने पर इसमें कुछ भी विरोध नहीं प्रतीत होता है। यथा मकड़ी अपने शरीर के चेतनांश की प्रधानता से जाले का उपादान कारण तथा शरीर के प्राधान्य से निमित्त कारण बनती है। तथैव – मायोपधिक ब्रह्म उपादान ,कारण तथा निरूपाधिक अनुपहित ब्रह्म इस जगत् का निमित्त कारण है।

यह सृष्टि क्यों और कैसे हुई। इस प्रश्न का उत्तर वेदान्त में स्वभावत: दिया गया है जिस प्रकार मनुष्य का श्वासो च्छवास प्रक्रिया स्वाभाविक है तथाविध रूप से सृष्टि भी उत्पन्न तथा विनष्ट है । श्रुतियों में भी सृष्टि समस्या पर विचार करने पर इसे ईश्वर का ऐच्छिक एवं लीलापूर्वक किया हुआ कार्य बतलाया गया है। श्रुति कहती है कि उस ईश्वर ने संकल्प किया कि मैं एक ही बहुत हो जाउँ। तथा उसने ईक्षण किया कि मैं अनेक होउॅ और फिर उस चेतन तत्व ब्रह्म से यह सम्पूर्ण जगत् उसी प्रकार उत्पन्न हुआ जैसे सत् पुरूष के शरीर से केश , लोम आदि उत्पन्न होते है।

इस कल्पना के आगे श्रुति सृष्टि का अन्य कोई हेतु नहीं देती है। मूल तत्व से इस जगत् की उत्पत्ति◌ा और कब हुई। इस प्रश्न के सम्बन्ध में डॉ चटर्जी तथा दत्ता का कथन है – यहॉ युक्ति के स्थान पर कल्पना से ही काम लिया जाता है। उसे तर्क की कसौटी पर कसना उचित भी नहीं हैं। वेदान्त ने सृष्टि के रहस्य को स्पष्ट करने के लिये श्रुति की सहायता ली है, बिना श्रुति की सहायता के केवल तर्क द्वारा सृष्टि के रहस्य को ज्ञात करना असम्भव है। वेदान्त के अनुसार सृष्टि का अर्थ किसी नवीन पदार्थ की उत्पत्ति◌ा नहीं, अपितु अव्यक्त का व्यक्त होना है। सृष्टि शब्द का अर्थ है – सर्ग सृष्टि तथा सत्तावान जगत् का नाम रूप और व्याकरणमात्र है –**अनेन जीवेनात्मना ऽनुप्रविश्य नामाख्ये व्याकरवाणि ।।** वेदान्तियों ने एकमात्र सत् तत्व ब्रह्म को इस नामरूपात्मक जगत् का बीज कारण बताया है। ब्रह्म से ही समस्त भौतिक जगत् की उत्पत्ति होती है । यही वेदान्त की मर्यादा है – **परमाच्च ब्रह्म : प्राणादिकं जगज्जायत इति वेदान्तमर्यादा ।** नित्य शुद्ध बुद्ध भुक्त अविकारी एक ब्रह्म इस नानारूपात्मक नित्य विकारी जगत् को उत्पन्न करने में कैसे समर्थ हो सकता है। ऐसा होने पर ब्रह्म उन समस्त दोषों से संस्पृष्ट

होने लगेगा जो इसे जगत् में है। उसके अनन्तता निरवयता अखण्डता आदि विशेषण बाधित होने लगेंगे। किन्तु वेदान्त में इन समस्त समसयाओं को समाधान खोजा गया है – मायानाम्नी शक्ति में – **एक एव परमेश्वर: कूटस्य नित्यो विज्ञानधातुरविद्यया , मायया मायाविदने कथा विभाव्यते ।।** यह माया ब्रह्म की एक अतिशक्तिशाली ,स्वाभाविक एवं अनिर्वचनीय शक्ति है। इसके द्वारा सृष्टि करने में वह समर्थ होता है और सांसारिक दोषों से भी अस्पृष्ट रह जाता है। गीता में भगवान ने इस जगत् की उत्पत्ति अपने द्वारा आवेष्टित प्रकृति द्वारा बताई है।

ब्रह्म की इस अनिर्वचनीय विलक्षण शक्ति की दो शक्तियॉ हैं आवरण तथा विक्षेप। आवरण शक्ति रज्जु के यथार्थ रूप को आच्छादित वस्तु में नवीन वस्तुओं की उद्भावना करती है। इस प्रकार वस्तु का यथार्थ रूप तो अपरिवर्तित रहता है, किन्तु उसी एक वस्तु में किसी परिवर्तन के बिना ही अन्य वस्तुओं का दर्शन होने लगता है। इन दर्शित होने वाली वस्तुओं का दर्शन होने लगता है। इन दर्शित होने वाली वस्तुओं का आधार वही अपरिवर्तित तत्व रहता है। वह अपरिवर्तित तत्व उद्भासित होने वाली वस्तु से अलग रहता है किन्तु माया की शक्ति द्वारा उसका यथार्थ यह कथन उचित ही है। कुछ लोग सोचते हैं कि सृष्टि उस ब्रह्म की अभिव्यक्ति के लिए है। मेरा कहना है कि उसका प्रयोजन उसे छिपाता है और उसके अतिरिक्त यह और कुछ नहीं कर सकती है।

अब प्रश्न उठता हैं कि माया शक्ति के प्रभाववश एक ही ब्रह्म में नाना रूप जगत का दर्शन कैसे हो सकता है। इस कथन का उत्तर आचार्य शंकर ने अतिसुन्दर दृष्टान्त द्वारा दिया है कि तिमिर रोग के कारण नेत्र दीप्ति के नष्ट हो जाने पर जिस प्रकार द्रष्टा को एक चन्द्रमा के स्थान पर अनेक चन्द्रमा दिखाई पड़ते है उसी प्रकार अविद्या द्वारा कल्पित नामरूपादि के रूप में ब्रह्म से देश कालगत पृथक स्थिति हो किन्तु स्वयं समस्त विकारों में उसी प्रकार संस्पृष्ट नहीं होता जैसे जल में पडा सूर्य का प्रतिबिम्ब जल की शीतोष्णता से अछूता रहता है।

सृष्टिक्रम – वेदान्त मत में सृष्टि का क्रमिक विकास स्वीकार किया गया है। यह क्रमिक विकास सूक्ष्मतम रूप से स्थूल तर रूप की दिशा में होता है। इस विकास परम्परा की तीन अवस्थायें – कारणावस्था, सूक्ष्मावस्था तथा स्थूलावस्था ।

तमोगुण प्रधान माया की विक्षेप शक्ति से उपहित हुआ ब्रह्म ईश्वर की संज्ञा प्राप्त करता है। यह ईश्वर की सृष्टि का कारण है। इस उपहित ब्रहम से सर्वप्रथम आकाश उत्पन्न होता है। आकाश एक अनन्त लघु सूक्ष्म तथा सर्वव्यापक और सर्वप्रथम उत्पन्न पदार्थ है। आकाश से क्रमश: स्थूल तत्वों का उद्भव होता है। आकाश से वायु , वायु से अग्नि , अग्नि से जल , तथा जल से पृथ्वी उत्पन्न होते है। इन पॉचों तत्वों में अन्य परिवर्तित तत्वों की अपेक्षा स्थायित्व रहता है। वेदान्त ने सृष्टिप्रक्रिया के सम्बन्ध में उपनिषदों का स्मरण किया है–**तस्माद्धा एतस्मादात्मन आकाशऽसंभूतआकाशाद्वायुर्वाग्निरग्नेरापोऽद्देभ्य: पृथिवी ।** यद्यपि माया त्रिगुणात्मिका है

तथापि आकाशदि कार्य जड है , अत: इनके कारण में तमोगुण का प्राधान्य कहा गया है। पॉचों तत्व सूक्ष्म हैं। अत: वेदान्त में ये तन्मात्र सूक्ष्मभूत अथवा अपंचीकृत भूत कहलाते है।

इन पॉचों के क्रमश: गुण इस प्रकार हैं – आकाश का गुण शब्द , वायु का गुण स्पर्श, अग्नि का उष्णता, जल का रस तथा गन्ध पृथिवी का गुण है। इन तत्वों में उत्रोत्तर गुणों की वृद्धि हो जाती है। आकाश में एकमात्र गुण रहता है शब्द किन्तु वायु में शब्द और स्पर्श, अग्नि में अपने गुण उष्णता के अतिरिक्त अपने पूर्व तत्वों के गुणों का भी समावेश रहता है। एवंविध जल में रस के अतिरिक्त तीन पूर्व गामी गुण तथा पृथिवी में गन्धसहित चार अन्य गुण भी रहते है। इन पॉचों में सूक्ष्मतन्मात्राओं में तो सूक्ष्म तत्वों का निर्माण होता है, किन्तु स्थूल सृष्टि के निर्माण के लिये वेदान्त में पंजीकरण की विशिष्ट प्रक्रिया का आश्रय लिया गया है। सृष्टि प्रक्रिया के अर्न्तगत पंजीकरण प्रक्रिया का विवेचन किया गया है। पंजीकरण अद्वैत वेदान्त की स्थूल सृष्टिनिर्माण की विशिष्ट प्रक्रिया है। आकाशादि पंचतन्मात्राओं के संयोग से स्थूल महाभूतों की उत्पत्ति होती है। अत: स्थूल महाभूतों में प्रत्येक सूक्ष्म तन्मात्र के अतिरिक्त अन्य तन्मात्राओं के भी गुण समाविष्ट रहते है। पंचदशीकार ने पंजीकरण की प्रक्रिया का वर्णन इस प्रकार किया है – **द्विधा विधाय चैकेकं चतुर्धा प्रथमं पुन: ।**

स्वस्वेतरद्वितीयांशैर्योजनात्चप पंच ते ।। इस क्रियानुसार सर्वप्रथम आकाशादि पंचतन्मात्राओं को दो समान भागों में विभक्त किया। तत्पश्चात पंचतन्मात्राओं के दश भागों में से प्रथम पॉच को छोडकर अन्य पॉच भागों को पुन: चार –चार भागों में विभक्त किया गया। इस प्रकार प्रत्ये क तन्मात्र के पॉच विभाग हो गये। एक अर्धांश तथा चार अष्टमांश। इन पॉच विभागों में प्रत्येक तन्मात्र में उस तन्मात्र के अपने अर्धांश के अतिरिक्त शेष चार तन्मात्राओं की सम्मिलन करने से प्रत्येक तन्मात्र पुन: पूर्ण हो जायेगी। अपने अर्धांश के साथ अन्य तन्मात्राओं का चतुर्थांश भी सम्मिलित रहने से अन्य तन्मात्राओं के गुणों का भी समावेश किया जाता है। यथा – स्थूल आकाश में ½ शब्द। यद्यपि स्थूल महाभूतों में प्रत्येक तत्व निहित रहता है , किन्तु प्रत्येक महाभूत में अपना तत्व अधिक मात्रा में होने से उनके लिये पृथक – पृथक् आकाश, वायु, इत्यादि सम्बोधनों का व्यवहार होता है। इन्हीं पंचीकृत भूतों से चौदह भुवन तथा उसमें वास करने वाले प्राणिवर्ग के स्थूल शरीरादि का निर्माण होता है।

ज्ञानेन्द्रियॉ– आकाशादि अपंचीकृत पंचतन्मात्राओं के सात्विक अंशों में पृथक् – पृथक् क्रमानुसार श्रोत्र,त्वक्,चक्षु, रसना घ्राणेन्द्रियॉ उत्पन्न हुई है। ये इन्द्रियॉ अतिसूक्ष्म हैं। इनका निवास क्रमश: कर्ण, त्वक, नेत्र, रसना तथा नासिका में है। शब्द, स्पर्श , रूप, रस, तथा इनके विषय है। ये इन्द्रियॉ बहिर्मुखी होती है, किन्तु यदा कदा आन्तरिक विषयों को भी ग्रहण करती है।

कर्मेन्द्रियॉ- आकाशादि पंचतन्मात्राओं के राजस अंशो से व्यक्तिश: क्रमबद्ध श्रेणी में वाक्, हस्त , पाद, वायु तथा उपस्थ कर्मेन्द्रिया प्रादुर्भूत होती है। 1 क्रिया के प्राधान्य से ये कर्मेन्द्रिया कहलाती है। इनके कार्य है – वाणी , आदान, गमन, मलोत्सर्ग तथा सन्तानोत्पत्ति।

न्याय-वैशेषिक का सृष्टि संरचना विचार —

न्याय-वैशेषिक दर्शन विश्वकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें सृष्टिवादके सिद्धान्तको अपनाता है। सांख्यको छोड़कर भारतके प्रत्येक दर्शनमें सृष्टिवादके सिद्धान्तको शिरोधार्य किया गया है। परन्तु वैशेषिकके सृष्टि सिद्धान्त की कुछ विशेषताएँ है, जो इसे अन्य सृष्टि सिद्धान्तोंसे अनूठा बना देती है। वैशेषिकके मतानुसार विश्वका निर्माण परमाणुओंसे हुआ है। परमाणु चार प्रकारके हैं पृथ्वीके परमाणु, जलके परमाणु, वायुके परमाणु और अग्निके परमाणु। चूँकि विश्वका निर्माण चार प्रकारके परमाणुओंसे हुआ है। इसलिए वैशेषिकका सृष्टि-सम्बन्धी मत परमाणुवादका सिद्धान्त कहा जाता है। परमाणु शाश्वत होते हैं। इनकी न सृष्टि होती है और न नाश होता है। निर्माणका अर्थ है, विभिन्न अवयवोंका संयुक्त हो जाना, विनाशका अर्थ है विभिन्न अवयवोंका बिखर जाना। परमाणु निरवयव है, इसलिए निर्माण और विनाश से परे हैं।

सांख्य दर्शन में सृष्टि संरचना विचार—

सांख्य दर्शन की मान्यता है कि संसार की हर वास्तविक वस्तु का उद्गम पुरुष और प्रकृति से हुआ है। पुरुष में स्वयं आत्मा का भाव है जबकि प्रकृति पदार्थ और सृजनात्मक शक्ति की जननी है। विश्व की आत्मायें संख्यातीत है जिसमें चेतना तो है पर गुणों का अभाव है। वही प्रकृति मात्र तीन गुणोंके समन्वय से बनी है। इस त्रिगुण सिद्धान्त के अनुसार सत्त्व, रजस् तथा तमस् की उत्पत्ति होती है। सांख्य दर्शन में सृष्टि संरचना का स्वरूप सूत्र निम्नलिखित है—

सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान्,
महतोऽहंकारोऽहंकारात् पंचतन्मात्रण्युभयमिनिन्द्रियं
तन्मात्रेभ्यः स्थूल भूतानि पुरुष इति पंचविंशतिर्गणः।।

प्रकृति मूल रूप से सत्व,रज तथा तमस की साम्यावस्था को कहते है। तीनो आवेश परस्पर एक दूसरे को निःशेष कर रहे होते हैं। परमात्मा का तेज परमाणु (त्रित) की साम्यावस्था को भंग करता है और असाम्यावस्था आरंभ होती है। सृष्टि संरचना-कार्य में यह प्रथम परिवर्तन है। इस अवस्था को महत् कहते है। यह प्रकृति का प्रथम परिणाम है। मन और बुध्दि इसी महत् से बनते हैं। इसमें परमाणु की तीन शक्तिया बर्हिमुख होने से आस-पास के परमाणुओं को आकर्षित करने लगती है। अब परमाणु के समूह बनने लगते है। तीन प्रकार के समूह देखे जाते हैं। एक वे है जिनसे रजस् गुण शेष रह जाता है। यह तेजस अहंकार कहलाता है। इसे वर्तमान वैज्ञानिक भाषा में इलेक्ट्रोन कहते है। दूसरा परमाणु-समूह वह है जिसमें सत्व गुण प्रधान होता है वह वैकारिक अहंकार कहलाता है। इसे वर्तमान वैज्ञानिक प्रोटोन कहते है। तीसरा परमाणु-समूह वह है जिसमें तमस् गुण प्रधान होता है इसे वर्तमान विज्ञान की भाषा में न्यूट्रोन कहते है। यह भूतादि अहंकार है। इन अहंकारों को वैदिक भाषा में आपः कहा जाता है। ये(अहंकार) प्रकृति का दूसरा परिणाम है। तदनन्तर इन अहंकारों से पाँच तन्मात्रएँ (रूप,रस,गंध, स्पर्श और शब्द) पाँच महाभूत बनते है अर्थात् तीनों अहंकार जब एक समूह में आते है, तो वे परिमण्डल कहाते है। परिमण्डलों के समूह पाँच प्रकार

के हैं। इनको महाभूत कहते हैं। इन पञ्चमहाभूतों से समस्त चराचर सृष्टि संरचना का स्वरूप होता है।

योग दर्शन में सृष्टि संरचना सम्बन्धी विचार—

योग-दर्शन में ईश्वर को विश्व का सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता और संहारकर्ता नहीं माना गया है। विश्व की सृष्टि प्रकृति के विकास के फलस्वरूप ही हुई है। यद्यपि ईश्वर विश्व का स्रष्टा नहीं है, फिर भी वह विश्व की सृष्टि में सहायक होता है। विश्व की सृष्टि पुरुष और प्रकृति के संयोजन से ही आरम्भ होती है। पुरुष और प्रकृति दोनों एक-दूसरे से भिन्न एवं विरुद्ध कोटि के हैं। दोनों को संयुक्त करने के लिए ही योग-दर्शन में ईश्वर की मीमांसा हुई है "क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टःपुरुषविशेष ईश्वरः"। अतः ईश्वर विश्व का निमित्त कारण है, जबकि प्रकृति विश्व का उपादान कारण है। इस बात को विज्ञानभिक्षु और वाचस्पति मिश्र ने प्रमाणिकता दी है।

मीमांसा-दर्शन में जगत विचार—

उत्तरमीमांसा (वेदांत) अज्ञान से सृष्टि और आत्मज्ञान से सृष्टि का विनाश (मोक्ष) मानता है। अन्य दर्शनों में द्वयणुकादि क्रम से महाभूत पर्यन्त महासृष्टि और महाभूत से परमाणु पर्यन्त विनाश को महाप्रलय कहा है। अर्थात् संपूर्ण भाव कार्य द्वयणुकादि क्रम से उत्पन्न होते हैं और स्थूल से परमाणु पर्यंत जाकर नष्ट हो जाते हैं। पंच महाभूतों में पृथ्वी, जल, तेज और वायु के परमाणु नित्य हैं। आकाश स्वयं ही नित्य है, किंतु पूर्व मीमांसा के अनुसार दो प्रकार की सृष्टि और तीन प्रकार के प्रलय होते हैं, जिनमें महासृष्टि और खंड सृष्टि शब्द से दो सृष्टि कही गई है। ऐसे ही प्रलय, महाप्रलय और खंड प्रलय शब्द से तीन प्रलय कहे गए हैं। उनमें खंड सृष्टि और खंड प्रलय आजकल के समान ही माना गया है। उदाहरणार्थ किसी स्थल विशेष का भूकंप आदि से विनाश हो जाता है और कहीं पर नवीन वस्तु की सृष्टि हो जाती है। महासृष्टि में परमाणुओं से द्वयणुकादि द्वारा पंचमहाभूत पर्यन्त नवग्रहादिकों की सृष्टि होती है। मत्स्यपुराणादि में भी खंड प्रलय के अंतर्गत विद्यमान पदार्थों की स्थिति का विवरण प्राप्त होता है, किंतु पूर्व मीमांसा महासृष्टि और महाप्रलय को स्वीकार नहीं करता। उसके अनुसार सभी पदार्थों के नाश में कोई भी प्रमाण उपलब्ध नहीं होता। अतः मीमांसा दर्शन खंड सृष्टि और खंड प्रलय को ही मानता है।

4.4 सारांश

किसी वस्तु की उत्पत्ति अथवा निर्माण सृष्टि कहलाती है। सूर्यसिद्धान्त के सृष्टि के रचयिता परब्रह्म हैं वेदों में सृष्टियुत्पत्ति के सिद्धान्त प्रचुर मात्रा में मिलते है। पुराणों में भी सृष्टि की अवधारणा का वर्णन प्राप्त होता है। दर्शनशास्त्र में भी सृष्टि संरचना के स्वरूप का वर्णन प्रायः सभी आस्तिक तथा नास्तिक दर्शनशास्त्र में किया गया है। असके अनुसार विश्व का निर्माण चार प्रकार के परमाणुओं से हुआ है। सांख्य दर्शन की मान्यता है कि संसार की हर वास्तविक वस्तु का उद्गम पुरुष और प्रकृति से हुआ है। वेदान्तदर्शन के अनुसार सृष्टि संरचना के स्वरूप में सर्वप्रथम ईश्वर से पाँच सूक्ष्म भूतों का अविर्भाव होता है। इस प्रकार इस इकाई में आपने वेदों पुराणों तथा दर्शनशास्त्र में सृष्टि संरचना के स्वरूप के विषय में विस्तार स अध्ययन किया।

4.5 पारिभाषिक शब्दावली

निर्जल	-	जल से रहित
निरंजन	-	दुर्गुण एवं दोष से रहित, निगुर्ण ब्रह्म
सृष्टिवाद	-	सृष्टि से सम्बन्धित सिद्धान्त
लयकर्ता	-	अंत करने वाला
अविनाशी	-	जिसका कभी अंत ना हो
अव्यक्त	-	वाणी के द्वारा जिसका वर्णन न किया जा सके।

4.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

लघूत्तरीय प्रश्न

1.ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में जगत की सृष्टि कारण विराटपुरुष बताया गया है।

2.विराट पुरुष के मुख से ब्राह्मण तथा भुजाओं सं क्षत्रिय उत्पन्न हुए।

3.सृष्टि संरचना के स्वरूपमें विश्वकर्मा ने सर्वथम जल को उत्पन्न किया

4.हिरण्यगर्भ आत्मबल का देने वाला है,

5.ब्रह्म का संकल्प जाज्वल्यमान तप था, जो चतुर्दिक व्याप्त था।

बहुविकल्पीय प्रश्न -

1- (ख) 2- (क) 3- (ख) 4- (घ) 5-(ख)

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सूर्यसिद्धान्तः-आर्षग्रन्थः, टीकाकार कपिलेश्वरशास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी-2004

2. बृहत्संहिता-आचार्यवराहमिहिर, प-अच्युतानन्दझा,चौखम्बाविद्याभवनवाराणसी

3.ऋग्वेद, सायणाचार्यकृत-भाष्यसंवलिता, अनुवादक पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 2016

4.अथर्ववेद, सयणाचार्यकृत-भाष्यसंवलिता, अनुवादक पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 2016

5. वैदिक व्रह्माण्ड का परिचय-उ.मु.वि.वि.हल्द्वानी

6.मनुस्मृति - डा- गजानन शास्त्री, चौखम्बा सुरभारती प्रतिष्ठान वाराणसी, 2002

7.पुराणविमर्श - गीताप्रेस गोरखरपुर

4.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.भुवनकोश विमर्श, प्रो. देवी प्रसाद त्रिपाठी, अमर ग्रन्थ पब्लिकेशन्स दिल्ली, वर्ष 2004

2.यजुर्वेद, संस्कृत साहित्य प्रकाशन वर्ष 2015

3.श्रीमद्भागवतपुराणम्, वेदव्यास,गोरखपुर, गीताप्रेस, संवत् 2059

4.ऋग्वेद, संस्कृत साहित्य प्रकाशन वर्ष 2016

5.गोलपरिभाषा, झा, सीताराम, दरभङ्गा, बिहार, श्रीसीताराम पुस्तकालय, संवत् 2027
6.श्रीमद्भगवद्गीता, गीताप्रेस गोरखपुर, संवत् 20486

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1-पुराणों के अनुसार सृष्टि संरचना के स्वरूप की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
2-सांख्य तथा योग दर्शन के अनुसार सृष्टि संरचना के स्वरूप का सविस्तार स्पष्ट कीजिए।
3-वेदान्त दर्शन में वर्णित सृष्टि संरचना के स्वरूप का वर्णन कीजिए।
4-वेदों में वर्णित सृष्टि संरचना के स्वरूप का विस्तार से वर्णन कीजिए।